इकाई 1 केंद्रीय समस्याएँ

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 अर्थशास्त्र की परिभाषा
1.3 असीमित इच्छाएँ तथा सीमित संसाधन
1.4 दुर्लभता तथा चयन
1.5 चयन की समस्या : एक उदाहरण
1.5.1 अर्थव्यवस्था में वस्तुओं का अर्थ
1.5.2 एक और व्याख्या
1.6 वास्तविक एवं आदर्श अर्थशास्त्र
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

1.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई के भलीभाँति अध्ययन से आप समझ पाएँगे कि :

- किसी व्यक्ति तथा समाज के लिए एक आर्थिक समस्या का क्या अर्थ है?
- इच्छाएँ क्या हैं, तथा उन्हें पूरा करने के लिए उचित संसाधन क्या हो सकते हैं?
- एक उत्पादन संभावना (सीमा) वक्र क्या होता है?
- उत्पादन संभावना वक्र द्वारा अर्थशास्त्र में चयन की समस्या किस प्रकार समझाई जा सकती है?
- चयन समस्या कैसे सुलझाई जा सकती है? तथा
- वास्तविक अर्थशास्त्र एवं आदर्श अर्थशास्त्र में क्या भेद है?

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई का उद्देश्य एक अर्थव्यवस्था की केंद्रीय समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए एक विषय के रूप में अर्थशास्त्र की परिभाषा करना है। अर्थशास्त्र की परिभाषा कोई बहुत सहज कार्य नहीं है। इसमें वह सभी कठिनाइयाँ सामने आती हैं जो अर्थशास्त्र की पहली ही कक्षा में अर्थशास्त्र का परिचय कराने के प्रयास में अनुभव होती है। यही समझ नहीं आता कि कहाँ से शुरू करें और क्या बताएँ? क्या शुरुआत औपचारिक परिभाषा से की जाए या फिर यह बताया जाए कि अर्थशास्त्र में क्या कुछ आता है? प्रायः शुरुआत परिभाषा से की जाती है। लेकिन इसमें कठिनाई यह है कि अर्थशास्त्र की कोई भी एक ऐसी परिभाषा नहीं है जिस पर सबकी सहमति हो। सभी अर्थशास्त्री अपने-अपने ढंग से ही अर्थशास्त्र की परिभाषा करते हैं। सभी अपनी परिभाषा को सही और उपयुक्त समझते हैं। वास्तव में अर्थशास्त्र को पहली बार पढ़ रहे छात्रों के साथ न्याय तो तभी हो पाएगा जब हम उन्हें

यह बता सकें कि आखिर अर्थशास्त्र क्या है किसके बारे में, इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए हम एडम स्मिथ, अल्फ्रेड मार्शल अथवा जे.एम.केन्स की परिभाषाओं को न बताकर लॉयनेल रोबिन्स की परिभाषा को स्पष्ट करना चाहेंगे।

1.2 अर्थशास्त्र की परिभाषा

लॉयनेल रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो लक्ष्यों तथा वैकल्पिक प्रयोगों वाले सीमित संसाधनों के बीच संबंधों के रूप में मानवीय व्यवहार का अध्ययन करता है। आइए देखें कि रोबिन्स ने अपनी परिभाषा में किन बातों पर बल दिया है? उनका सबसे महत्त्वपूर्ण विचार तो यह है कि इस विषय के अंतर्गत हम मानवीय व्यवहार का अध्ययन करते हैं। यह कहा जा सकता है कि ऐसे तो कई अन्य शास्त्र अथवा विषय हैं जो किसी न किसी तरह मानवीय व्यवहार के अध्ययन से जुड़े हैं जैसे समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और राजनीति शास्त्र आदि। इन विषयों में भी व्यक्तियों के व्यक्तिगत तथा सामूहिक व्यवहार का ही अध्ययन होता है। पर अर्थशास्त्र में हम आर्थिक गतिविधियों से जुड़े मानवीय व्यवहार पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं। जैसे एक विद्वान का कहना है, "अर्थशास्त्र का मानवीय व्यवहार के अध्ययन का अपना विलक्षण अंदाज है जो इसे अन्य सामाजिक शास्त्रों से भिन्न स्वरूप प्रदान करता है। रोबिन्स का अपना कथन ही इस बात को स्पष्ट कर देता है। अर्थशास्त्र उद्देश्यों की प्राप्ति के निमित्त सचेत प्रयास के रूप में मानवीय व्यवहार की व्याख्या करता है।"

1.3 असीमित इच्छाएँ तथा सीमित संसाधन

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अर्थशास्त्र का आरम्भ ही मानवीय इच्छाओं, अभिलाषाओं और आवश्यकताओं से होता है। इतिहास के हर चरण में लोगों की इच्छाएँ तथा आवश्यकताएँ अवश्य रही हैं। इनमें से कुछ तो जीवित रहने की बुनियादी आवश्यकताएँ कही जा सकती है, जैसे रोटी, कपड़ा और मकान आदि। यह भी कहा जा सकता है कि मानवीय आवश्यकताओं का उदगम् शरीर से जुड़ा हुआ हैं पर व्यवहारिक दृष्टि से देखा जाए तो हमारी अधिकतर आवश्यकताएँ समाज में मिलकर रहने से ही उत्पन्न होती है। समाज का अस्तित्व ही हमारी अधिकतर आवश्यकताओं का आधार हैं समाज की संस्कृति में निहित जटिल कारक इन आवश्यकताओं का निर्धारण करते हैं। हर समाज की भोजन जैसी मूलभूत आवश्यकताओं का स्वरूप भी समाज की सभ्यता एवं संस्कृति ही सुनिश्चित करती है। अतः हम कह सकते हैं कि यद्यपि आवश्यकताएँ शरीर से जुड़ी हैं लेकिन उनका स्वरूप मानवीय समाज ही निर्धारित करता है। इन मानवीय आवश्यकताओं की एक अन्य विलक्षणता यह है कि ये बार-बार पैदा होती रहती है। उदाहरण के लिए एक बार भोजन कर लेने से भूख कुछ समय के लिए ही मिटती है लेकिन कुछ समय बाद फिर लगती है। लोग चाहते हैं कि उनकी आवश्यकताएँ, अभिलाषाएँ और आकांक्षाएँ पूरी हों तथा इसी उद्देश्य से सभी मानवीय गतिविधियाँ प्रेरित होती हैं। इस तरह से अर्थशास्त्र मानवीय लक्ष्यों, उद्देश्यों तथा उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग द्वारा इनकी प्राप्ति से जुड़ा है। ये प्राप्ति निजी भी हो सकती हैं और सामूहिक भी। उदाहरण के लिए यदि आपको कुछ ठंडा पीने की इच्छा है तो आपके पास पैसा होना जरूरी है। घर बनाने के लिए ईंट, सीमेंट, इस्पात, लकड़ी व शीशे आदि की आवश्यकता होती है, इसी प्रकार गेहूँ का उत्पादन तभी संभव हो पाएगा जब उपयुक्त ज़मीन के साथ बीज, उर्वरक और सिंचाई के लिए जल भी सुलभ हों। इन सभी उदाहरणों में आप उद्देश्य तथा संसाधन की स्पष्ट रूप से पहचान कर सकते हैं। एक अन्य उदाहरण पर गौर करें : आप काम पर पहुँचने के लिए अपनी कार से जाते है; आप काम पर पैसा कमाने की खातिर जाते हैं; और संभव

है कि पैसा आप नई कार खरीदने के लिए कमाना चाहते हों। इन सभी से यह बात तो स्पष्ट है कि उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हमें संसाधनों की आवश्यकता होती है।

बोध प्रश्न 1

1) यदि आपकी मासिक आय एक हजार रुपया हो तो कुछ ऐसी जैविक आवश्यकताएँ बताइए जिनकी पूर्ति का प्रयास आप पहले करेंगे? (दूसरे शब्दों में, कुछ ऐसी वस्तुओं के नाम बताइए जिन्हें आप जीवन के लिए आवश्यक मानते हैं)।

.....

.....

.....

.....

.....

2) आप जमीन के एक टुकड़े पर गन्ने की खेती करना चाहते हैं। उत्पादन प्राप्ति के लिए आप किन-किन संसाधनों का प्रयोग करेंगे?

.....

.....

.....

.....

.....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1.4 दुर्लभता तथा चयन

रोबिन्स की परिभाषा में मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संसाधनों की दुर्लभता पर बल दिया गया है। फिर भी यह प्रश्न उठता है कि आखिर इस दुर्लभता का इतना महत्व क्यों है? अर्थशास्त्र में इस दुर्लभता का अर्थ आवश्यकताओं की तुलना में साधनों का सीमित होना है। दूसरे शब्दों में, (किसी व्यक्ति या समाज की) आवश्यकताओं तथा संसाधनों के बीच अन्तराल ही 'दुर्लभता' है और इसी के परिणाम स्वरूप किसी आर्थिक समस्या का जन्म होता है। यहीं पर रोबिन्स की परिभाषा के एक और पहलू पर ध्यान दिलाना आवश्यक है। किसी आवश्यकता की संपूर्ति के लिए काम आने वाले संसाधन केवल इसी काम आ सकते हों, ऐसा नहीं है। इन संसाधनों के अनेक प्रयोग हो सकते हैं। एक संसाधन अनेक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकता है। उदाहरण के लिए, इस इकाई के लेखन में अब तक मैं अपने कीमती समय का एक घंटा लगा चुका हूँ। यह समय एक संसाधन है तथा हर व्यक्ति के पास यह सीमित होता है। यदि मैं यह लेखन कार्य न कर रहा होता तो शायद रतन टाटा पुस्तकालय (देहली स्कूल ऑफ इक्नॉमिक्स) जाकर व्यष्टि अर्थशास्त्र की किसी नई पुस्तक को पढ़ रहा होता; या फिर किसी पुस्तक भण्डार में नई आयी किताबों में अपनी पसन्द की कोई पुस्तक ढूँढ़ रहा होता। या फिर मैं शायद टेलीविज़न पर कोई रोचक कार्यक्रम देखता या उससे चाहे किसी फिल्म के बारे ही सही, नई जानकारी पाने का प्रयास करता। यह तो आप समझ ही गए होंगे कि समय का प्रयोग कितने कार्यों के लिए किया जा सकता है। वैसे यहाँ इतना जान लेना ही पर्याप्त है कि प्रत्येक दुर्लभ संसाधन का एक से अधिक कार्यों में प्रयोग हो सकता है।

अतः हम कौन सा कार्य करें इसका चयन कर सकने की भरपूर गुंजाइश हमारे पास है। किसी भी एक कार्य में अपने सीमित साधन लगाने का अर्थ यह भी होता है कि हम इसे किसी अन्य कार्य में लगाकर जो लाभ पा सकते थे अब नहीं पाएँगे। अर्थशास्त्र का केवल दुर्लभता से ही संबंध नहीं है। यह हमें चयन करने में भी सहायक हो सकता है क्योंकि एक साधन के एक से अधिक उपयोग हो सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम अपनी आय फलों तथा आइसक्रीम पर खर्च कर डालते हैं, तो रोटी तथा मक्खन नहीं खरीद पाएँगे। यदि अर्थव्यवस्था खनिज तेल का प्रयोग बिजली घरों में कर लेती है तो वह तेल वाहन चलाने के लिए सुलभ नहीं रह पाता। यदि आप अपना जितना समय अर्थशास्त्र के अध्ययन में लगा रहे हैं तो वह समय आप पैसा कमाने में नहीं लगा पाएँगे।

"इसी में अर्थशास्त्र का सार निहित है। जब किसी व्यक्ति (या समूह) के संसाधन उसकी सभी माँगों को एक साथ ही पूरा करने के लिए पर्याप्त सिद्ध नहीं होते तो अर्थशास्त्र अपने अस्तित्व में आता हैं अर्थशास्त्र दुर्लभ साधनों के श्रेष्ठतम प्रयोग में निहित चयन के साथ जुड़ा हुआ है। यदि साधनों की दुर्लभता नहीं हो तो फिर अर्थशास्त्र का अस्तित्व भी नहीं। नोट करें कि इस बात का सच होना कि मानवीय आवश्यकताएँ असीमित हैं, आवश्यक नहीं है। संभवतः वे असीमित हैं। फिर भी इस सच्चाई को परखने के लिए कि 'आवश्यकताएँ असीमित हैं' अनुसंधान की गुंजाइश है। आर्थिक समस्या को जानने के लिए तो केवल इतना ही समझना आवश्यक है कि साधन आवश्यकताओं की तुलना में दुर्लभ अर्थात् कम पड़ रहे हों।" (David Whynes : *Invitation to Economics*, पृष्ठ 15)।

बोध प्रश्न 2

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) यदि आप कुछ पाना चाहते हो वह प्राप्त कर सकने की स्थिति में भी हो तो क्या सही अर्थों में आपको चयन की समस्या का सामना करना पड़ेगा?

.....

.....

.....

.....

.....

2) अपने घर से काम करने की जगह पर जाने के लिए आप परिवहन के किन-किन माध्यमों के बीच चुनाव कर सकते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

1.5 चयन समस्या : एक उदाहरण

साधनों एवं आवश्यकताओं के बीच असंतुलन से ही आर्थिक समस्याएँ पैदा होती हैं। इसी असंतुलन से यह प्रश्न पैदा होता है कि संसाधनों का लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्ततम प्रयोग किस प्रकार

हो? किसी भी व्यक्ति एवं समाज के लिए विभिन्न (प्रतियोगी) उद्देश्यों के बीच सीमित संसाधनों का विभाजन करना एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण या केंद्रीय समस्या है। यदि संसाधन इतने काफी होते कि उन्हें बचाकर रखना जरूरी न रहता या फिर विभिन्न लक्ष्यों के बीच किसी तरह का टकराव नहीं हो, तो फिर समाज को किसी आर्थिक समस्या का सामना ही नहीं करना पड़ता। पर वास्तव में ऐसा नहीं है। संसार को न तो संसाधनों की बहुलता का उदार वरदान मिला है और न ही उनके और लक्ष्यों के बीच का संतुलन समाप्त हो पाया है। यह बात जहाँ सोमालिया, इथोपिया, वोलिविया, बंगलादेश, अल्बानिया आदि पिछड़े हुए देशों पर तो लागू होती ही है, संयुक्त राज्य अमेरीका, जर्मनी और जापान जैसे समुन्नत देश भी इसके दायरे से बाहर नहीं रह पाते। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि साधनों की सीमितता के दो स्वरूप हैं : स्थानीय तथा विश्वव्यापी। कभी-कभी किसी देश की संपन्नता ऐसा भ्रम-जाल पैदा कर देती है कि जैसे इन देशों में दुर्लभता नाम की कोई समस्या नहीं रह गई है। पर यह बात वास्तव में सच नहीं होती। हर समाज में ऐसी संस्थाएँ होती है जो सीमित संसाधनों के उचित बँटवारे की दिशा में कार्य करती हैं और इन संस्थाओं को ही समाज का आर्थिक ढाँचा या अर्थव्यवस्था का नाम दिया जाता है। ये ही अर्थव्यवस्था में निर्णय करती हैं कि किस वस्तु का उत्पादन कैसे हो तथा किसके लिए हो?

एक उत्पादन संभावना वक्र दो वस्तुओं के उन विभिन्न जोड़ों को दर्शाता है जिनका कोई फर्म उत्पादन कर सकती है, यदि

i) वह फर्म तकनीकी दृष्टि से उत्पादन की कुशलतम विधि का प्रयोग करे;
ii) संसाधनों का आर्थिक दक्षतापूर्ण आवंटन करे; तथा
iii) सभी संसाधनों का पूर्ण प्रयोग करे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यह वक्र हमें बताता है कि यदि एक वस्तु का उत्पादन दिया गया हो तो हम दूसरी वस्तु का कितना अधिक से अधिक उत्पादन कर सकते हैं, यदि प्रौद्योगिकी तथा संसाधनों की मात्रा में कोई परिवर्तन न हो। इससे हमें यह ज्ञान होता है कि संसाधनों को एक उद्योग से दूसरे में स्थानांतरित कर किस दर पर एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु का उत्पादन किया जा सकता है? यह हमें बताता है कि किस प्रकार खाद्य पदार्थों के स्थान पर कपड़े का उत्पादन किया जा सकता है। यानि साधनों का स्थानांतरण करके किस प्रकार एक वस्तु के उत्पादन स्तर में परिवर्तन करके दूसरी वस्तु के उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। इसी दृष्टि से उत्पादन संभावना वक्र को रूपातंरण वक्र (transformation curve) भी कहा जाता है। (देखिए रेखाचित्र 1.1)

चित्र 1.1

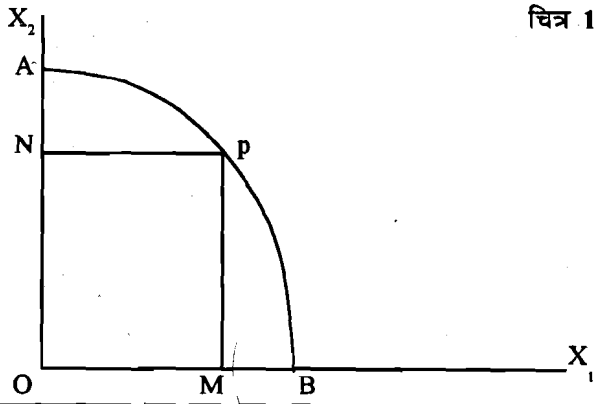

चित्र 1.1 : यदि समाज साधनों का कुशलतापूर्वक प्रयोग केवल X वस्तु के उत्पादन के लिए करें तो इस वस्तु का OB मात्रा में उत्पादन हो सकता है। इसी तरह केवल X_2 का उत्पादन करने की दशा में OA मात्रा उत्पादित होगी। वक्र AB दोनों वस्तुओं के उन सभी जोड़ों को दर्शाती है जिनका उत्पादन किया जा सकता है। यदि समाज बिंदु P पर उत्पादन करना चाहे तो X_1 की OM तथा X_2 की ON मात्रा का उत्पादन होगा। हम यह भी कह सकते हैं कि यदि समाज X_1 का उत्पादन OM मात्रा में करना चाहे तो वह X_2 की ON मात्रा का ही उत्पादन कर पाएगा।

उत्पादन संभावना वक्र के प्रयोग द्वारा हम अर्थव्यवस्था की केंद्रीय समस्याओं को समझाने का प्रयास भी कर सकते हैं। हमारी पहली समस्या है कि क्या उत्पादन किया जाए? मान लीजिए कि दो वस्तुएँ X_1 तथा X_2 हैं। इनमें से X_1 उपभोक्ता वस्तु तथा X_2 पूँजीगत वस्तु हैं। सैम्युलसन के अनुसार उत्पादन संभावना वक्र समाज का 'चयन पत्र' है। आर्थिक संसाधन तो सीमित मात्रा में ही उपलब्ध हैं। अतः समाज को यह कठिन निर्णय तो लेना ही पड़ेगा कि X_1 का अधिक उत्पादन किया जाए या फिर X_2 का उत्पादन बढ़ाने में ज्यादा संसाधन लगाए जाएँ या फिर दोनों के बीच कोई संतुलन रखा जाए। यह संभव है कि भारत जैसे विकासशील देश में पूँजी के आधार को बढ़ाने के लिए देश में पूँजीगत वस्तुओं पर अधिक बल दिया जाए। इसी प्रकार, मज़बूत पूँजीगत आधार वाले जापान जैसे देश में उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन को अधिक बल दिया जा सकता है। (देखिए चित्र 1.2)

चित्र 1.2

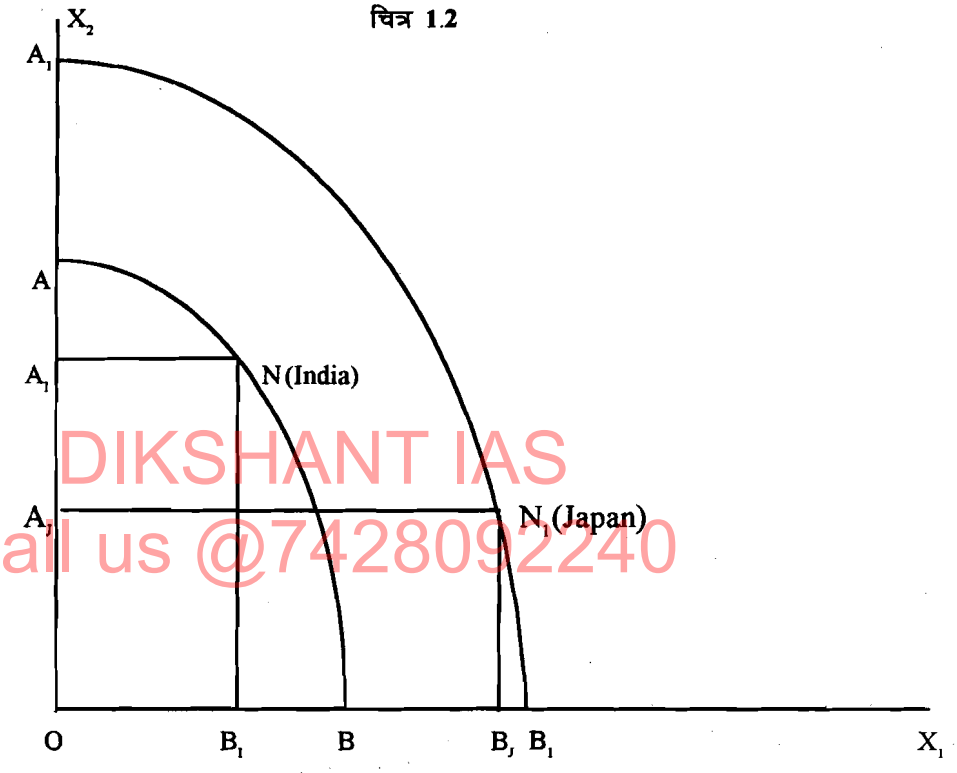

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 1.2 : भारत A_1B_1 संयोजन में पूँजीगत एवं उपभोक्ता पदार्थ उत्पादित कर सकता है और जापान A_JB_J में। ध्यान दें कि जापान के संयोजन में उपभोक्ता वस्तु की बहुलता है जबकि पूँजीगत पदार्थ की मात्रा काफी सीमित रहती है।

इसी प्रकार उत्पादन संभावना वक्र द्वारा दूसरी केंद्रीय समस्या, अर्थात् कैसे उत्पादन किया जाए, पर भी प्रकाश डाला जा सकता है। वस्तु के उत्पादन के लिए संसाधन सम्मिश्रण का चुनाव ही उत्पादन तकनीक का चयन है। पर यह बात उत्पादन संभावना वक्र से सीधे-सीधे समझ पाना संभव नहीं होता। वस्तुतः हमें उस दक्षता पथ **(efficiency locus)** का पुनः अवलोकन करना पड़ेगा जिसके आधार पर हम उत्पादन संभावना वक्र का निर्माण करते हैं। मान लीजिए वस्तु X_1 श्रम प्रधान तकनीक से बनती है तथा X_2 पूँजी प्रधान तकनीक से। भारत का उत्पादन संभावना वक्र AB है। अब यदि इस पर N बिन्दु पर कार्य हो रहा हो तो यह स्पष्ट है कि यहाँ पूँजीगत वस्तुओं का अधिक उत्पादन हो रहा है। अब क्योंकि ये वस्तुएँ पूँजी प्रधान तकनीक से बनी हैं तो हम कह सकते हैं कि भारत में पूँजी प्रधान तकनीक का चलन अधिक है। दूसरी ओर, जापान के उत्पादन संभावना वक्र A_1, B_1, N_1 बिंदु पर उपभोक्ता वस्तुओं की प्रधानता दर्शाता है। पर इससे यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि जापान में श्रम प्रधान तकनीक का चलन अधिक है। जापान जैसे देश में तो

वस्तुतः उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन भी पूँजी प्रधान तकनीकों द्वारा ही होता है। अतः उत्पादन संभावना वक्र द्वारा उत्पादन तकनीकों के विषय में प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करना कठिन है।

हमारी तीसरी केंद्रीय समस्या है : किसके लिए उत्पादन किया जाए? इसी को वितरण की समस्या भी कहा जाता है। इस समस्या के समझने के लिए भी उत्पादन संभावना वक्र का सहारा लिया जा सकता है लेकिन अप्रत्यक्ष तौर पर ही। यदि हम यह मान लें कि समाज में आय के वितरण में जितनी अधिक विषमताएँ होंगी उतनी ही विलासिता की वस्तुओं (जैसे कार, रंगीन टी.वी., फ्रिज आदि) की माँग अधिक होगी। विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन प्रायः पूँजी प्रधान तकनीक से होता है। इस दृष्टि से चित्र 1.2 में भारत का उत्पादन बिंदु N हैं। यहाँ आय के बँटवारे की व्यापक विषमता को भी दर्शाया जा सकता है। अभी कुछ देर पहले हमने भारत में पूँजी प्रधान तकनीक से बनी वस्तुओं के उत्पादन की प्रधानता को एक विकासमान देश की आवश्यकता के नाम पर उचित ठहराया था। अतः जब तक हमें यह पता न हो कि X_2 अक्ष पर कौन-सी पूँजी प्रधान तकनीक से बनी वस्तुएँ दिखाई गई है हम किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते। यदि ये वस्तुएँ उत्पादन करने वाली मशीनें आदि हैं तो यह एक विकासशील अर्थव्यवस्था का प्रतीक होगा। पर, यदि इस अक्ष पर केवल विलासिता की वस्तुएँ हों तो यह अर्थव्यवस्था में आय के असमान वितरण की ही जानकारी हमें दे पाएगा। इसी तरह जापान के उत्पादन बिंदु N_1, की व्याख्या भी अन्य सहायक जानकारी के आधार पर करना ही उचित होगा।

1.5.1 अर्थव्यवस्था में वस्तुओं का अर्थ

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

रोटी, मक्खन, कमीज़, पैंट, स्कर्ट, पैन्सिल, कुर्सी, मेज, साइकिल, कार, घड़ी आदि भौतिक पदार्थों, जिनसे मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, को हम वस्तुओं या चीज़ों का नाम देते हैं। ये मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने के भौतिक माध्यम हैं। इनकी उत्पत्ति प्रकृति में उपलब्ध सामग्री का भौतिक, रासायनिक, जैविक, स्थैतिक और सामयिक परिवर्तन द्वारा संभव होती है। अक्सर हम वस्तुओं, उत्पादों तथा चीज़ों आदि शब्दों का अर्थ एक समान मानते हुए ही इनका प्रयोग करेंगे।

इन वस्तुओं/उत्पादनों/चीज़ों की तीन विशेषताएँ होती हैं:

i) इनकी भौतिक विशेषताएँ - ये किस प्रकार किसी मानवीय इच्छा की पूर्ति में सहायक हैं?

ii) वह समय (तिथि) जिस पर वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं - उदाहरण के लिए इस वर्ष उपलब्ध कार पिछले वर्ष उपलब्ध कार के अपेक्षा भिन्न मानी जाएगी, चाहे वह उसी नाम की कार हो।

iii) वह स्थान जहाँ पर ये वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। पैरिस में उपलब्ध कमीज़ दिल्ली में उपलब्ध कमीज़ से भिन्न मानी जाएगी।

बोध प्रश्न 3

1) एक उत्पादन संभावना वक्र अर्थव्यवस्था का चयन-पत्र है। यदि अर्थव्यवस्था के सीमित साधनों का पूर्ण प्रयोग हो रहा हो तो वह अर्थव्यवस्था उत्पादन संभावना वक्र पर कार्य करेगी या उसके भीतर?

.....

.....

.....

....

....

2) यदि संसाधनों की मात्रा बढ़ रही हो तो उत्पादन संभावना वक्र का क्या होगा? यह बाहर की तरफ खिसकेगा या अन्दर की तरफ?

....

....

....

....

....

1.5.2 एक और व्याख्या

आइए, रोबिन्स की परिभाषा के और पहलू पर भी ध्यान दें : उन्होंने अर्थशास्त्र को एक विज्ञान माना है। अब प्रश्न यह है कि यह किस प्रकार का विज्ञान है? क्या हम इसे भौतिक अथवा रसायन शास्त्र की कोटि का विज्ञान कह सकते हैं? कदापि नहीं। अर्थशास्त्र तो मानवीय व्यवहार का अध्ययन करता है और यह व्यवहार काल एवं परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता। इसीलिए अर्थशास्त्र को एक यथार्थ **(exact)** विज्ञान नहीं कहा जा सकता। किस स्थिति में मानव क्या व्यवहार करेगा– यह सुनिश्चित नहीं है। अतः प्राकृतिक घटनाक्रम का पूर्वानुमान लगाने की तुलना में मानवीय व्यवहार का पूर्वानुमान कर पाना कहीं अधिक कठिन होता है। आर्थिक घटनाक्रम की अपेक्षा प्राकृतिक घटनाक्रम की नियमित आवृति कहीं अधिक निश्चित मात्रा में व्यक्त करने योग्य, प्रदर्शनीय तथा मापे जाने योग्य होती है। अर्थशास्त्र एक विज्ञान भी है और कला भी। इसका संबंध उत्पादन, वितरण और उपभोग से जुड़ी मानवीय गतिविधियों से है, इस नाते यह एक उदार कला **(liberal art)** है। किंतु अर्थशास्त्र की कार्यविधि तथा निष्कर्ष पद्धति तो विज्ञान की कार्य शैली जैसी ही है। वैज्ञानिक कार्य पद्धति कैसी होती है? वैज्ञानिक पद्धति में वास्तविक जगत् के पदार्थों तथा घटनाक्रमों पर आधारित कुछ पूर्व धारणाएँ होती हैं और साथ ही एक मॉडल **(model)** होता है जो तर्क के आधार पर इन पदार्थों तथा घटनाक्रमों के बीच संबंध स्थापित करता है। इस मॉडल को पूर्व धारणाओं पर लागू कर कुछ निष्कर्ष निकाले जाते हैं जिन्हें नियमों की संज्ञा दी जाती है। अंत में पदार्थों के बारे में वास्तविक जानकारी प्राप्त कर इन नियमों की सत्यता की जाँच की जाती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 4

1) यदि एक सेब ऊपर की ओर उछाला जाए तो वह हमेशा नीचे वापस आता है। यह पूर्वानुमान हमेशा शत प्रतिशत सही बैठता है। पर यदि सेब की कीमत कम की जाए तो क्या हमेशा ही लोग उसका अधिक उपभोग करेंगे? क्या इस विषय में भी आपका अनुमान सदा सत्य होगा?

....

....

....

....

....

2) अर्थशास्त्र किस दृष्टि से एक विज्ञान है?

.....

.....

.....

.....

.....

1.6 वास्तविक तथा आदर्श अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र के अध्ययन में सामान्यतः वास्तविक (positive) तथा आदर्श (normative) अर्थशास्त्र के बीच भेद किया जाता है।

वास्तविक अर्थशास्त्र आर्थिक विचारों और प्रश्नों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखता है। जैसे किसी वस्तु की कीमत का निर्धारण किस तरह होता है या फिर, किसी फर्म में अथवा अर्थव्यवस्था में रोज़गार का स्तर किन बातों पर निर्भर करता है, कोई फर्म आगतों का अनुकूलतम सम्मिश्रण किस प्रकार तय करती है आदि। इन सभी प्रश्नों में किसी प्रकार का कोई नैतिक विवाद नहीं होता। इसके विपरीत **आदर्श अर्थशास्त्र में हम नैतिक विषयों पर ही चर्चा करते हैं।** जैसे किसी अर्थव्यवस्था में संसाधनों के बँटवारे का 'सबसे अच्छा' तरीका क्या हो? एक समाज अपनी राष्ट्रीय आय का आबंटन किस प्रकार करे? मुद्रा-स्फीति अच्छी होती है या बुरी? क्या अर्थव्यवस्था को श्रम की दृष्टि से पूर्ण रोज़गार स्तर पर ही कार्य करना चाहिए आदि। इन सभी मामलों में कहीं न कहीं मूल्य-मान अवश्य जुड़े होते हैं और यह मूल्य-मान विश्लेषक स्वयं ही निर्धारित करते हैं। इसी कारण ये मानदंड आदर्श कहलाते हैं। ये वैज्ञानिक सिद्धांत नहीं कहे जा सकते। विश्लेषक इन सिद्धांतों को अपने वर्ग और विचारधारा के आधार पर बनाता है। इन सिद्धांतों में वैज्ञानिक प्रश्न नहीं उठाए जाते। इनमें पूर्व धारणाएँ तथा निष्कर्ष नैतिक आधार पर होती हैं। इन सिद्धांतों के पीछे पूर्व धारणाओं को स्वीकार (अस्वीकार) कर कोई भी इन पर आधारित निष्कर्षों को सहज ही स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है। अर्थशास्त्र में विद्वानों के बीच में मतभेदों को दूर करना सामान्यतः संभव नहीं हो पाता क्योंकि इन सिद्धांतों में सभी पूर्व धारणाएँ तथा निष्कर्ष नैतिकता पर आधारित होती हैं। ऐसे मामलों में बिना किसी अंतिम फैसले पर पहुँचे कोई भी व्यक्ति चाहे जितनी देर विवाद कर सकता है। यही नहीं, नैतिक अवधारणाओं की सत्यता की जाँच आँकड़ों के आधार पर नहीं की जा सकती।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दूसरी ओर, यद्यपि वास्तविक अर्थशास्त्र में वैज्ञानिक प्रश्नों से ही वास्ता पड़ता है तथा वैज्ञानिक विधि से ही सिद्धांत बनाया जाता है, पर फिर भी अर्थशास्त्रियों के बीच मतभेद हो सकते हैं। ये मतभेद किसी समस्या विशेष के अध्ययन में मॉडल या सिद्धांत के चुनाव से जुड़े हो सकते हैं। किसी समस्या के प्रति अर्थशास्त्रियों के नज़रिये में अंतर भी मतभेद का कारण बन सकता है। पर इस प्रकार के मतभेदों को आँकड़ों के आधार पर इनकी सत्यता की जाँच कर सुलझाया जा सकता है। किसी भी सिद्धांत की आँकड़ों के आधार पर पुष्टि के दौरान भी आँकड़ों की उपयुक्तता को लेकर मतभेद हो सकते हैं फिर चाहे वह अर्थशास्त्र हो या भौतिकशास्त्र। प्राकृतिक विज्ञान में तो प्रयोगशाला में परीक्षणों द्वारा आँकड़ों को इकट्ठा किया जा सकता है। किंतु अर्थशास्त्र में तो हमें अपूर्ण सांख्यिकीय विधियों के सहारे ही आवश्यक जानकारी का संग्रह करना पड़ता है। इसलिए एक ही समस्या के अध्ययन में दो वास्तविक अर्थशास्त्रियों के निष्कर्ष अलग-अलग हो सकते हैं। अन्ततः इन मतभेदों का निपटारा सिद्धांतों को आँकड़ों की कसौटी पर कसकर ही हो पाता है।

बोध प्रश्न 5

1) निम्नांकित वाक्यांशों को ध्यान से पढ़ें और यह बताएँ कि इनमें से कौन-सा वास्तविक तथा कौन-सा आदर्शी है?

   क) अर्थव्यवस्था में बेरोज़गारी कम की जानी चाहिए;

   ख) भारत का भुगतान-शेष संतुलन में नहीं है;

   ग) निवेश का निर्धारण आय द्वारा होता है;

   घ) स्फीति पर नियंत्रण रखना चाहिए;

   ङ) भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का होना वांछनीय नहीं है;

   च) कीमतों पर नियंत्रण होना ही चाहिए;

   छ) राशन व्यवस्था से कार्यकुशलता/दक्षता कम हो जाती है;

   ज) भारत पेट्रोल का आयात भी करता है, निर्यात भी;

   झ) भारत एक गरीब देश है; तथा

   ञ) विषमता कम करनी चाहिए।

.....

.....

.....

1.7 सारांश

DIKSHANT IAS
Call us @7428002240

इस इकाई में हमने एक अर्थव्यवस्था की केंद्रीय समस्याओं के बारे में बातचीत की है। हम किसी भी काल में या समाज में हों, हमें संसाधनों को मितव्ययता से प्रयोग करने की समस्या का सामना करना पड़ता है। हमारी इच्छाएँ असीमित ही रहती हैं क्योंकि सामाजिक विकासक्रम नई-नई इच्छाओं-आवश्यकताओं को जन्म देता रहता है। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। किंतु साधनों की सीमित मात्रा के कारण हम किसी भी समय केवल कुछ ही इच्छाओं की तुष्टि कर पाते हैं– सभी की संतुष्टि हो नहीं पाती। यह बात व्यक्ति के लिए भी उतनी ही सही है जितनी कि किसी सामाजिक परिवारों में रहने वाले समूह के लिए। इसी कारण से लॉयनल रॉबिन्स की अर्थशास्त्र की परिभाषा अपने आप में बहुत सटीक बन जाती हे। अर्थशास्त्र 'मितव्ययता' से जुड़ा है। साधनों की सीमितता तथा इच्छाओं की असीमितता दुर्लभता को जन्म देती है। इसी से अर्थशास्त्र की मूलभूत समस्या अर्थात् साधनों के वैकल्पिक उपयोगों के बीच में ऐसे उपयुक्त चयन की समस्या पैदा होती है कि मनुष्य की असीमित इच्छाओं में से कुछ की संतुष्टि की जा सके। दुर्लभता गरीब तथा संपन्न देशों पर समान रूप से लागू होती है। भारत में यदि जरूरतों के हिसाब से साधन सीमित लगते हैं तो संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे अमीर देश में भी साधन अपर्याप्त ही रहते हैं। हाँ, यह बात अवश्य सच है कि दोनों देशों में इच्छाओं और साधनों के स्वरूप काफी अलग-अलग हो सकते हैं। चयन की समस्या एक उत्पादन संभावना वक्र से समझाई जा सकती है। साधनों एवं इच्छाओं के असंतुलन से ही केंद्रीय समस्याएँ पैदा होती हैं:

i) सीमित साधनों से किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाए? अर्थव्यवस्था खाद्य सामग्री का अधिक उत्पादन करे या महँगी कारों का? निर्यात के लिए ज्यादा उत्पादन हो या घरेलू उपभोग के लिए?

ii) वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जाए? अर्थात् मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सीमित साधनों का संयोजन किस प्रकार किया जाए? यह बात उत्पादन की तकनीक से जुड़ी है। इसका एक उदाहरण है : श्रम प्रधान तकनीक का प्रयोग हो या फिर पूँजी-प्रधान तकनीक का?

iii) उत्पादन किनके लिए हो? वस्तुओं का उत्पादन करने के बाद भी उनके आबंटन का प्रश्न बचा रहता है– अर्थात् उपभोक्ताओं में वस्तुएँ कैसे बाँटी जाएँ– अमीरों को अधिक वस्तु मिले या गरीबों को।

ये ऐसी मूलभूत समस्याएँ है जिनसे सभी अर्थव्यवस्थाओं को जूझना पड़ता है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था अपनी संस्थागत रचना के अनुरूप इनके समाधान भी खोज लेती है। अतः कही स्वतंत्र बाजार व्यवस्था, कहीं केंद्रीय आयोजन तो कहीं बाजार एवं आयोजन की मिलीजुली व्यवस्था से आर्थिक समस्याओं का निदान किया जाता है।

इस इकाई के अंत में हमने वास्तविक तथा आदर्श अर्थशास्त्र के भेद पर चर्चा की है। जहाँ वास्तविक अर्थशास्त्र किसी वस्तु की कीमत के निर्धारण जैसी समस्याओं से संबद्ध है वहीं आदर्श अर्थशास्त्र का वास्ता नैतिकता, वांछनीयता आदि के सवालों से पड़ता है। जैसे अर्थव्यवस्था में मजदूरी की उचित दर क्या हो? प्रत्यक्ष अर्थशास्त्र में मूल्य-मानों के लिए कोई स्थान नहीं होता पर आदर्शी स्वरूप में तो सभी कुछ व्यक्ति मूल्य-मानों पर ही आधारित रहता है। ये मूल्यमान भी अंततः किसी समाज में व्यक्ति की अपनी स्थिति तथा विचारधारा पर ही निर्भर रहते हैं।

1.8 शब्दावली

DIKSHANT IAS
Call us @7428992240

अर्थशास्त्र : अंग्रेजी शब्द इक्नॉमिक्स ग्रीक भाषा का है– इसका अर्थ है 'घर' और 'कानून'। अर्थात् गृह प्रबंध का सिद्धांत। क्योंकि संसाधन सीमित हैं और इच्छाएँ अतः अर्थशास्त्र का संबंध साधनों के किफायतपूर्ण उपयोग से है।

आदर्श अर्थशास्त्र : अर्थशास्त्र का यह स्वरूप नैतिक पहलूओं, प्रश्नों और समस्याओं से जुड़ा हुआ है। इसमें 'क्या बेरोज़गारी भत्ता दिया जाना चाहिए? अथवा 'क्या सरकार को कीमत नियंत्रण लागू करना चाहिए'? जैसे प्रश्नों पर विचार किया जाता है।

वास्तविक अर्थशास्त्र : इस स्वरूप में अर्थशास्त्र वैज्ञानिक व्यवहार से जुड़े प्रश्नों का विश्लेषण करता है– अर्थात् किन वस्तुओं का, कैसे उत्पादन किया जाए? यहाँ बिना मूल्य-मानों की चिन्ता किए ही इन प्रश्नों का समाधान किया जाता है।

आवश्यकताएँ : वस्तुओं और सेवाओं को पाने की इच्छा। जब व्यक्ति अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए कुछ खर्च करने का तत्पर हो जाता है तो यही आवश्यकता 'माँग' का रूप धारण कर लेती है।

उत्पादन संभावना/सीमा वक्र : उन सभी उत्पाद संयोजनों का समूह जो एक फर्म या अर्थव्यवस्था कुशलतम तकनीक तथा संसाधनों के कुशलतम बँटवारे के आधार पर उत्पादन कर सकती है।

उद्यम अथवा फर्म : बाज़ार में विक्रय हेतु वस्तुओं तथा सेवाओं आदि का उत्पादन करने वाले संगठन को फर्म या उद्यम का नाम दिया जाता है। यह संगठन संसाधन खरीदकर उनके माध्यम से उत्पादन करता है तथा उत्पादित वस्तुओं आदि की बाज़ार में बिक्री करता है। इस कार्य से जुड़े जौखिमों का वहन भी यही संगठन करता है। संगठन की आंतरिक गतिविधियाँ श्रम के विभाजन तथा पारस्परिक सहयोग पर आधारित होती हैं।

दुर्लभता : मानवीय आवश्यकताओं का उपलब्ध सामग्री से अधिक होना ही दुर्लभता को जन्म देता है। यह आवश्यकताओं तथा साधनों के असंतुलन से होती है। दुर्लभता तुलनात्मक अर्थ में ही होती है।

ध्येय : आर्थिक गतिविधियों में संलग्न व्यक्तियों के लक्ष्य।

पूँजी : इसमें सभी मानव निर्मित उत्पादन साधन आते हैं। यह समाज के उत्पादन का वह हिस्सा होता है जो भविष्य में उत्पादक कार्यों में प्रयोग के लिए अलग रख दिया जाता है। इसमें मशीनें, संयंत्र, भवन आदि सम्मिलित होते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भूमि : यह एक ऐसा उत्पादन साधन है जिसमें हम सभी प्रकृति से मिले सभी संसाधनों को शामिल करते हैं।

साधन : ध्येय की प्राप्ति में सहायक संसाधन।

श्रम : उत्पादन साधन के रूप में मनुष्य की सभी मानसिक व शारीरिक शक्तियाँ।

वस्तुएँ : मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने के भौतिक साधनों को हम वस्तुएँ कहते है। अर्थशास्त्र में चीज़ों, वस्तुओं, उत्पादों आदि शब्द एक-दूसरे पर्याय के रूप में प्रयोग होते हैं।

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Begg, D.R., Dornbusch, S.Fischer(1991), *Macroeconomics* (4th Edition), McGraw-Hill Book Co. New York

Lipsey, Richard (1997), *Introduction to Positive Economics* (8th Edition). Oxford University Press (ELBS Edition), London

Nicholson, W.(1995), *Intermediate Micro Economics* (VIth Edition), Dryden Press, New York.

Roychoudhry, Kalyanjit (1999), *Modern Microeconomics* (II Edition), Book Land, Delhi

Salvatore D.(1996), *Micro Economic Theory* (Schaum series 3rd Edition), McGraw-Hill Book Co., New York.

Salvatore D.(1995), *Micro Economics* (2nd Edition), Harper Collins Publishers, New York

Trearthen Timothy (1996), *Micro Economics,* (1st Edition, 1996) Macmillan, New York.

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) कुछ आवश्यक खाद्य सामग्री, जैसे दूध, अनाज, तेल, दालें, सब्जियाँ, कपड़े तथा रहने को कोई कमरा। एक हजार रुपये की राशि अपेक्षाकृत एक छोटी सी रकम है। इसमें आपको आवश्यक वस्तुएँ प्रचुरता से नहीं मिल पाएगी। किस वस्तु की कितनी मात्रा आप प्रयोग करेंगे यह तो मूलतः आपकी अपनी उपयोग संबंधी आदतों पर निर्भर करेगा।

2) बीज, खाद्य/उर्वरक, निश्चित मात्रा में पानी, कुछ श्रमिक तथा संभवतः कुछ औज़ार।

बोध प्रश्न 2

1) इच्छाएँ असीमित पर संसाधन सीमित है, अतः सभी इच्छाओं को एक साथ पूरा नहीं किया जा सकता। इसीलिए आवश्यकताओं के बीच प्राथमिकता निश्चित करनी ही पड़ती है। हाँ, संसाधनों को कई तरह से प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए जिस भूमि पर धान की खेती होती है उसी पर हम चाहे तो कोई व्यवसायिक फसल भी उगा सकते हैं। यदि संसाधन किसी वस्तु विशेष कर ही उत्पादन करने योग्य हों तो फिर चयन करने का कोई अर्थ नहीं रहता।

DIKSHANT IAS

2) आप सार्वजनिक बसों, अपनी साइकिल या मोटर साइकिल तथा यदि पैसा हो तो कार या टैक्सी का प्रयोग कर सकते हैं। कई नगरों में लोग स्थानीय रेलों, ट्रामों, यहाँ तक कि जलमार्गों का भी प्रयोग करते हैं।

Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

1) एक बेरोज़गार व्यक्ति कुछ भी उत्पादन नहीं करता, किंतु अन्य रोज़गार प्राप्त व्यक्ति कुछ न कुछ तो उत्पादन करता ही है, चाहे यह उसके संभाव्य या अधिकतम उत्पादन से कम हो।

2) यदि संसाधनों में वृद्धि हो तो दोनों ही वस्तुओं का अधिक उत्पादन संभव हो सकता है। उत्पादन संभावना वक्र बाहर की ओर खिसकेगा। हाँ, प्रयुक्त होने वाले तकनीकों, साधन उपलब्धि में सापेक्ष परिवर्तनों एवं उनकी प्रयोग कुशलता के प्रभाव अवश्य पड़ते हैं।

बोध प्रश्न 4

1) भौतिक तथा अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति अर्थशास्त्र एक निश्चित विज्ञान नहीं है। मानवीय व्यवहार में प्रकृति की भाँति पुनरावृति इतनी 'सुनिश्चित' नहीं होती। घटनाक्रम एक होने पर भी विभिन्न परिस्थितियों में, विभिन्न व्यक्तियों के व्यवहार में अंतर हो सकता है। अतः कोई भी शत-प्रतिशत आश्वस्त नहीं हो सकता कि सेब के दाम कम होने पर इनकी माँग में अवश्य ही वृद्धि होगी।

2) विश्लेषण अनुसंधान की वैज्ञानिक प्रणाली के प्रयोग करने के अर्थ में भाग 1.5.2 के रेखाचित्र को एक बार फिर ध्यान से देखें।

बोध प्रश्न 5

1) (क) आदर्शी (ख) वास्तविक (ग) वास्तविक (घ) आदर्शी (ङ) आदर्शी
(च) आदर्शी (छ) वास्तविक (ज) वास्तविक (झ) वास्तविक (ञ) आदर्शी।

इकाई 2 मूलभूत आर्थिक अवधारणाएँ

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र
2.3 अर्थशास्त्र में बाज़ार की अवधारणा
2.4 माँग का अर्थ
2.5 वस्तु का माँग-वक्र
2.6 पूर्ति का अर्थ
2.7 वस्तु का पूर्ति-वक्र
2.8 अर्थशास्त्र में कीमत का अर्थ
2.9 संतुलन एवं असंतुलन से अभिप्राय
2.10 सारांश
2.11 शब्दावली
2.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें
2.13 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

2.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428002240

इस इकाई में आप इन विषयों पर समुचित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे :

- अर्थशास्त्र की समष्टि एवं व्यष्टि अध्ययन शाखाओं में मूलभूत अंतर;
- बाज़ार की अवधारणा एवं इसकी कार्य प्रणाली;
- माँग एवं पूर्ति फलन;
- संतुलन एवं असंतुलन की अवधारणाएँ एवं अर्थशास्त्र में इनका महत्त्व; तथा
- माँग-पूर्ति द्वारा किसी वस्तु की कीमत एवं खरीदी-बेची गई मात्रा का निर्धारण।

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई का आरंभ हम व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र के भेद से कर रहे हैं। इस इकाई में केवल व्यष्टि अर्थशास्त्र के बारे में बात करेंगे और क्योंकि व्यष्टिगत अर्थशास्त्र का संबंध केवल व्यक्तिगत बाज़ारों से है, इसलिए हम बाज़ार की अवधारणा के बारे में बात करेंगे। बाज़ार व्यवहार के अध्ययन में किसी वस्तु की माँग एवं पूर्ति दो आधारभूत उपकरण हैं। यदि किसी वस्तु का बाज़ार है तो उसकी कीमत भी अवश्य ही होगी। अतः हमारा अगला कदम कीमत की अवधारणा की व्याख्या करना होगा। बाज़ार में सारा लेन-देन किसी न किसी कीमत पर ही होता है। बाज़ार में कीमत ही वस्तु की माँग एवं पूर्ति के बीच समानता लाकर 'संतुलन' पैदा करती है। अतः इस इकाई में हम संतुलन एवं असंतुलन की अवधारणाओं पर भी विचार करेंगे।

2.2 व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र

व्यष्टि और समष्टि शब्दों के अर्थ हैं छोटे और बड़े या सामूहिक। व्यष्टि अर्थशास्त्र आधारभूत आर्थिक इकाइयों जैसे कि एक उपभोक्ता, एक उत्पादक, एक उद्योग, एक उद्योग, एक बाज़ार या फिर किसी आगत के एक आपूर्तिकर्ता के व्यवहार से जुड़ा है। विश्लेषण की इकाई छोटी ही रहती है। समष्टि अर्थशास्त्र में हम बड़ी (व्यापक) इकाई का अध्ययन करते हैं। वास्तव में ये दोनों विश्लेषण विधियाँ एक अर्थव्यवस्था की कार्य पद्धति के अध्ययन से जुड़ी हैं। दोनों इस अध्ययन का आरंभ अलग-अलग दृष्टिकोणों से करती हैं। अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली का विश्लेषण दो बातों से प्रारंभ किया जाता है। इसमें प्रथम है व्यष्टि आर्थिक सिद्धांत जो कि व्यक्तिगत बाज़ारों (जैसे अनाज का बाज़ार), उपभोक्ताओं (जैसे गेहूँ के), फर्मों, उद्योगों पर केंद्रित है। व्यष्टि सिद्धांत में अर्थव्यवस्था की आधारभूत घटक इकाइयों पर ध्यान दिया जाता है। इस बात की सूक्ष्मता से जाँच की जाती है कि ये इकाइयाँ कैसे कार्य करती हैं, इनकी निर्णय प्रक्रिया क्या है और इनके परस्पर संबंध किस तरह संचालित होते हैं। दूसरा है समष्टिगत आर्थिक सिद्धांत जिसमें राष्ट्रीय व्यय, समग्र उपभोग, समग्र निवेश व्यय, रोज़गार का स्तर व सामान्य कीमत स्तर जैसे विस्तृत समूहों **(aggregates)** का अध्ययन किया जाता है। इसमें यह विश्लेषण किया जाता है कि इन विस्तृत समूहों के आपसी संबंधों के आधार पर अर्थव्यवस्था कैसे कार्य करती हैं, इन विस्तृत समूहों का व्यवहार क्या है, तथा इनका निर्धारण कैसे होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि व्यष्टि तथा समष्टि सिद्धांतों का अंतर इस बात पर आधारित है कि अर्थव्यवस्था का अध्ययन कितने छोटे या बड़े समूह के आधार पर किया जाता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र में सभी चर अपने वैयक्तिक स्वरूप में होते हैं जबकि समष्टि अर्थशास्त्र में उनके सामूहिक स्वरूप का अध्ययन होता है। इस दृष्टि से ये दोनों अर्थशास्त्र एक ही सिक्के के दो पहलू कहे जा सकते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि अंततः सभी आर्थिक निर्णय वैयक्तिक स्तर पर ही लिए जाते हैं और ऐसे छोटे-छोटे निर्णयों का सामूहिक उपभोग व्यय सभी उपभोक्ताओं के वस्तुओं और सेवाओं पर खर्च का योगमात्र है। इसी तरह से अर्थव्यवस्था के समष्टि व्यवहार का प्रभाव वैयक्तिक स्तर पर निर्णय लेने पर भी पड़ेगा। यदि आयकर की दरें बढ़ा दी जाएँ तो परिवारों की प्रयोज्य आय कम हो जाएगी, फर्मों की बिक्री कम होगी और परिणामस्वरूप उत्पादन में कटौती करना आवश्यक हो जाएगा। इस प्रकार एक समष्टि स्तर की घटना से अर्थव्यवस्था में व्यष्टि स्तर पर भी प्रतिक्रियाएँ अवश्य होती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

व्यष्टि अर्थशास्त्र में हमारा ध्यान मूलतः वस्तुओं और उत्पादक साधनों की सापेक्ष कीमतों पर केंद्रित रहेगा। इस दृष्टि से इसे कीमत सिद्धांत का नाम देना गलत नहीं होगा। जेम्स क्वर्क **(James Quirk)** का कहना है कि समष्टि अर्थशास्त्र एक ऐसी सैद्धांतिक रूपरेखा प्रदान करता है जिसके अनुसार अर्थशास्त्री फर्म, उपभोक्ता, उद्योग, वस्तु और बाज़ार जैसी मौलिक आर्थिक इकाइयों के व्यवहार और अंतःसंबंधों की व्याख्या कर सकते हैं। इस अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य यह बात समझाना है कि उत्पादन, विनिमय, वस्तुओं और सेवाओं के आबंटन आदि किस प्रकार सम्पन्न होते हैं और किसी समाज में ये क्रियाएँ विभिन्न प्रेरणाओं या प्रोत्साहनों के प्रति किस प्रकार व्यवहार करती है।

बोध प्रश्न 1

1) इनमें से कौन से कथन व्यष्टि अर्थशास्त्र से संबंधित हैं?

   क) यदि मुद्रास्फीति बढ़ती है तो भारतीय अर्थव्यवस्था वस्त्रों की कम मात्रा का ही निर्यात कर पाती है।

   .....

   .....

ख) गेहूँ की आपूर्ति बढ़ने पर इसकी कीमत गिर जाती है।

.....

.....

ग) मदर डेयरी में हड़ताल होने पर दूध की कीमत बढ़ जाती है।

.....

.....

घ) निवेश में वृद्धि होने से रोज़गार बढ़ता है।

.....

.....

2.3 अर्थशास्त्र में बाज़ार की अवधारणा

आम बोलचाल की भाषा में बाज़ार का अर्थ है वह स्थान जहाँ वस्तुओं और सेवाओं का क्रय-विक्रय हो– जैसे आज़ादपुर की सब्जी-मंडी, पहाड़गंज या कोटला की लक्कड़-मंडी, खारी बावली की अनाज-मंडी, चाँदनी चौक का कपड़ा बाज़ार, चावड़ी बाज़ार का कागज़ बाज़ार अथवा कीर्ति नगर का फर्नीचर बाज़ार। पर अर्थशास्त्र में बाज़ार का अर्थ इससे कहीं भिन्न और अधिक व्यापक है। एक अर्थशास्त्री की दृष्टि से बाज़ार उन जटिल गतिविधियों का नाम है जिनमें संभावित क्रेता और विक्रेता वस्तुओं और सेवाओं के क्रय-विक्रय करने के लिए एक-दूसरे के सम्पर्क में आते हैं। जहाँ भी और जब कभी दो या उससे अधिक व्यक्ति कुछ क्रय-विक्रय करते हैं तो वहीं पर चाहे स्थान या समय कुछ भी हो बाज़ार बन जाता है। क्रेता और विक्रेता की शारीरिक उपस्थिति **(physical presence)** अर्थशास्त्र की बाज़ार की अवधारणा के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। आधुनिक संचार व्यवस्था और कम्प्यूटर तकनीकों के विकास के कारण तो बाज़ार की स्थापना के लिए व्यक्तियों की उपस्थिति की आवश्यकता ही नहीं रह गई है। बस दो ऐसे व्यक्ति या समूह होने चाहिए जो विनिमय करने को उत्सुक हों। बाज़ार की मूलभूत विशेषता संभावित खरीदारों और विक्रेताओं के बीच सौदेबाजी है जिससे ही विनिमय की शर्तों का निर्धारण होता है। यहाँ संभावित शब्द पर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता है। बाज़ार में आने वाला हर व्यक्ति प्रचलित कीमतों पर कुछ न कुछ निश्चित मात्रा में खरीदारी करने या बेचने की मंशा से आता है। किंतु यदि प्रचलित कीमत अधिक हो तो कम कीमत पर खरीदारी के इच्छुक बाज़ार से बाहर ही रह जाते हैं। इसी तरह बाज़ार कीमत कम होने की स्थिति में ऊँचे दामों पर बिक्री करने की आशा में आए लोग बाज़ार से बाहर ही रह जाएँगे। बाज़ार की गतिविधियाँ यह निश्चित करेंगी कि कीमत क्या रहेगी, कितनी मात्रा का क्रय-विक्रय होगा और क्रेता-विक्रेता कौन होंगे। एक बाज़ार अर्थव्यवस्था में बाज़ार ही विभिन्न उत्पादों के बीच संसाधनों का आबंटन करता है। बाज़ार का स्वरूप पूर्ण प्रतियोगी, एकाधिकारी, अपूर्ण प्रतियोगी, एकाधिकारी प्रतियोगी या अल्पाधिकारी प्रतियोगी भी हो सकता है। बाज़ार का अस्तित्व संसाधनों के प्रयोग में कुशलता लाती है। बाज़ार से ही कौशलतापूर्ण निर्णय के लिए आवश्यक जानकारी मिलती है। इस जानकारी में वस्तुओं की प्रकृति, प्रचलित कीमत और संभावित क्रेता-विक्रेता आदि सम्मिलित रहते हैं। इनके अतिरिक्त बाज़ार से कोई और जानकारी नहीं मिलती। सामान्यतः बाज़ार की यह जानकारी निःशुल्क उपलब्ध रहती है, यद्यपि कुछ वस्तुओं से जुड़ी बाज़ार 'जानकारी के लिए' कभी-कभी समय, पैसा और प्रयास तीनों की ही आवश्यकता पड़ जाती है। आधुनिक संचार

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

व्यवस्था ने जानकारी के संग्रह, संचय और प्रयोग को काफी सहज बना दिया। इससे निश्चित रूप से निर्णय प्रक्रिया में सुधार हुआ है। अब बाज़ार के अस्तित्व और कुशलता पूर्ण व्यवहार के लिए केवल इतना ही आवश्यक है कि वस्तुओं के स्वामित्व के अधिकारों की परिभाषा सही ढंग से की गई हो, देश के कानून इन्हें संरक्षण देते हों और ये अधिकार हस्तांतरणीय हों। इन स्वामित्व अधिकारों का अर्थ है कि सम्पत्ति का स्वामी उस वस्तु के संबंध में कुछ फैसले स्वयं कर सके। इन फैसलों में सम्मिलित हैं : किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उस वस्तु के प्रयोग पर बंधन और यदि अन्य व्यक्ति इसे प्रयोग करे तो ऐसे प्रयोग के लिए कुछ कीमत वसूल कर सकना; और इन वस्तुओं और सेवाओं का स्वामित्व किसी और को पूरी तरह हस्तांतरित कर सकना। जेम्स क्वर्क कहते हैं 'अर्थव्यवस्था में उत्पादित, क्रय-विक्रय की गई और उपभोग की गई सभी चीज़ें सम्पत्ति अधिकार ही है जिन्हें हम वस्तुएँ कहते हैं। किसी भी समाज में आर्थिक गतिविधियों का स्वरूप सम्पत्ति अधिकारों के ढाँचे से पूरी तरह जुड़ा होता है क्योंकि इन्हीं सम्पत्ति अधिकारों से स्व-हितों **(self-interest)** की अभिव्यक्ति होती है और प्रोत्साहन प्रभावी होते हैं।'

2.4 माँग का अभिप्राय

अर्थशास्त्र में माँग का अर्थ प्रभावी माँग है न कि कुल **(absolute)** माँग। एक उपभोक्ता या परिवार द्वारा वस्तु की माँग का अर्थ है खरीदने की इच्छा के साथ-साथ भुगतान करने की क्षमता भी होना। दूसरे शब्दों में, वे ही मानवीय इच्छाएँ माँग कहलाती हैं जिनको प्राप्त करने के लिए क्रय-शक्ति भी हो। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी वस्तु की इच्छा तभी माँग बन सकती है जबकि वह व्यक्ति उस वस्तु की कीमत चुकाने को तैयार हो और कीमत अदा करने की क्षमता भी हो। यदि व्यक्तियों के पास दाम चुकाने की क्षमता हो तो बाज़ार में उनकी माँग प्रभावी माँग बन जाती है। सामान्यतः दाम चुकाने की क्षमता व्यक्ति की आय पर निर्भर करती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एक उदाहरण : एक भिखारी दूध पीना चाहता है पर उसके पास पैसे नहीं हैं अतः उसकी दूध की इच्छा को प्रभावी माँग नहीं कहा जा सकता। वह बाज़ार की क्रय-विक्रय की गतिविधि में भाग नहीं लग सकता। किंतु यदि वह व्यक्ति कहीं रोज़गार पाने में सफल हो जाए– किसी दुकान में मज़दूर बन जाए और अपने काम की एवज़ में उसे नकद मज़दूरी मिले– तो व्यक्ति अब बाज़ार से दूध खरीदने में समर्थ हो जाएगा। यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह व्यक्ति अब भिखारी नहीं रहा। वैसे यदि यह आदमी अपनी भीख में माँगी गई रकम में से दूध पैसे देने को तैयार हो तो भी उसकी माँग प्रभावी माँग बन जाएगी। अतः किसी व्यक्ति के लिए वस्तु बाज़ार में भाग लेने के लिए रोज़गारशुदा होना आवश्यक नहीं है। पहले उस व्यक्ति की दूध की माँग इच्छा मात्र थी पर अब प्रभावी माँग बन जाती है। अब बाज़ार माँग में इस व्यक्ति की माँग जुड़ गई और दुग्ध उत्पादक को इस माँग को ध्यान में रखकर उत्पादन करना होगा। अतः वस्तुओं की माँग के अस्तित्व के लिए दो शर्तों का पूरा होना आवश्यक है:

1) व्यक्ति की उस वस्तु को पाने की इच्छा हो;

2) इस वस्तु को पाने के लिए आय, क्रय शक्ति या भुगतान क्षमता हो।
साथ ही यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति कीमत चुकाना चाहता हो।

बोध प्रश्न 2

1) आपका वेतन तीन हज़ार रुपये मासिक है और आप ऑफिस आने-जाने के लिए टैक्सी का

प्रयोग करना चाहते हैं। क्या आपकी यह इच्छा टैक्सी सेवाओं की माँग कही जा सकती है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) आपको चाय बहुत पसंद है। इस बात का विश्लेषण करें कि आपकी चाय की माँग पर निम्न बातों का क्या प्रभाव पड़ेगा?

क) कॉफी महँगी हो जाए

.....

.....

ख) आपकी आमदनी बढ़ जाए

.....

.....

ग) और अचानक आपके घर में कुछ मेहमान आ टिकें।

.....

.....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.5 वस्तु का माँग-वक्र

भाग 2.4.1 में हमने एक वस्तु की माँग को प्रभावित करने वाले कुछ कारकों के बारे में बातचीत की है। पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन कारकों के अतिरिक्त भी कितनी ही बातें वस्तु की माँग को प्रभावित कर सकती हैं। फिर भी जिन चार कारकों के विषय में पहले चर्चा की गई है, वही माँग के प्रमुख निर्धारक माने जाते हैं। यदि हम वस्तु की अपनी कीमत के अलावा शेष तीनों कारकों का मान स्थिर मान लें तो वस्तु की अपनी कीमत और उसकी माँग में संबंध स्पष्ट हो सकता है। इसी को हम माँग-फलन, माँग-सारणी या माँग-वक्र का नाम देते हैं। माँग-सारणी वस्तु कीमतों तथा उनके साथ जुड़ी संभावित उपभोक्ता की माँगी गई मात्रा दिखाती है। उसे एक तालिका के रूप में दिखाया जा सकता है:

माँग तालिका

दूध की कीमत (रुपये प्रति लीटर)	20	15	10	5
माँगी गई मात्रा (लीटर)	1	1.5	3	6

माँग-वक्र किसी वस्तु की अपनी कीमत तथा माँगी गई मात्रा के बीच संबंध दर्शाता है। यह मात्रा तथा कीमत के बीच फलनीय संबंध **(functional relationship)** दिखाता है। मान लीजिए वस्तु

x है, उसकी माँग Q_x^d और उसकी कीमत P_x है, तो इस वस्तु का माँग-फलन (demand function) का स्वरूप यह होगा:

$$Q_x^d = f(P_x)$$

यह फलन केवल इतना बताता है कि माँगी गई मात्रा वस्तु की कीमत पर निर्भर करती है। यहाँ कीमत 'कारण' (cause) है और माँग 'प्रभाव' (effect)। दूसरे शब्दों में, यह भी कहा जा सकता है कि इस फलन में P_x स्वतंत्र चर (independent variable) है तथा Q_x^d उस पर आश्रित चर (dependent variable) है। इन्हें ही क्रमशः बहिर्जात (exogenous) तथा अंतर्जात (indogenous) नाम भी दिया जा सकता है। इस माँग-फलन की परिभाषा 'शेष सभी बातें पूर्ववत्' रहने की मान्यता के आधार पर की जाती है। इसका अर्थ यह है कि यदि कीमत के अतिरिक्त माँग पर प्रभाव डालने वाले अन्य कारक स्थिर रहें, तो माँग-फलन वस्तु की माँग पर पड़ने वाले प्रभाव की जानकारी देता है। दूसरे शब्दों में, जब किसी वस्तु की व उसकी माँग के संबंधों का विश्लेषण किया जाता है तो माँग पर प्रभाव डालने वाले कारकों को स्थिर माना जाता है। इन अन्य प्रभावी कारकों में संबंधित वस्तुओं की कीमतें, उपभोक्ता की आमदनी तथा उपभोक्ता की पसंद शामिल होती है।

माँग-वक्र का रेखाचित्र द्वि-आयामी होता है। हम क्षैतिज अक्ष (horizontal axix) पर माँगी गई मात्रा शीर्ष अक्ष (vertical axix) पर कीमतें दर्शातें हैं। इसे हम समझने हेतु क्रमशः 'पड़ी रेखा' तथा 'खड़ी रेखा' भी कह सकते हैं। हम जानते हैं कि वस्तु की कीमत तथा माँग के बीच विपरीत संबंध होता है। माँग-वक्र का बाएँ से दाएँ नीचे की ओर जाना इस संबंध को दिखाता है। सुविधा के लिए हम ऐसा वक्र सीधी रेखा वाला माँग-वक्र ले लेते हैं जो कि चित्र 2.1 में दिखाया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 2.1

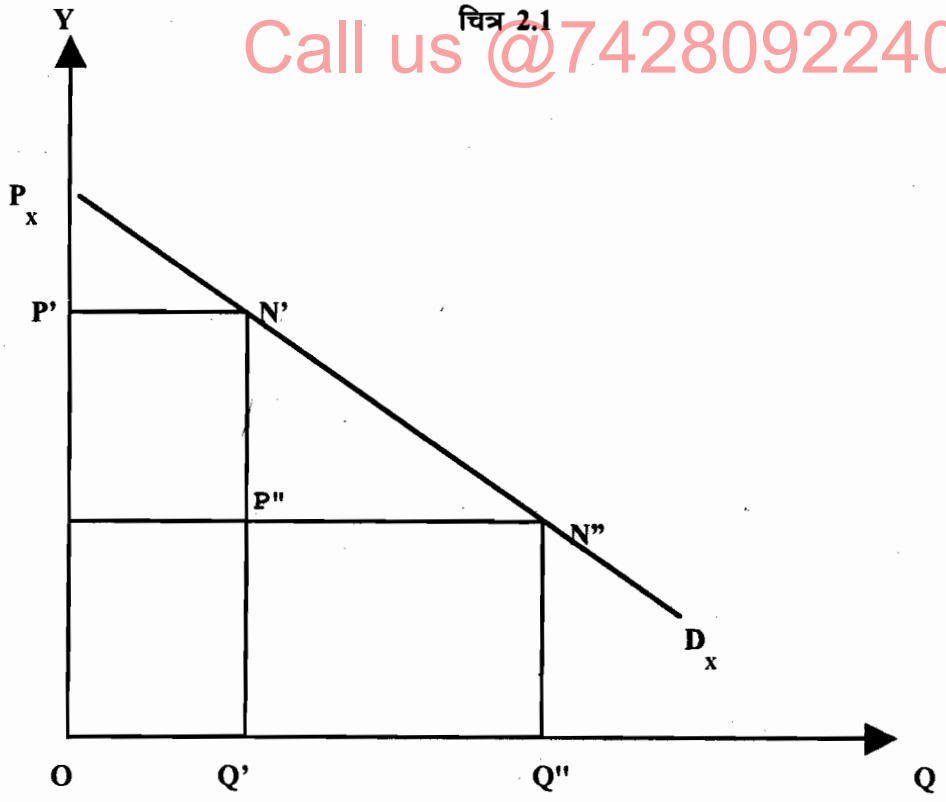

चित्र 2.1 : OP' कीमत पर उपभोक्ता D_x वक्र के बिंदु N' पर वस्तु की OQ' मात्रा की माँग करता है। कीमत गिरकर OP" हो जाने पर उपभोक्ता N" बिंदु पर पहुँच जाता है। अब वह OQ" मात्रा में इस वस्तु का उपयोग करेगा।

वस्तु (दूध) की माँगी गई मात्रा O_x को हमने क्षैतिज अक्ष (X-अक्ष) पर दर्शाया है और कीमत P_x को शीर्ष अक्ष (Y-अक्ष) पर। वस्तु की मात्रा सामान्यतः उस वस्तु की अपनी स्वाभाविक इकाइयों में दर्शाई जाती है– जैसे दूध की इकाई लीटर रहती है। इसी प्रकार हम कीमत रुपयों में– जैसे 8 रुपये प्रति लीटर या 12 रुपये प्रति लीटर आदि में दिखाते हैं। दाहिनी ओर ढलवाँ माँग-वक्र यह स्पष्ट करता है कि वस्तु की कीमत कम होने पर उसकी माँग अधिक हो जाती है। इसके विपरीत कीमत बढ़ने पर माँग कम हो जाती है। यह उपभोक्ता का सामान्य व्यवहार है। माँग-वक्र का ढलान दाहिनी ओर ही क्यों होता है, इस बारे में हम काफी विस्तार से इकाई 4 और 5 में चर्चा करने वाले हैं। एक दाहिनी ओर ढलवाँ माँग-वक्र ही माँग का नियम दर्शाता है। इस नियम के अनुसार अन्य सभी बातें स्थिर रहने पर उपभोक्ता कीमत कम होने पर ज्यादा माँग करता है तथा कीमत बढ़ने पर पहले की अपेक्षा कम माँग करता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि माँग-वक्र एक सीधी रेखा तो उससे जुड़ा हुआ माँग-फलन एक रेखीय फलन (linear equation) होगा, यथा :

$Q^d_x = a - bP_x$ यह 'a' मात्रा अवरोध (intercept) तथा 'b' ढलान (slope) है। 'b' मूल्य के कारण होने वाली माँग के दर में परिवर्तन को दिखाता है। इस प्रकार, एक और बात पर ध्यान देना आवश्यक है : यद्यपि हम माँग को कीमत पर निर्भर मानते हैं पर जब

$$b = \frac{dQ}{dP}$$

माँग-वक्र का रेखाचित्र बनाते हैं तो सामान्य गणितीय परंपरा से हटकर हम प्रतिलोम (inverse) चित्र का रेखांकन करते हैं। सही मायने में चित्र 2.1 हमारे माँग-फलन के प्रतिलोम स्वरूप अर्थात् $P_x = A - BQ_x$ का चित्र है। यहाँ $A = a/b$ है और यह कीमत अवरोध है, तथा $B = 1/b$ है और यह प्रतिलोम माँग-वक्र का ढलान तथा dP/dQ के समान है।

DIKSHANT IAS
Call Us @7428092240

नोट : अर्थशास्त्र में स्वतंत्र चर को शीर्ष-अक्ष (y-अक्ष) पर तथा आश्रित चर को क्षैतिज-अक्ष (x-अक्ष) दिखाने की परंपरा है। गणित में परंपरा इसके विपरीत है।

अपने सामान्य रूप में माँग-फलन $Qd_x = a - bP_x$ यह बताता है कि विभिन्न कीमतों पर उपभोक्ता अधिकतम कितनी-कितनी मात्रा खरीदने को तैयार होगा।

इसी तरह प्रतिलोम माँग-वक्र $P_x = A - BQ_x$ यह बताता है कि प्रत्येक मात्रा की उपभोक्ता अधिक से अधिक क्या कीमत चुकाने को तत्पर होगा (उसके पास उस कीमत को न चुकाने का केवल एक विकल्प बचता है कि वह उस वस्तु का उपयोग ही नहीं करे)। इस तरह से माँग-वक्र अपने दोनों ही स्वरूपों में उपभोक्ता की अधिकतम सीमा दिखाता है। OQ' मात्रा के लिए कोई उपभोक्ता Op' से अधिक कीमत नहीं देगा। दूसरे शब्दों में, OP' कीमत पर उपभोक्ता अधिक से अधिक OQ' मात्रा ही खरीदेगा।

उपभोक्ता द्वारा चुकाई गई कीमत का ही दूसरा नाम विक्रेता की औसत आय (agerage revenue) है। इसलिए प्रतिलोम माँग-वक्र को हम औसत आगम (AR) वक्र का नाम देते हैं। जहाँ पर यह माँग-वक्र कीमत अक्ष को स्पर्श करता है, वहाँ की मात्रा शून्य हो जाती है। इस तरह से हम कह सकते हैं कि A ऐसा कीमत स्तर है जिस पर उपभोक्ता को यह साहस ही नहीं होता कि वह कुछ खरीदारी कर ले। ऐसी कीमत को निषिद्ध (prohibited) कीमत कहते हैं।

1) माँग-फलन इस प्रकार हैं : $Q = 40 - 0.5\ P$। ज्ञात करें कि कीमत क्रमशः 5,4,3,2 तथा 1 रुपया प्रति इकाई होने पर उपभोक्ता कितनी-कितनी माँग करेगा।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) नीचे दिए गए दो फलनों का आप अर्थ (interpretation) किस प्रकार निकालेंगे?

a) $Q = 100 - 2P$

b) $P = 50 - 0 - 5\ Q$

इनकी व्याख्या करें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.6 पूर्ति का अर्थ

अपने तकनीकी ज्ञान और संसाधन मात्रा के अनुसार उत्पादन कर सकने की क्षमता को ही किसी उत्पादक अथवा फर्म की पूर्ति कहते हैं। किसी वस्तु के उत्पादन होने पर ही उसकी पूर्ति संभव होगी। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि पूर्ति उत्पादन के साथ ही जुड़ी हुई है।

2.7 वस्तु का पूर्ति-वक्र

किसी वस्तु का कितना उत्पादन होगा या उसकी कितनी मात्रा बाज़ार में उपलब्ध कराई जाएगी। यह बात अनेक कारकों पर निर्भर है। इन कारकों में से प्रमुख है वस्तु की अपनी कीमत, उसके उत्पादन में लगे साधनों की कीमतें तथा प्रौद्योगिकी इत्यादि। सामान्यतः हम वस्तु का उसकी अपनी कीमत को ही सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण कारक मानते हैं। इसी के अनुसार उत्पादक अपने पूर्ति संबंधी निर्णय लेता है। अतः किसी वस्तु की पूर्ति फलन का सामान्य स्वरूप इस प्रकार रहता है :

$$Q^s_x = (P_x)$$

यहाँ x वस्तु का द्योतक है। यह फलन एक प्रकार का कारण-प्रभाव संबंध दर्शाता है। इस फलन का अर्थ है कि वस्तु की कीमत तथा पूर्ति में प्रत्यक्ष संबंध है। यदि कीमत में वृद्धि होगी तो उत्पादक पहले की अपेक्षा ज्यादा मात्रा उत्पादित कर बाज़ार में भेजना चाहेगा। इसके विपरीत यदि बाज़ार कीमत में गिरावट आती है तो उत्पादक भी उत्पादन एवं आपूर्ति और कम करने को बाध्य हो जाता है। उत्पादकों का यही सामान्य व्यवहार होता है। पूर्ति फलन द्वारा दर्शाया गया यह संबंध भी माँग-वक्र की ही भाँति 'अन्य सभी बातें पूर्ववत्' रहने की मान्यता पर आश्रित हैं। इन पूर्ववत् रहने वाली बातों में तकनीकी ज्ञान, साधनों की कीमतें तथा अन्य सभी वस्तुओं की कीमतें आदि सम्मिलित हैं।

एक आपूर्ति तालिका में किसी वस्तु x की विभिन्न कीमतों पर किसी उत्पादक द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली मात्राएँ दिखाई जाती हैं। यह तालिका बताती है कि बाज़ार में अलग-अलग कीमतों पर यह उत्पादक कितनी-कितनी मात्रा में यह वस्तु बेचने को तैयार होगा। इस तालिका का स्वरूप कुछ इस तरह हो सकता है:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पूर्ति तालिका

वस्तु x कीमत (प्रति इकाई) (रुपये)	वस्तु x की उत्पादित/बाज़ार में भेजी गई मात्रा (इकाइयों में)
9	100
8	80
7	75
6	65
5	45

इसी तालिका को हम द्वि-अक्षीय चित्र में भी दिखा सकते हैं। माँग-वक्र की भाँति यहाँ भी कीमत की शीर्ष-अक्ष पर और पूर्ति की क्षितिजीय अक्ष पर मात्रा दिखाई जाती है। इसे ही पूर्ति-वक्र कहा जाता है। हम चित्र 2.2 में उपरोक्त आँकड़ों पर आधारित पूर्ति-वक्र दिखा रहे हैं:

चित्र 2.2

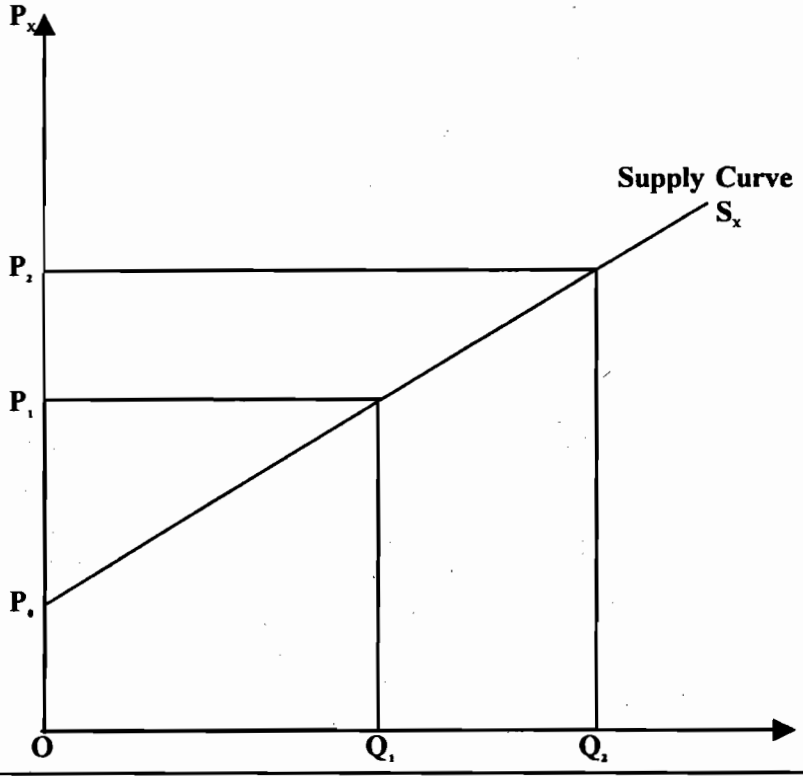

चित्र 2.2: जब मूल्य OP_0 होता है तो उत्पादक कुछ भी पूर्ति नहीं करता। जब मूल्य OP की ओर बढ़ता है पूर्ति OQ_1 होता है। जब मूल्य OP_2 को पहुँचता तब उत्पादक OQ_2 की पूर्ति को इच्छुक रहता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पूर्ति-वक्र रेखीय भी हो सकता है और वक्रीय भी। हम चित्र 2.3(क) तथा 2.3(ख) में ये दोनों दिखा रहे हैं। मुख्य बात यह है कि जैसे वस्तु की कीमत बढ़ती जाती है उत्पादक पहले की अपेक्षा ज्यादा मात्रा बाजार में बेचने को प्रस्तुत होता है। ऊँची कीमत अधिक आपूर्ति को आकृष्ट करती है।

चित्र 2.3(क) तथा 2.3(ख)

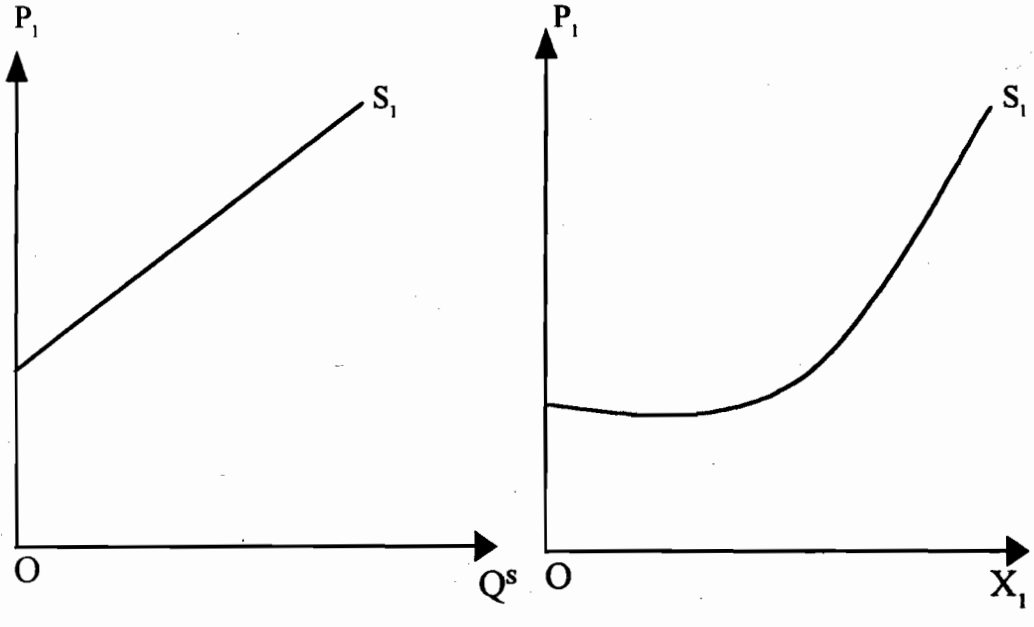

चित्र 2.3 (क) तथा 2.3 (ख) दिखा रहे हैं कि पुर्ति वक्र रेखाएं और वक्रीय हो सकती हैं।

बाज़ार में बेचने को प्रस्तुत होता है। ऊँची कीमत अधिक आपूर्ति को आकृष्ट करती है। बाज़ार आपूर्ति-वक्र अथवा पूर्ति-वक्र किसी बाज़ार में कार्य कर रहे सभी उत्पादकों के पूर्ति-वक्रों का योग होता है क्योंकि यह वक्र पूर्ति फलन का वक्र है, यह भी 'अन्य सभी बातें पूर्ववत्' रहने की मान्यता पर आधारित है और केवल वस्तु की अपनी कीमत तथा उपलब्ध करायी जा रही मात्रा के बीच के संबंध को ही दिखाता है।

माँग तथा पूर्ति की अवधारणाओं की परिभाषाओं में 'संभावित' शब्द पर बहुत बल दिया जाता है। प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेता बाज़ार में कुछ पूर्वधारणाओं के साथ ही प्रवेश करता है। यदि क्रेता किसी विशेष कीमत तक ही खरीदारी के इरादे से बाज़ार में आते हैं तो अधिक कीमत वृद्धि उन्हें बिना कुछ खरीदे ही वापिस जाने को मजबूर कर सकती है। इसी प्रकार कीमत बहुत कम रहने पर जो विक्रेता ऊँचे दामों में माल बेचना चाहते थे उन्हें मायूस लौटना पड़ सकता है। अतः प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेता बाज़ार के लेन-देन में संभावित भागीदार ही होता है। वास्तव में कौन कितनी मात्रा खरीदता या बेचता है यह सब तो उनकी बाज़ार कीमतों से अपेक्षाओं तथा वास्तविक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसीलिए माँग एवं पूर्ति की परिभाषाओं में 'संभावित' पर इतना बल दिया जाता है।

चित्र 2.4

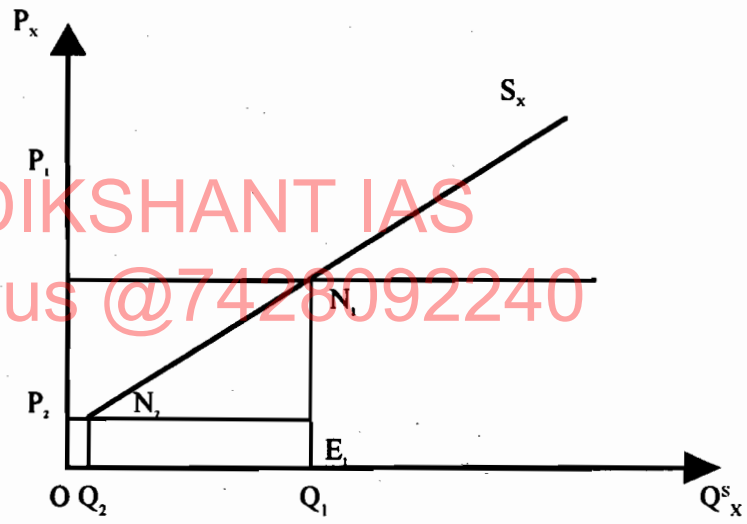

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 2.4 पर गौर कीजिए, यदि बाज़ार में OQ_1 मात्रा आनी ही चाहिए तो ऐसा OP_1 स्तर पर ही संभव होगा। यदि कीमत E_1Q_1 हो जाए तो OQ_1 उत्पादन करना तथा बाज़ार में भेजना सहज नहीं होगा। यदि उत्पादक इस कीमत पर भी OQ_1 का ही उत्पादन करेगा तो वह निश्चित रूप से घाटे में रहेगा।

माँग-वक्र की ही भाँति पूर्ति-वक्र भी विक्रेताओं (उत्पादक-विक्रेताओं) की कितनी मात्रा बेचने की तैयारी है, या योजना है, इसी बात को दर्शाता है। किसी कीमत स्तर पर उत्पादक ज्यादा से ज्यादा कितनी मात्रा बेचना चाहता है, इसी बात को हम पूर्ति-वक्र द्वारा दिखाते हैं। दूसरे शब्दों में, हम यह भी कह सकते हैं कि यदि हम यह सुनिश्चित करना चाहें कि किसी वस्तु की पूर्व निर्धारित मात्रा का उत्पादन अवश्य हो तो हमें उसकी न्यूनतम कितनी कीमत देने को तैयार रहना चाहिए। पूर्ति-वक्र यह बताता है कि वस्तु का उत्पादक अपनी लागतें पूरी करने एवं कुछ सामान्य लाभ अर्जित करने हेतु न्यूनतम कितनी कीमत प्राप्त करना आवश्यक समझता है।

1) एक आपूर्ति-वक्र इस प्रकार है : $Q = -4 + 4P$
यदि कीमत क्रमशः 1, 2, 3, 4, 5 तथा 6 रुपये प्रति इकाई हो तो मात्रा कितनी-कितनी रहेगी ?

.....

.....

.....

.....

.....

2) निम्नांकित दो फलनों पर ध्यान दें :

क) $Q = -2 + 4P$

ख) $P = 5 + 0.25Q$

.....

.....

.....

.....

.....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.8 अर्थशास्त्र में कीमत का अर्थ

अर्थशास्त्री जब भी बात करते हैं, वे किसी न किसी तरह की कीमत तक ज़रूर पहुँच ही जाते हैं। उनकी बातचीत में गेहूँ या दूध की अथवा फिर कार या सब्जियाँ या फिर साधन सेवाओं की कीमतों जैसे मज़दूरी या ब्याज-भाड़ा सहज रूप से सम्मिलित रहते हैं। यदि बाज़ार में कोई वस्तु या सेवा है तो उसकी कीमत भी अवश्य ही होती है। कीमत दो प्रकार से व्यक्त की जा सकती है। प्रथमतः, हम कीमत को एक धारक वस्तु के रूप में व्यक्त कर सकते हैं। यदि सोना हमारा सामान्य मूल्यानधारक हो तो फिर हर वस्तु की सुनिश्चित मात्रा का मूल्य मान सोने की पूर्व निश्चित इकाइयों में व्यक्त होगा। जैसे एक ग्राम सोना, प्रति क्विंटल गेहूँ आदि। इस बात पर ध्यान अवश्य दीजिए कि ऐसी व्यवस्था में मूल्यानधारक की अपनी कीमत सदा एक इकाई ही रहती है। सैद्धांतिक दृष्टि से किसी भी वस्तु को मूल्यानधारक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। पर व्यावहारिक दृष्टि से कुछ निश्चित गुणधर्मों वाली वस्तु ही इस कार्य को सहज भाव से पूरा कर सकती है। ये गुण हैं : इस वस्तु की बहुत छोटी-छोटी इकाइयाँ करना संभव हो, यह बहुत फैलावपूर्ण न हो, इसमें भौतिक क्षय नहीं होता हो तथा इसे एक स्थान से दूसरे, स्थान तक सुगमतापूर्वक ले जाना संभव हो। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि हमारा वस्तु का सामान्य लेन-देन में इस्तेमाल आशय करना नहीं है।

इसे तो केवल लेख की ऐसी इकाई **(unit of account)** की तरह ही प्रयोग करना चाहते हैं जिसमें सभी अन्य वस्तुओं के मूल्य व्यक्त हो सकें। अतः मूल्यानधारक की इकाइयों में व्यक्त कीमतें विभिन्न वस्तुओं की विनिमय दरें ही बन जाती हैं। सभी कीमतें X_i/X_g तरह के अनुपात हैं जहाँ X वस्तु की 'i' सहज प्राकृतिक इकाई है तथा X_g सोने की इकाई है।

कीमत को व्यक्त करने का दूसरा तरीका इसे लेखा के एक परम (absolute) इकाई में व्यक्त करना है। इसके साथ कोई भौतिक तत्त्व नहीं जुड़ा होता। यदि किसी वस्तु की एक इकाई बेची जाती है तो क्रेता के खाते में कुछ लेखा इकाइयाँ जुड़ जाती हैं। खरीदार के खाते से उतनी ही लेखा इकाई घटाना इसी लेन-देन का दूसरा पहलू होता है। इस तरह किसी वस्तु की कीमत खाते में जोड़ी गई (या घटाई गई) प्रति इकाई लेखा इकाइयों की संख्या बन जाती हैं। भारत में रुपया ऐसी ही लेखा इकाई है। अतः किसी भी वस्तु की कीमत उसकी एक इकाई के बदले लिए (या दिए) जाने वाले रुपयों की संख्या ही होगी। 'नोट और सिक्कों का अपना कोई निहित मूल्य नहीं होता। ये तो केवल सभी खातों में जमा में दिखाई जाने वाली लेखा इकाइयों का चिह्न मात्र है। उपरोक्त दोनों विचारों की तुलना से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दूसरी अभिव्यक्ति ही वास्तव में कीमतों का सही व्यावहारिक स्वरूप है।' (Gravelle and Rees)।

बोध प्रश्न 5

1) यदि चार किलोग्राम गेहूँ के बदले एक किलोग्राम चावल का विनिमय हो तो यहाँ कीमत की कौन-सी अवधारणा का प्रयोग होगा?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

DIKSHANT IAS
Call us @7428002240

2) एक साइकिल की कीमत एक हजार रुपये है। यह कीमत का कौन-सी अवधारणा का संकेत देता है।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.9 संतुलन तथा असंतुलन का अर्थ

अन्य कई अवधारणाओं की तरह अर्थशास्त्र में संतुलन की अवधारणा भी भौतिकी, विशेष रूप से यांत्रिकी भौतिकी, से ली गई है। यांत्रिकी में संतुलन वह अवस्था है जब विभिन्न परस्पर विरोधी शक्तियों के प्रभाव के अधीन कोई पिण्ड (body) अपनी यथास्थिति में ही बना रहता है। दूसरे शब्दों में विभिन्न शक्तियों के प्रभाव एक-दूसरे को इस प्रकार काट देते हैं कि पिण्ड की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आता। दोनों ओर की शक्तियों में संतुलन हो जाता है। इसी तरह अर्थशास्त्र में भी

बाज़ार में तभी संतुलन होता है जबकि संभावित क्रय और विक्रय शक्तियाँ संतुलन में आती हैं। दूसरे शब्दों में, जब संभावित विक्रेता उतनी ही मात्रा बेचना चाहते हों जितनी कि संभावित क्रेता खरीदने के लिए तत्पर हैं तो बाज़ार में संतुलन आ जाएगा। जिस कीमत पर यह क्रय-विक्रय तय होता है। वहीं संतुलन कीमत होगी तथा जितनी मात्रा का इस कीमत पर विनिमय होता है उसी को संतुलन मात्रा कहा जाता है। संतुलन की यह अवधारणा स्थैतिक **(static)** है– यह बाज़ार में आराम की स्थिति की सूचक है। जब तक माँग एवं पूर्ति की शक्तियों में कोई बदलाव नहीं आता, बाज़ार में प्रत्येक विनिमय काल में उसी कीमत पर उतना ही लेन-देन होता रहता है। बाज़ार के 'आराम' के रूप में यहाँ संतुलन की परिभाषा की गई है।

संस्थापक **(neo-classical)** अर्थशास्त्र में संतुलन के विचार को कुछ अलग प्रकार से बताया गया है। यहाँ संतुलन की परिभाषा व्यक्तियों (यानि बाज़ार के भागीदारों) द्वारा चुनी हुई स्थिति के रूप में की जाती है। ग्रेवल एवं रीस **(Gravelle and Rees)** के अनुसार संतुलन वहीं होता है जहाँ आर्थिक एजेंट अपने आपको उसी स्थिति में पाते हैं, जिसमें वे अपने आपको पाना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में, यदि किसी कीमत पर जितना माल सभी उत्पादक बेचना चाहते हों बिक सके तथा जितना क्रेता लोग खरीदना चाहते हों खरीद सकें एवं यह खरीदी-बेची गई मात्रा भी एक समान ही हो तो बाज़ार में संतुलन होगा। इस बात की संभावना रहती है कि संतुलन की दोनों अवधारणाएँ हर परिस्थिति में समान रूप से लागू नहीं। लेकिन पूर्ण प्रतियोगिता की कीमत निर्धारण मॉडल में जहाँ माँग एवं पूर्ति-वक्र एक-दूसरे को काटते हैं, उसी बिंदु पर संतुलन संबंधी दोनों अवधारणाएँ एक समान ठीक बैठती हैं। स्थैतिक व्यष्टि अर्थशास्त्र **(static micro theory)** में हमारा संबंध बाज़ार की संतुलन स्थिति से ही है।

जब बाज़ार में माँग और पूर्ति की शक्तियों के बीच संतुलन नहीं रहता तो इसे ही असंतुलन का नाम दिया जाता है। जितनी मात्रा उपभोक्ता खरीदना चाहते हैं उस कीमत पर उत्पादक उतनी मात्रा बेचने को तत्पर नहीं होते। ऐसी स्थिति में बाज़ार में या तो माल जमा होने लगता है या फिर वस्तु की कमी हो जाती है। ऐसी स्थिति में कई बार सरकार बाज़ार को संतुलन में लाने के लिए अपने पास सुरक्षित भण्डारों के माध्यम से बाज़ार में सक्रिय हो सकती है। बाज़ार के असंतुलन को सुधारना अनिवार्य हो जाता है। ऐसा आर्थिक विश्लेषण गत्यात्मक **(dynamic)** कहलाता है। इसमें विभिन्न समय बिंदुओं पर बाज़ार का व्यवहार निहित रहता है। बाज़ार के असंतुलन की स्थिति में आर्थिक निर्णय करने वाले अधिकारियों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है। वास्तव में तो संतुलन की स्थिति कभी भी प्राप्त नहीं हो पाती। अर्थव्यवस्था संतुलन की ओर जैसे ही बढ़ने लगती है, कोई न कोई गत्यात्मक शक्ति संतुलन प्राप्त करने में रुकावट डाले देती है। अतः यह कहा जा सकता है कि गत्यात्मक शक्ति संतुलन प्राप्त करने में रुकावट डाल देती है। अतः यह कहा जा सकता है कि असंतुलन का अध्ययन ही अधिक प्रासंगिक है। लेकिन इसकी अपेक्षा संतुलन का विश्लेषण सरल है और उसे करना आसान भी है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 6

1) तालिका में दी गई माँग एवं पूर्ति जानकारी को ध्यान से देखें और बताइए कि संतुलन स्तर पर कीमत तथा मात्रा क्या होगी?

कीमत	0	10	20	30	40	50	60
माँग	100	90	75	65	40	30	15
पूर्ति	0	0	40	65	80	90	100

2.10 सारांश

हमने इस इकाई का आरंभ समष्टि एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र के बीच भेद से किया था। ये दोनों ही स्वरूप एक बाज़ार आश्रित अर्थव्यवस्था की कार्य-प्रणाली का अलग-अलग ढंग से ज्ञान कराते हैं। इनमें केवल समूहन तथा विसमूहन के स्तर का ही अंतर है। व्यष्टि अर्थशास्त्र में हम वि-समूहन **(disaggregation)** को इस स्तर तक ले जाते हैं कि केवल एक ही उपभोक्ता या एक ही उत्पादक-विक्रेता के व्यवहार पर चर्चा केंद्रित हो जाती है। समष्टि अर्थशास्त्र में आर्थिक इकाइयों तथा बाज़ारों को इस प्रकार समूहन **(aggregation)** करते हैं कि हमें उपभोग, निवेश रोज़गार या फिर वस्तु बाज़ार, मुद्रा बाज़ार या साधन बाज़ार जैसी बड़ी-बड़ी श्रेणियों के ही व्यवहार पर चर्चा करते हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र आंशिक संतुलन **(partial equilibium)** विश्लेषण पर आधारित है। इसमें प्रत्येक बाज़ार का अध्ययन शेष अर्थव्यवस्था को अलग रखते हुए किया जाता है। पर समष्टि अर्थशास्त्र व्यापक संतुलन **(general equilibium)** पर आधारित है जिसमें सभी बाज़ार एक दूसरे से संबंधित होते हैं। अर्थशास्त्र, समष्टि हो या व्यष्टि, बाज़ार से जुड़ा हुआ है। इसीलिए हमने बाज़ार की अवधारणा अर्थशास्त्री के दृष्टिकोण से। एक आम आदमी भले ही बाज़ार को ऐसा स्थान मानता हो जहाँ क्रेता-विक्रेता अपने-अपने लाभ की दृष्टि से सौदेबाज़ी करते हों, पर अर्थशास्त्र की दृष्टि से जब भी कोई दो व्यक्ति, स्थान या संदर्भ कुछ भी हो लेन-देन करना चाहते हों, बाज़ार बन जाता है। इस प्रकार किसी तरह की भौतिक सीमाओं का मोहताज़ नहीं रहता। ऐसा परिवहन एवं संचार की आधुनिक तकनीक के विकास के कारण संभव हुआ है।

बाज़ारों में संभावित उपभोक्ता क्रेता तथा उत्पादक विक्रेता लेन-देन करते हैं। अतः क्रेताओं के माँग-फलन एवं विक्रेताओं का पूर्ति फलन ही वे दो शक्तियाँ हैं जो बाज़ार में संतुलन (कीमत) एवं उस कीमत पर खरीदी-बेची गई मात्रा का निर्धारण करती हैं। हमने कीमत को एक लेखा-इकाई के रूप में परिभाषित किया है। यह इकाई अमूर्त **(abstract)** भी हो सकती है तथा वास्तविक भी। भारत में वस्तुओं की कीमतें हम रुपयों में व्यक्त करते हैं। किसी वस्तु की एक इकाई के लिए दिए गए रुपये ही उस वस्तु की कीमत कहे जाते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428002240

अर्थशास्त्र में संतुलन कीमत वह कीमत है जिस पर माँगी गई मात्रा पूर्ति के समान होती है। इस कीमत पर बाज़ार में खरीदार उतनी मात्रा लेना चाहते हैं जितनी की विक्रेता बेचने को उत्सुक हैं। अतः विक्रय के लिए आया सारा माल बिक जाता है। माँग-वक्र दाहिनी ओर ढलवाँ होता है तथा पूर्ति-वक्र दाहिनी ओर उठता हुआ होता है। अतः संतुलन कीमत के अतिरिक्त किसी भी अन्य कीमत पर बाज़ार में असंतुलन होगा, अर्थात् या तो माँग पूर्ति से अधिक होगी या कम रह जाएगी। माँग एवं पूर्ति के एक समान न होने का ही दूसरा नाम बाज़ार का असंतुलन है। यह असमानता ऐसी प्रक्रिया को जन्म देती है कि माँग अथवा पूर्ति (अथवा दोनों ही) में इस तरह के उतार-चढ़ाव आते हैं कि बाज़ार पुनः संतुलन की ओर अग्रसर होता है। संतुलन की ओर बाज़ार की यात्रा तभी सफल हो पाती है जबकि माँग एवं पूर्ति-वक्र सामान्य आकार-प्रकार के हों। अन्यथा, यदि संतुलन हो भी तो वह स्थायी नहीं रहता।

2.11 शब्दावली

असंतुलन : विरोधी शक्तियों के बीच संतुलन का अभाव। जब माँग एवं पूर्ति की शक्तियों का सामंजस्य नहीं रहता तो असंतुलन हो जाता है।

माँग चक्र	:	'अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर' विभिन्न कीमतों पर उपभोक्ता कितनी मात्रा में वस्तु को खरीदना चाहता है– इसी संबंध को दर्शाने वाला रेखाचित्र ।
पूर्ति एवं पूर्ति फलन	:	पूर्वनिर्धारित संसाधन, कीमतों तथा तकनीकी ज्ञान स्तर पर विभिन्न कीमतों पर वस्तु की उत्पादन मात्रा उसकी पूर्ति है । इस कीमत एवं पूर्ति के बीच के संबंध को ही पूर्ति फलन का नाम दिया जाता है ।
कीमत	:	किसी वस्तु की इकाई के लिए प्राप्य मूल्यानधारक (व्यवहार में मुद्रा) की इकाइयों की संख्या ।
बाज़ार	:	जब भी दो (या अधिक) व्यक्ति कुछ क्रय-विक्रय करने के लिए तैयार हों, बाज़ार का सृजन हो जाता है । यह बाज़ार समय, काल या स्थान की सीमाओं से बँधा हुआ नहीं रहता । आधुनिक संचार व्यवस्था के विकास ने बाज़ार को भौगोलिक सीमाओं से मुक्त कर दिया है ।
माँग	:	वे मानवीय इच्छाएँ जिन्हें पूरी करने के लिए कीमत भुगतान करने की इच्छा तथा योग्यता हो । यह प्रभावी माँग है– केवल आकांक्षा मात्र नहीं ।
माँग-फलन	:	'अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर' वस्तु की अपनी कीमत एवं उसकी माँग की मात्रा के बीच का संबंध ।
व्यष्टि	:	विश्लेषण की एक छोटी-सी इकाई ।
संतुलन	:	परस्पर शक्तियों के समान होने की स्थिति । बाज़ार में जब माँग तथा पूर्ति बराबर हो जाए तो माँग शक्तियों तथा पूर्ति शक्तियों के बीच सामंजस्य हो जाता है ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Lipsey, Richard (1997), *Introduction to Positive Economics* (8th Edition), Oxford University Press (ELBS Edition), London.

Salvatore, D.(1996), *Micro Economic Theory* (Schaum Series 3rd Edition), McGraw-Hill Book Co., New York.

Begg, D.R., Dornbusch, S.Fischer(1991), *Macroeconomics* (4th Edition), McGraw-Hill Book Co. New York

Salvatore D.(1995), *Micro Economics* (2nd Edition), Harper Collins Publishers, New York.

Nicholson, W.(1995), *Intermediate Micro Economics* (VIth Edition), Dryden Press, New York.

Trearthen Timothy (1996), *Micro Economics,* (1st Edition, 1996) Macmillan, New York.

2.13 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) क) व्यष्टि अर्थशास्त्र

ख) व्यष्टि अर्थशास्त्र

ग) व्यष्टि अर्थशास्त्र

घ) समष्टि अर्थशास्त्र

बोध प्रश्न 2

2) तीन हजार रुपये की मासिक आमदनी वाला व्यक्ति टैक्सी से आने-जाने का खर्च नहीं उठा सकता। अतः आपकी टैक्सी की यात्रा की इच्छा केवल एक महत्त्वाकांक्षा रह जाती है प्रभावी माँग नहीं बन पाती।

3) चाय की माँग वक्र दाहिनी और खिसक है। अर्थात् पुरानी कीमतों पर आप अपेक्षाकृत अधिक चाय खरीदना चाहते हैं। इसी को माँग से वृद्धि का नाम भी दिया जाता है।

बोध प्रश्न 3

1)

कीमत (रुपयों में)	माँग (मात्रा) : Q = 40-0.5P (भौतिक इकाइयों में)
5	37.5
4	38.0
3	38.5
2	39.0
1	39.5
0	40.0

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) क) किसी भी दी हुई कीमत पर यह समीकरण माँग की मात्रा दर्शाता है, अतः इसे माँग-फलन कहा जा सकता है।

ख) यह किसी भी निश्चित मात्रा की यह अधिकतम कीमत दिखाता है जो उपभोक्ता चुकाने को तैयार है। अतः यह समीकरण विलोम माँग-वक्र (inverse demand curve) दिखाता है।

1)

कीमत (रुपयों में)	माँग (मात्रा) : Q = 4 – + 4P (भौतिक इकाइयों में)
1	0
2	4
3	8
4	12
5	18
6	20

2) क) यह समीकरण दिखलाता है कि किसी भी दी गई कीमत पर उत्पादक कितनी मात्रा बेचने को तैयार होगा। अतः यह पूर्ति-वक्र है।

ख) यह विलोम पूर्तिवक्र है। यह उस न्यूनतम कीमत को दिखाता है जिसे एक उत्पादक पूर्व निश्चित मात्रा की आपूर्ति के बदले स्वीकार करने को तत्पर हो। इसमें उत्पादन लागत तो पूरी होनी ही चाहिए।

बोध प्रश्न 5

DIKSHANT IAS
Call us @7428002240

1) कीमत एक विनिमय दर के रूप में। यह एक लेखा की इकाई द्वारा व्यक्त की गई है।

2) यह किसी वस्तु की मौद्रिक कीमत है। इसे रुपये नामक आमूर्त इकाई में व्यक्त किया गया है।

बोध प्रश्न 6

1) संतुलन कीमत 30 रुपये तथा संतुलन मात्रा 65 किलोग्राम।

इकाई 3 आर्थिक विश्लेषण की विधियाँ

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 विषय प्रवेश
3.2 आंशिक एवं व्यापक संतुलन में भेद
3.3 स्थैतिक एवं गत्यात्मक विश्लेषण
3.4 आर्थिक सिद्धांतों की रचना एवं सत्यता की जाँच
3.5 आर्थिक सिद्धांत एवं नियम
3.6 स्टाक चर तथा प्रवाह चर
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको निम्न बातों से परिचित कराया जा रहा है:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- विश्लेषण की आंशिक एवं व्यापक संतुलन विधियों में भेद;
- आर्थिक सिद्धांतों तथा आर्थिक नियमों में भेद (यदि हो तो);
- स्टाक चर तथा प्रवाह चर में भेद; और
- जाँच की वैज्ञानिक पद्धति द्वारा आर्थिक सिद्धांतों की रचना करना।

3.1 विषय प्रवेश

इस इकाई में हम आर्थिक विश्लेषण की विधियों की चर्चा को और आगे बढ़ा रहे हैं। हम पहले तो आंशिक और व्यापक संतुलन के बारे में बातचीत करेंगे। आंशिक संतुलन विधि में केवल एक बाज़ार के अपने संतुलन पर ही सारा ध्यान केंद्रित रहता है मानो बाकी अर्थव्यवस्था का अस्तित्व ही न हो। दूसरी ओर, व्यापक संतुलन अर्थव्यवस्था के सभी बाज़ारों में एक साथ समन्वित रूप से संतुलन की प्राप्ति की ओर हमारा ध्यान केंद्रित कराता है। अर्थशास्त्रियों को आवश्यकतानुसार दोनों ही विधियों का प्रयोग करना पड़ता है। किसी समस्या को ठीक से समझने के लिए व्यापक संतुलन विधि से विश्लेषण आवश्यक होता है तो किसी प्रश्न पर आंशिक विश्लेषण विधि से आवश्यक प्रकाश डाला जा सकता है। इस बारे में और विस्तार से हम भाग 3.2 में चर्चा करेंगे।

हम विश्लेषण की विधियों के स्वरूप में एक अन्य दृष्टि से भी भेद करते हैं। कुछ विधियाँ एक स्थिति विशेष की जानकारी देती हैं। इन्हें स्थैतिक विधियाँ कहा जाता है। कुछ अन्य विधियाँ स्थितियों में परिवर्तन के अध्ययन में उपयोगी रहती हैं। उन्हें हम गत्यात्मक विश्लेषण विधियों का नाम देते हैं। आंशिक विश्लेषण की भाँति ही स्थैतिक विश्लेषण अपेक्षाकृत आसान रहता है जबकि व्यापक संतुलन तथा गत्यात्मक विश्लेषण में काफी जटिलताओं का सामना करना पड़ता है।

हम विश्लेषण विधियों की चर्चा का समापन आर्थिक सिद्धांतों के निर्माण और उनकी सत्यता की जाँच से करेंगे। आपको याद होगा कि हमने इकाई 1 में अर्थशास्त्र की परिभाषा विज्ञान के रूप में की थी। यहाँ हम आर्थिक सिद्धांतों की रचना तथा उनकी सत्यता की जाँच में जाँच की वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करेंगे। साथ ही साथ हम एक सिद्धांत तथा नियम का भेद भी समझाएँगे।

यहाँ पर एक प्रश्न उठता है : क्या अर्थशास्त्र के सिद्धांत में कभी कोई परिवर्तन नहीं आता? यहाँ इस बात पर ध्यान दिलाना आवश्यक हो जाता है कि किसी सिद्धांत की रचना के पीछे दो उद्देश्य होते हैं : वर्तमान घटनाक्रम की व्याख्या करना तथा भविष्य के घटनाक्रम का पूर्वानुमान लगाना।

इस इकाई के अंत में हम स्टाक चर तथा प्रवाह चर के बीच अंतर समझाएँगे। समष्टि एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र में हमारा संबंध सामान्यतः प्रवाह चरों से ही पड़ता है। लेकिन बाज़ार दोनों प्रकार के चरों के ही होते हैं।

3.2 आंशिक एवं व्यापक संतुलन विश्लेषण (Partial Vs. General Equilibrium Analysis)

आंशिक संतुलन के विश्लेषण में हम शेष सारी अर्थव्यवस्था को अपरिवर्तनशील मानकर केवल एक बाज़ार पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं। यदि हम गेहूँ के बाज़ार को भली प्रकार से समझना चाहते हैं तो अर्थव्यवस्था के अन्य बाज़ारों के विषय में सोचते तक नहीं। ऐसा विश्लेषण 'अन्य बातें स्थिर रहें की पूर्व धारणा' पर आधारित होता है। दूसरे शब्दों में, हम सारी अर्थव्यवस्था के अन्य सभी भागों का व्यवहार पूर्ववत् मानते हुए केवल गेहूँ के बाज़ार का अध्ययन करते हैं। इसी तरह से यदि वस्त्र बाज़ार का विश्लेषण करेंगे तो स्थिर रहने वाली अन्य सभी चीज़ों में गेहूँ का बाज़ार भी सम्मिलित हो जाएगा। इस प्रकार के अध्ययन में विभिन्न बाज़ारों के बीच अंतर्संबंधों को अनदेखा कर दिया जाता है। दूसरी ओर व्यापक संतुलन विश्लेषण में हम अर्थव्यवस्था के सभी बाज़ारों का एक साथ विश्लेषण करते हैं। यहाँ आधारभूत मान्यता यह है कि प्रत्येक बात हर दूसरी बात पर आधारित है। अर्थव्यवस्था के सभी बाज़ार इस प्रकार से एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं कि एक बाज़ार के उतार-चढ़ाव का प्रभाव सारी अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली का अध्ययन व्यापक संतुलन विधि से ही भली प्रकार संभव हो पाएगा। वास्तव में आंशिक और व्यापक विश्लेषण विधियाँ अर्थव्यवस्था की ओर देखने के दो दृष्टिकोण हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जब हमारा उद्देश्य किसी विशेष बाज़ार या क्षेत्र के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करना हो तो आंशिक विश्लेषण विधि का प्रयोग उचित रहता है। आंशिक संतुलन का प्रयोग उस समय करते हैं जब हम यह मानकर चलें कि बाज़ार अपने आप में सम्पूर्ण है, या इसका अन्य बाज़ारों से कोई संबंध नहीं है, अथवा शेष अर्थव्यवस्था की तुलना में यह बहुत ही छोटा-सा बाज़ार है, या फिर इस बाज़ार का बाकी अर्थव्यवस्था पर प्रभाव न के बराबर होता है। आंशिक विश्लेषण में किसी भी समस्या को समझना बहुत सहज हो जाता है। व्यापक संतुलन विश्लेषण जटिल होता है क्योंकि वास्तविकता जटिल होती है। इसे समझने के लिए कुछ न कुछ सरलीकरण अनिवार्य हो जाते हैं। आंशिक अध्ययन विधि एक ऐसा ही सरलीकरण है जिसमें प्रत्येक बाज़ार को अपने आप में अलग माना जाता है। आंशिक संतुलन विश्लेषण का विचार अल्फ्रेड मार्शल (1890) ने सुझाया था और उन्हीं ने "अन्य बातें पूर्ववत् रहने" की मान्यता पर बल दिया था। इस पूर्वधारणा के कारण बाज़ार और शेष अर्थव्यवस्था के बीच के सभी संबंधों को नज़रअंदाज कर देते हैं। हम प्रत्येक बाज़ार को अन्य बाज़ारों से अलग मानकर यह दिखाते है कि माँग पूर्ति की शक्तियाँ किस प्रकार संतुलन

कीमत और मात्रा निर्धारित करती है। हालाँकि, एक बाज़ार का अन्य बाज़ारों पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। जब अन्य बाज़ारों पर पड़ रहे ये प्रभाव महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं, तो आंशिक संतुलन विश्लेषण उपयुक्त नहीं बैठता। अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले अन्य प्रभावों को न लेकर, आंशिक संतुलन विश्लेषण एक बाज़ार में परिवर्तन से होने वाले प्रभावों का सही चित्र प्रस्तुत नहीं कर पाता। बाज़ार प्रणाली के कार्य समझने के लिए आंशिक संतुलन विधि उसी दशा में उपयुक्त रहती है जबकि एक बाज़ार के प्रभाव या तो बहुत मामूली हो या फिर शेष अर्थव्यवस्था से इसका कोई विशेष संबंध न हो। अन्यथा व्यापक संतुलन विधि ही उपयुक्त रहती है।

आंशिक संतुलन विश्लेषण उसी दशा में ठीक रहता है जबकि बाज़ारों की परस्पर निर्भरता या संबंधों की अनदेखी करें या फिर ये हों ही नहीं। लेकिन यदि ये संबंध और निर्भरताएँ विद्यमान हैं और महत्त्वपूर्ण हैं, तो इनकी अनदेखी करना गंभीर होगा क्योंकि इससे भविष्य में होने वाली आर्थिक घटनाओं का अंदाजा ठीक-ठीक नहीं लग पाएगा। ऐसी स्थिति में व्यापक संतुलन विश्लेषण ही ठीक रहता है। जहाँ किसी घटना के व्यापक प्रभावों की पहले से ही आशा हो तो वहाँ निश्चित रूप से व्यापक संतुलन विधि का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है।

बोध प्रश्न 1

1) यदि किसी नगर में दूध बाज़ार की कार्यप्रणाली का विस्तृत अध्ययन करना हो तो आप किस विश्लेषण विधि का प्रयोग करेंगे?

.....

.....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) वाहनों के लिए माँग बढ़ने पर इस्पात की माँग बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप अल्यूमीनियम और रबड़ आदि की माँग बढ़ती है। यह आंशिक संतुलन विधि का उदाहरण है या व्यापक संतुलन विधि का?

.....

.....

3.3 स्थैतिक और गत्यात्मक विश्लेषण (Static and Dynamic Methods of Analysis)

स्थैतिक और गत्यात्मक विधियाँ आर्थिक विश्लेषण की दो विधियाँ हैं। इनके बीच कई प्रकार से भेद किया जा सकता है। एक मत के अनुसार स्थैतिक विधि से संबंधित चर (कारण-प्रभाव) समय से जुड़े नहीं होते। जैसे बाज़ार का माँग-पूर्ति प्रतिमान (model) एक स्थैतिक प्रतिमान है। इस प्रतिमान में तीन संबंध हैं : माँग वस्तु की अपनी कीमत पर निर्भर करती है; पूर्ति वस्तु की अपनी कीमत पर निर्भर करती है; संतुलन पर माँग तथा पूर्ति एक समान होते हैं। इन तीनों में समय का कोई स्थान नहीं है। इसी मत के अनुसार एक गत्यात्मक विश्लेषण वह होता है जिसमें माँग और पूर्ति के संबंध समय पर भी आश्रित हों। यदि हम माँग पूर्ति प्रतिमान को निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत करें तो यह गत्यात्मक विश्लेषण का रूप ले लेता है।

$$D_t = f(P_t)$$
$$S_t = g(P_t)$$
$$D_t = S_t$$

यहाँ 't' समय की इकाई है।

कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों का मत है कि केवल समय पर आश्रित होने से ही विश्लेषण गत्यात्मक नहीं हो जाता। समय पर आश्रित होने के साथ-साथ इसमें समय पश्चता **(time lag)** का होना भी आवश्यक है। अतः इस विचार के अनुसार एक गत्यात्मक प्रतिमान का स्वरूप कुछ इस प्रकार होगा:

$$D_t = f(P_t)$$

$$S_t = g(P_{t-1})$$

$$D_t = S_t$$

माँग संबंध में किसी प्रकार की समय पश्चता नहीं है। **'t'** समय की माँग तात्कालिक **'t'** समय की कीमत पर निर्भर करती है किन्तु पूर्ति संबंध में समय पश्चता है। इससे यह प्रतिमान गत्यात्मक बन जाता है। **'t'** अवधि की पूर्ति पिछली अवधि **'t-1'** की कीमत पर निर्भर है। **'t-1'** अवधि में प्रचलित कीमत ने उत्पादकों को पूर्ति बढ़ाने या घटाने के जो संकेत दिए थे, उनका पूरा प्रभाव वर्तमान अवधि **'t'** में ही प्रकट होता है। **'t'** अवधि में बाज़ार के संतुलन के लिए यह आवश्यक है कि **'t'** अवधि की माँग **'t'** अवधि की पूर्ति के समान हो।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि यदि हम किसी एक वस्तु के बाज़ार के संतुलन को ही देखना चाहते हैं तो हमें स्थैतिक विधि का ही प्रयोग करना होगा। संतुलन एक स्थैतिक अवधारणा है। यह बाज़ार की ऐसी स्थिति को दर्शाता है जिसमें कोई उतार-चढ़ाव नहीं होता। इसके विपरीत असंतुलन का विश्लेषण निश्चित रूप से गत्यात्मक विश्लेषण है। यह बाज़ार की उस स्थिति को दिखाता है जिसमें बाज़ार विभिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा संतुलन की ओर पुनःस्थापित होता है। इसमें हम इस बात का विश्लेषण करते हैं कि समय के साथ-साथ बाज़ार में समंजन किस प्रकार हो रहा है। एक स्थैतिक स्थिति में हम यह मानकर चलते है कि बाज़ार में समंजन तुरंत हो जाता है और संतुलन या असंतुलन की स्थिति बिना कोई समय खोये प्राप्त हो जाती है। स्थैतिक विश्लेषण में इस बात से कोई मतलब नहीं होता कि असंतुलन की स्थिति में आर्थिक एजेंट किस प्रकार व्यवहार करते हैं। यहीं से गत्यात्मक विश्लेषण की भूमिका शुरू होती हैं। कई बार हम बहिर्जात शक्तियों में परिवर्तन से पहले और बाद के संतुलनों की तुलना करते हैं। इस विधि को तुलनात्मक स्थैतिक **(comparative statics)** विधि कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि माँग में वृद्धि का कारों की कीमतों पर प्रभाव जानना हो तो हम दो संतुलन अवस्थाओं– माँग में वृद्धि से पूर्व और इसके पश्चात की तुलना कर सकते हैं। इन दोनों संतुलन व्यवस्थाओं के बीच में क्या कुछ घटित हुआ, इस विषय में स्थैतिक विश्लेषण हमें कोई जानकारी नहीं देता। किंतु गत्यात्मक विश्लेषण की विधि हमें एक संतुलन अवस्था से दूसरी संतुलन अवस्था तक बाज़ार की स्थिति का पूरा ज्ञान कराती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

3) यदि

i) $Q^D_x = a-b$;

ii) $P_x Q^s_t = f(P_t)$;

iii) $Q^s_t = f(Pt-1)$

क्या ये प्रतिमान स्थैतिक हैं अथवा गत्यात्मक?

....

....

.....

.....

.....

3.4 आर्थिक सिद्धांत की रचना एवं सत्यता की जाँच

एक आर्थिक सिद्धांत की रचना में निम्नलिखित चरण लिए जाते है :

1) जिस आर्थिक व्यवहार की जाँच हम करना चाहते है, उसके बारे में हम पहले एक परिकल्पना (hypothesis) करते हैं। यह परिकल्पना, जो कुछ हम अपने आसपास देखते हैं, उस पर आधारित होती है। उदाहरण के लिए यदि हम चाय की बाज़ार कीमत और उसकी माँग के संबंध की जाँच करना चाहते हैं, तो यह परिकल्पना कर सकते हैं कि कीमत और माँग में विपरीत संबंध होता है।

2) परिकल्पना में निहित संबंधों के बारे में एक आर्थिक मॉडल (यानि सिद्धांत) प्रतिपादित करते है। इसमें कारण-प्रभाव संबंध विकसित करने के लिए निगमन तर्क (deductive reasoning) का सहारा लेते हैं। इसमें 'यदि ऐसा हुआ तो ऐसा होगा' में निहित संबंधों की व्याख्या की जाती है। ऐसे सिद्धांत को विकसित करने में हमें कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। क्योंकि वास्तविकता तो बहुत ही जटिल होती है। वास्तविक व्यवहार को समझाने के लिए सरलीकरण करना पड़ता है। अनावश्यक बातों को छोड़कर केवल आवश्यक बातों को ही शामिल किया जाता है। ऐसा मॉडल को सीमा में रखने के लिए भी करना पड़ता है। ऐसा एक मॉडल यानि प्रतिमान माँग का गणन-उपयोगिता (cardinal utility) सिद्धांत है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) अगले चरण में प्रतिमान को परिकल्पना पर लागू कर विचाराधीन अध्ययन के विषय में कुछ निष्कर्ष निकालते हैं। उदाहरण के तौर पर गणन में हमें यह पता चलता है कि अगर उपभोक्ता ज्यादा मात्रा में उपभोग करता है तो सीमांत उपयोगिता कम होने लगती है। अतः यदि कीमत कम नहीं की जाएगी तो उपभोक्ता अधिक मात्रा की माँग करेगा ही नहीं। (क्योंकि सिद्धांत में यह निहित है कि कीमत सीमांत उपयोगिता को दिखाती है)। अतः, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कीमत कम होने पर उपभोक्ता वस्तु की ज्यादा मात्रा की माँग करता है। पहले चरण में यही तो हमारी परिकल्पना थी।

4) अंतिम चरण में प्रतिमान से निकाले गए निष्कर्षों को आँकड़ों की कसौटी पर परखा जाता है। दूसरे शब्दों में, इन निष्कर्षों का वास्तविकता से मिलान किया जाता है। आँकड़ों के आधार पर किसी सिद्धांत की परख के लिए हमें सांख्यिकीय अथवा अर्थमिति (econometric) की विधियों का प्रयोग कर यह देखना पड़ता है कि क्या आँकड़े हमारे सिद्धांत द्वारा दर्शाए गए संबंधों की पुष्टि करते है। यदि ये आँकड़े पुष्टि करते है तो हम सिद्धांत स्वीकार कर लेते हैं। यदि हमारे निष्कर्ष आँकड़ों की कसौटी पर खरे नहीं उतरते तो हम या तो उस सिद्धांत को पूरी तरह रद्द कर देते हैं या उसमें कुछ परिवर्तन कर दुबारा उसकी सत्यता की जाँच की प्रक्रिया प्रारंभ करते हैं। यह प्रक्रिया तब तक दोहरानी पड़ती है जब तक कि हम किसी ऐसे सिद्धांत पर न पहुँच जाएँ जिसके निष्कर्ष वास्तविक आँकड़ों से मेल खाते हों।

3.5 आर्थिक सिद्धांत और आर्थिक नियम

एक प्रतिमान में विभिन्न आर्थिक चरों के बीच संबंधों का वर्णन किया जाता है। जब एक परिकल्पना की सफलतापूर्वक जाँच हो जाती है तो यह सिद्धांत का रूप ले लेती है। किसी भी सिद्धांत के दो उद्देश्य होते है : व्याख्या करना और पूर्वानुमान लगाने में सहायक होना।

एक ऐसा आर्थिक सिद्धांत जो समान परिस्थितियों में खरा उतरे एक आर्थिक नियम कहलाता है। माँग का नियम ऐसा ही एक उदाहरण है।

बोध प्रश्न 3

1) निम्न वाक्यांशों पर ध्यान दें और बताएँ कि इनमें से कौन-सा वाक्यांश एक सिद्धांत या नियम है?

   i) उपभोग आय पर निर्भर करता है।

   .....

   .....

   ii) जब प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है तो जनसंख्या बढ़ जाती है।

   .....

   .....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.6 स्टाक चर तथा प्रवाह चर (Stock Variable and Flow Variable)

अर्थशास्त्र में हम दो प्रकार के चरों का प्रयोग करते है : स्टाक चर तथा प्रवाह चर। जिसमें भी परिवर्तन होता है वह एक चर कहलाता है। उदाहरण के रूप में हम कीमत, माँग, पूर्ति, आय, निवेश, निर्यात, आयात, रोज़गार, उत्पादन-लागत, लाभ आदि सभी चर हैं। पर इन चरों में उतार-चढ़ाव का पता तो तभी चलेगा जब इनका संबंध अवधि से जोड़ा जाए। यह अवधि एक दिन, सप्ताह, महीना या वर्ष आदि कुछ भी हो सकती है। स्टाक चर तथा प्रवाह चर दोनों एक निश्चित समय से बंधें है। अंतर केवल इतना है कि प्रवाह चर में समय अवधि तथा समय बिंदु दोनों होते हैं जबकि स्टाक चर का संबंध समय के एक निश्चित बिंदु से होता है।

उदाहरण के लिए पूँजी एक स्टाक चर है क्योंकि इसकी कोई समय अवधि नहीं है बल्कि केवल एक समय बिंदु है जैसे कि एक जनवरी 1996 को पूँजी का स्टाक। दूसरी ओर निवेश एक प्रवाह है क्योंकि इसको समय की एक इकाई में व्यक्त किया जाता है जैसे 10 प्रतिशत प्रति वर्ष। स्टाक और प्रवाहों के बीच गहरा संबंध है। उदाहरण के लिए दो समय बिंदुओं 1.1.96 और 31.12.96 के बीच का अंतर 1.1.96 से लेकर 31.12.96 तक की अवधि का प्रवाह कहलाता है। ये प्रवाह ही स्टाक में वृद्धि लाते हैं या फिर इसे कम करते हैं। उदाहरणतः, 31.12.96 को पूँजी भण्डार 1.1.96 को पूँजी भंडार तथा 1.1.96 से लेकर 31.12.96 तक किए गए निवेश (मूल्यहास घटाकर) का योग होता है।

स्टाक तथा प्रवाह का महत्त्व इसमें भी है कि दोनों ही के लिए बाज़ार होते हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र में हमारा संबंध मुख्यतः प्रवाहों से ही रहता है।

बोध प्रश्न 4

1) इन दोनों वाक्यांशों पर गौर करें और बताए कि इनमें स्टाक चर और प्रवाह चर वाक्यांश कौन-कौन से है?

   i) स्फीति-दर, ब्याज दर, मुद्रा पूर्ति, जनसंख्या।

   .....

   .....

   .....

   ii) गेहूँ की माँग, गेहूँ की आपूर्ति।

   .....

   .....

   .....

3.7 सारांश

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई में भी हम अर्थशास्त्र की विश्लेषण पद्धति आदि से जुड़ी बातों पर ही चर्चा करते रहे हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि व्यष्टि अर्थशास्त्र में मूलतः आंशिक विश्लेषण विधि का प्रयोग होता है जबकि समष्टि अर्थशास्त्र में अधिकांशतः व्यापक विश्लेषण विधि। का इन दोनों में भेद भी विस्तार से समझाया गया है। आंशिक विश्लेषण अन्य बाते स्थिर या पूर्ववत् रहने की मान्यता पर आधारित रहता है जबकि व्यापक संतुलन 'हर कुछ बाकी सब कुछ पर निर्भर है' पर आधारित है। स्थैतिक और गत्यात्मक विश्लेषणों में अंतर को भी स्पष्ट किया गया है। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि स्थैतिक समयहीन स्थिति के बारे में है। संतुलन विश्लेषण स्थैतिक है तो असंतुलन विश्लेषण गत्यात्मक। संतुलन की व्याख्या स्थैतिक है।

इस इकाई में अंत में हमने एक आर्थिक सिद्धांत के रचने और उसकी सत्यता की जाँच पर बातचीत की है। लॉयनेल रॉबिनस की अर्थशास्त्र की परिभाषा पर चर्चा करते समय इकाई 1 में भी इस विषय का जिक्र किया था। आर्थिक सिद्धांतों की रचना में हम निगमन तर्क की सहायता लेते है। आर्थिक सिद्धांतों के निष्कर्षों की सत्यता की परख अर्थमिति की वैज्ञानिक विधि द्वारा करना आवश्यक है। यह आवश्यक नहीं कि इस परख में शत-प्रतिशत सफलता मिले ही।

3.8 शब्दावली

आंशिक संतुलन : अन्य सभी बातों को अनदेखा करते हुए किसी एक बाज़ार के संतुलन का विश्लेषण। इसमें अर्थव्यवस्था के विभिन्न बाज़ारों के बीच अंतर्संबंधों को ध्यान में नहीं रखा जाता।

आर्थिक नियम	:	ऐसे आर्थिक सिद्धांत जो समान परिस्थितियों में सदा सही सिद्ध हों आर्थिक नियम कहलाते हैं ।
आर्थिक सिद्धांत	:	आर्थिक इकाइयों के बीच कारण प्रभाव संबंध को बताने वाला प्रतिमान । सत्यता की जाँच की कसौटी पर खरी उतरी परिकल्पना सिद्धांत का रूप धारण कर लेती है ।
गत्यात्मक	:	जब चर समय से जुड़े होते हैं । समय के साथ-साथ इनमें परिवर्तन आता है ।
प्रवाह	:	प्रति इकाई समय के अनुसार व्यक्त चर । इसमें समय अवधि और समय बिन्दु दोनों होते हैं ।
व्यापक संतुलन	:	अर्थव्यवस्था के सभी बाज़ारों का समन्वित संतुलन विश्लेषण । विश्लेषण की इस जटिल पद्धति में सभी बाज़ारों को परस्पर निर्भर और संबंधित माना जाता है ।
संचय-या स्टॉक	:	किसी विशेष समय बिंदु पर एक चर का मान । इसमें केवल समय बिंदु होता है ।
स्थैतिक	:	एक समयहीन स्थिति का अध्ययन । यहाँ सभी चर समयहीन होते हैं ।

3.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

रिचर्ड लिप्से : *इन्ट्रोडक्शन टु पॉजिटिव इक्नॉमिक्स* (नवीनतम संस्करण)

डोमिनिक साल्वाटोर : *माइक्रोइकनॉमिक थ्यौरी*, शॉम सिरीज़ (तृतीय संस्करण)

डी.बेग, आर.डॉर्नविश्, एस.फिशर : *इक्नॉमिक्स* (चतुर्थ संस्करण)

डी.साल्वाटोर : *माइक्रोइक्नॉमिक्स*, द्वितीय संस्करण, हार्पर कोलिन्स

डब्ल्यु. निकल्सन : *इन्टरमीडिएट माइक्रोइक्नॉमिक्स*, छठा संस्करण

टिमोथी ट्रीअर्थन : *माइक्रोइक्नॉमिक्स*, प्रथम संस्करण, 1996

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) आंशिक संतुलन,

2) व्यापक संतुलन विश्लेषण

बोध प्रश्न 2

1) i) स्थैतिक

ii) स्थैतिक

iii) गत्यात्मक

बोध प्रश्न 3

1) i) एक सिद्धांत

ii) एक नियम के अधिक निकट है।

बोध प्रश्न 4

1) i) प्रवाह, प्रवाह, स्टाक, स्टाक

ii) प्रवाह एवं स्टाक दोनों ही।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 4 बजट नीति एवं भारतीय वित्त व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 भारतीय राजकोषीय नीति (Indian Fiscal Policy)
  4.2.1 बजट नीति
  4.2.2 बजट पद्धति
4.3 भारतीय वित्तीय व्यवस्था (Indian Financial System)
4.4 वित्तीय व्यवस्था पर बजट नीति के प्रभाव
  4.4.1 वित्तीय संस्थाओं के विकास में बजट नीति की भूमिका
    4.4.1.1 बैंकों पर बजट नीति के प्रभाव
  4.4.2 बजट नीति एवं वित्तीय बाजार
  4.4.3 बजट नीति एवं वित्तीय प्रपत्र
4.5 ब्याज दर नीति एवं वित्तीय व्यवस्था
4.6 हीनार्थ प्रबंधन एवं वित्तीय व्यवस्था (Deficit Financing)
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
4.10 बोध प्रश्न के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- बजट नीति की संकल्पना एवं उद्देश्यों का वर्णन कर सकेंगे,
- बजट नीति का भारतीय वित्तीय प्रणाली के विभिन्न क्षेत्रों से एकीकरण का स्तर (extent) बता सकेंगे ,
- भारतीय वित्तीय प्रणाली के विभिन्न क्षेत्रों पर बजट नीति के प्रभावों का विश्लेषण कर सकेंगे,
- बदलते हुए नए आर्थिक परिवेश में बजट नीति की भूमिका बता सकेंगे, तथा
- वित्तीय प्रणाली में घाटे की वित्त व्यवस्था की भूमिका की चर्चा कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

एक देश की वित्तीय व्यवस्था काफी हद तक उस देश की आर्थिक नीति से प्रभावित होती है। आर्थिक नीति के एक अंग के रूप में राजकोषीय नीति, कर नीति, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण एवं ऋण प्रबंध से संबंधित नीति होती है। बजट नीति एवं बजट दस्तावेज (documents) राजकोषीय नीति के महत्वपूर्ण भाग होते हैं। यही कारण है कि बजट नीति एवं बजट दस्तावेज देश की वित्तीय प्रणाली के कार्यों

को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं। इसलिए इस इकाई में हम देश की बजट नीति एवं वित्तीय प्रणाली पर इसके विभिन्न प्रभावों की चर्चा करेंगे। आइए, सबसे पहले हम राजकोषीय नीति एवं बजट नीति की संकल्पना से चर्चा प्रारंभ करते हैं।

4.2 भारत की राजकोषीय नीति (Indian Fiscal Policy)

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में आर्थिक नीति के एक संयंत्र के रूप में राजकोषीय नीति देश के विकास एवं आयोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राजकोषीय नीति के माध्यम से सरकार जनता को सार्वजनिक सेवाएँ उपलब्ध कराती है। इसके साथ ही यह एक ऐसा संयंत्र है जिसके माध्यम से राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए स्रोतों का पुनर्आवंटन, पुनर्वितरण, बचत एवं निवेशों का प्रोत्साहन एवं अर्थव्यवस्था में स्थायित्वता प्रदान की जाती है। राजकोषीय नीति का निर्धारित उद्देश्यों पर इसके विभिन्न नीतिगत उपायों के पड़ने वाले समग्र प्रभावों से गहरा सरोकार है। इसलिए यदि बृहद दृष्टिकोण से देखा जाए तो राजकोषीय नीति अर्थव्यवस्था के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने का माध्यम है। दूसरे शब्दों में राजकोषीय नीति निर्धारित उद्देश्यों जैसे आर्थिक-विकास, रोज़गार के अवसरों का सृजन, वितरण की समानता, गरीबी को दूर करना, मूल्य स्थिरता आदि को प्राप्त करने का साधन है।

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि राजकोषीय नीति की बहुमुखी भूमिका होती है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों को सामाजिक न्याय प्रदान करना इस नीति का मुख्य उद्देश्य है। भारत जैसे विकासशील देश में राजकोषीय नीति का और भी अधिक महत्व हो जाता है क्योंकि पूर्ण रोज़गार की स्थिति प्राप्त करने एवं आर्थिक स्थिरता लाने में इसकी अहम् भूमिका हो जाती है जिससे सार्थक विकास दर प्राप्त की जा सके। राजकोषीय नीति एक ओर अर्थव्यवस्था में संसाधन जुटाने का कार्य करती है, करों के माध्यम से निधियाँ निजी क्षेत्र से सरकारी क्षेत्र को हस्तान्तरित की जाती हैं। वहीं दूसरी ओर सार्वजनिक व्यय के माध्यम से निधियों को सरकारी क्षेत्र से पुनः लोगों के पास हस्तान्तरित किया जाता है क्योंकि सरकार उत्पादन क्रियाओं एवं कल्याणकारी योजनाओं में व्यय करती है। सार्वजनिक ऋणों को भी विभिन्न प्रयोजनों के लिए प्रयोग किया जाता है। सार्वजनिक ऋण में सरकारी ऋणों (Government loans) ब्याज का भुगतान एवं ऋणों का समय पर शोधन (redemption) के कार्य सम्मिलित हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

राजकोषीय नीति निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए तैयार की जाती है:

i) निवेश एवं पूँजी निर्माण दर में वृद्धि करने हेतु संसाधनों को जुटाना। इससे विकास दर में वृद्धि होती है।

ii) आय एवं संपत्ति के वितरण की असमानताओं को दूर करना अर्थात् आय के वितरण में समानता लाना।

iii) रोज़गार के अवसरों में वृद्धि, एवं

iv) मूल्य स्थिरता सुनिश्चित करना

उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सरकार निम्नलिखित संयंत्रों (Instruments) का प्रयोग करती है :

क) करारोपण

ख) सार्वजनिक व्यय

ग) सार्वजनिक ऋण

राजकोषीय नीति के उपरोक्त संयंत्र वित्तीय क्षेत्र को निम्न रूप में प्रभावित करते हैं:

क) **करारोपण**

करारोपण बचत, निवेश एवं उपभोग को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। यदि प्रत्यक्ष कर की दरें अधिक हैं तो बचतें कम होंगी और इससे उपभोग का स्तर एवं प्रतिरूप (pattern) प्रभावित होगा। यदि प्रत्यक्ष कर की दरों में कमी की जाती है तो इससे सार्वजनिक निवेश प्रभावित होंगे। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में सरकार को सावधानी के तौर पर कई कदम उठाने होंगे क्योंकि निगम कर की ऊँची दरें उत्पादन एवं अंततः मूल्यों को भी प्रभावित करेंगी। उदारीकरण से पूर्व भारत में निगम कर की दरें बहुत ज्यादा थी। लेकिन उदारीकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ इन करों की दरों को धीरे-धीरे कम किया गया है। निगम कर की नीची दरों से कई प्रकार के लाभ होते हैं एवं विदेशी निवेशों को बढ़ावा मिलता है।

ख) **सार्वजनिक व्यय (Public Expanditure)**

सार्वजनिक व्यय आर्थिक विकास की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। इसके साथ ही इससे वित्तीय क्षेत्र की गतिविधियाँ भी प्रभावित होती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सार्वजनिक निवेशों में अधिक व्यय करने से अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र विकसित होते हैं जिससे वित्तीय संस्थानों से निजी क्षेत्र के निवेश की माँग में वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए यदि सरकार किसी विशेष क्षेत्र में आधारभूत सुविधाओं का अच्छी प्रकार से विकास करती है तो स्वाभाविक रूप से नयी औद्योगिक इकाइयों का विकास होगा जिसके फलस्वरूप बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं से वित्तीय सहायता की माँग में वृद्धि होगी।

ग) **लोक ऋण (Public Debt.)**

लोक ऋण में सरकार द्वारा लिए गए आंतरिक एवं बाह्य ऋण सम्मिलित होते हैं। आंतरिक ऋणों में बाजार से या जनता से लिए गए ऋण एवं रिजर्व बैंक द्वारा जारी किए गए ट्रेजरी बिलों के माध्यम से लिए गए ऋण आते हैं। लोक ऋण नीति वित्तीय क्षेत्र को प्रभावित करती है। जब सरकार की उधार राशियाँ अधिक हो जाती हैं तो यह कई संयंत्रों जैसे सांविधिक तरलता अनुपात (SLR) की मात्रा में वृद्धि, ट्रेजरी बिलों का जारी करना आदि का प्रयोग करती है। इन सभी उपायों से वित्तीय संस्थाओं की साख विस्तार क्षमता में कमी आती है एवं उत्पादक क्रियाओं के लिए सीमित साख ही उपलब्ध हो पाती है।

इस प्रकार राजकोषीय नीति वित्तीय प्रणाली में बचत, निवेश, साख विस्तार क्षमता एवं साखा की माँग को प्रभावित करती है। इन सबका वित्तीय क्षेत्र की क्रियाओं पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

4.2.1 बजट नीति (Budgeting Policy)

मोटे तौर पर बजट नीति एक ऐसी नीति है जिसके माध्यम से सरकार अपनी आय एवं व्ययों को इस प्रकार से नियोजित करती है जिससे अर्थव्यवस्था के विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ें तथा राष्ट्रीय आय, उत्पादन एवं रोज़गार पर होने वाले प्रतिकूल प्रभावों को दूर किया जा सके। इस प्रकार से बजट नीति राजकीय कोष नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता करती है।

बजट नीति के उद्देश्य राजकोषीय नीति के उद्देश्यों से अलग नहीं हो सकते हैं एवं परिणामतः देश के आर्थिक विकास के उद्देश्य भी उनसे मिलते हैं। अतएव इन दोनों नीतियों के उद्देश्य एक दूसरे के अनुरूप होते हैं।

4.2.2 बजट पद्धति (Budgeting System)

एक ऐसा अभिलेख जिसमें सरकारी आय एवं व्ययों को एक स्थान पर दिखाया जाता है, बजट कहते हैं। एक बजट में सरकार के गत वर्ष के वास्तविक एवं अनुमानित आय एवं व्यय, वर्तमान वर्ष के संशोधित अनुमान एवं आने वाले वर्ष के आय एवं व्यय के अनुमान सम्मिलित रहते हैं। बजट को यह सुनिश्चित करना होता है कि कर भार उचित मात्रा में न लगाये जाएँ। दूसरी ओर, अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में व्यय न्याय संगत रूप से आवंटित किए जाएँ। बजट नीति विशेष रूप से राजस्व प्राप्त करने एवं सरकारी व्यय से संबंधित होती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बजट नीति में समय-समय पर संशोधन किए गए हैं एवं उसे काफी व्यावहारिक बनाया गया है। इन संशोधनों का उद्देश्य कर स्रोतों को बढ़ाने के अतिरिक्त अधिकतम लोगों को कर सीमा में लाना है। 1950-51 में सकल घरेलू उत्पाद से कर का अनुपात केवल 6% था जो 1999-2000 में बढ़कर 14% हो गया। बजट निजी बचतों को विशेष प्रोत्साहन एवं विशिष्ट क्षेत्रों जैसे आवास आदि में निवेश बढ़ाने में सहायक रहा है। बजट रणनीति देश के संपूर्ण आर्थिक-विकास, संसाधनों की माँग एवं प्राथमिकताओं के आधार पर निधियों के वर्गीकरण आदि को ध्यान में रखते हुए परिवर्तित की जाती है।

बजट रणनीति 2001-2002

वर्ष 2001-2002 बजट की रणनीति विकास के निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर निर्धारित की गयी थी:

i) कृषि क्षेत्र के सुधारों को गति प्रदान करना एवं अर्थव्यवस्था में खाद्यानों का बेहतर प्रबंध।

ii) मूलभूत सुविधाओं के निवेश का गहनीकरण, वित्तीय क्षेत्र एवं पूँजी बाजार के सुधारों को जारी रखना, एवं आर्थिक विकास में बाधक व्यर्थ के नियंत्रणों को दूर कर संरचनात्मक सुधारों का सघनीकरण (Deepening) करना।

iii) बेहतर शिक्षा के अवसरों एवं सामाजिक सुरक्षा के कार्यक्रमों के विकास द्वारा मानव विकास पर ध्यान देना।

iv) गैर-उत्पादक आर्थिक व्ययों पर नियंत्रण, आर्थिक सहायता (Subsidies) का विवेकीकरण, अनुदानों एवं सरकारी व्ययों की गुणवत्ता में सुधार लाना।

v) निजीकरण की प्रक्रिया एवं सार्वजनिक उपक्रमों की पुनर्संरचना को गति प्रदान करना।

vi) कर के आधार को विकसित कर राजस्व में वृद्धि एवं उचित तथा न्याय संगत कर प्रणाली की व्यवस्था करना।

तालिका 4.1

बजट (2001-2002) एक दृष्टि में

(रुपये करोड़ में)

राजस्व प्राप्तियाँ	231745
कर	163031
गैर कर	68714
पूँजीगत प्राप्तियाँ	143478
ऋण वसूली	151648
अन्य राजस्व	12000
उधार एवं अन्य देयताएँ	116314
कुल प्राप्तियाँ	375223
गैर योजना गत व्यय	275123
राजस्व खाता	250341
ब्याज का भुगतान	112300
पूँजी खाता	24782
योजना गत व्यय	95100
राजस्व खाता	60225
पूँजी खाता	34875
अतिरिक्त कुल प्रावधान	5000
राजस्व घाटा	78821
राजकोषीय घाटा	116314
प्राथमिक घाटा	4014

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्रोत : (बजट 2001-2002)

बोध प्रश्न 1

1) राजकोषीय नीति से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

2) सार्वजनिक व्यय एक नीति संयंत्र के रूप में किस प्रकार से निवेशों को बढ़ाने के लिए प्रयोग किए जाते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) यह बताएँ कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलतः

i) उदारीकरण की प्रक्रिया से निगम कर दरों में वृद्धि हुई है (सही/गलत)

ii) केंद्रीय बजट 2001-2002 में मानवीय विकास एक महत्वपूर्ण रणनीति रही है। (सही/गलत)

iii) बजट नीति के उद्देश्य राजकोषीय नीति के उद्देश्यों से भिन्न हैं। (सही/ग़लत)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.3 भारतीय वित्तीय व्यवस्था (Indian Financial System)

हम वित्तीय व्यवस्था के प्रमुख घटकों से भलीभाँति परिचित हैं क्योंकि इनकी विस्तृत चर्चा इकाई 1 में की जा चुकी है। आइये, अब हम भारतीय वित्तीय व्यवस्था के विभिन्न घटकों की जानकारी प्राप्त कर लें।

भारतीय वित्तीय व्यवस्था में विभिन्न संस्थाएँ, बाजार एवं प्रपत्र सम्मिलित हैं जो एक दूसरे से घनिष्ठ रूप में संबंधित हैं। यह व्यवस्था बचतों को निवेश में परिवर्तित करने के मुख्य साधन प्रदान करती है। संसाधनों के आवंटन में इसकी भूमिका होने के कारण भारत जैसे विकसित देश में वित्तीय व्यवस्था की प्रभावशाली कार्य पद्धति की अहम भूमिका होती है।

वित्तीय संस्थाएँ या मध्यवर्ती वित्तीय संस्थाओं में वाणिज्यिक बैंकों, बीमा कंपनियों, पारस्परिक निधियों और बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं, विकास वित्तीय संस्थाओं आदि शामिल हैं। वित्तीय बाजारों में पूँजी बाजार एवं मुद्रा बाजार जबकि वित्तीय प्रपत्रों में माँग जमाएँ, अल्पावधि के ऋण, मध्यवर्ती सावधि ऋण, दीर्घकालीन ऋण एवं सामान्य शेयर्स, बाण्ड आदि सम्मिलित हैं।

मौटे तौर पर वित्तीय व्यवस्था के महत्वपूर्ण कार्यों को इस प्रकार बताया जा सकता है:

i) बड़े स्तर के उपक्रमों की स्थापना के लिए यह निधियों का संग्रह करती है।

ii) यह जोखिम के नियंत्रण एवं अनिश्चितता प्रबंधन हेतु साधन प्रदान करती है।

iii) संसाधनों के सामयिक तथा स्थानिक स्थान्तरण (transfer) के लिए एक प्रक्रिया प्रदान करती है।

iv) यह ऐसी सूचनाएँ प्रदान करती है जो विकेंद्रित निर्णयों के संयोजन में मदद करती हैं।

v) यह वस्तुओं एवं सेवाओं के विनिमय में भुगतान पद्धति की व्यवस्था प्रदान करती है।

vi) इसमें संवेदनशील सूचनाओं का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया जाता है जिससे सूचना अंतर (gap) के प्रबंध में सहायता मिलती है।

4.4 वित्तीय व्यवस्था पर बजट नीति के प्रभाव

बजट नीति विभिन्न मध्यवर्ती वित्तीय संस्थाओं को दिशा प्रदान करती है जिससे वित्तीय प्रणाली को अधिक बल मिल सके। बजट नीति के ऐसे बहुत से नीतिगत उपाय हैं जो बचत, साख विस्तार एवं निवेश की दिशा निर्धारित करते हैं। वित्तीय प्राणाली के विकास का स्तर बजट से संबंधित कई नीतिगत उपायों पर निर्भर करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.4.1 वित्तीय संस्थाओं के विकास में बजट नीति की भूमिका

किसी वित्तीय संस्था की प्राथमिक भूमिका उधारदाता एवं उधारकर्ता के बीच मध्यस्थता का कार्य करने की होती है। ये संस्थाएँ समग्र रूप में रिजर्व बैंक के पर्यवेक्षण में कार्य करती हैं। वित्तीय संस्थाओं द्वारा एकत्रित निधियों को वित्तीय संपत्तियों के विभिन्न संविभागों (Portfolios) में निवेश किया जाता है। इससे लेन-देन की लागत में कमी आती है। वित्तीय संस्थाएँ अंतिम उधारदाताओं को तरल एवं कम जोखिम वाली वित्तीय संपत्तियाँ प्रदान करती हैं। इस प्रकार वित्तीय संस्थाएँ बचतकर्त्ताओं एवं निवेशकों के बीच मध्यस्थता का कार्य करती हैं।

वित्तीय मध्यस्थीकरण (Financial Intermediation) प्रक्रिया के निम्नलिखित परिणाम हो सकते हैं:

क) बचतकर्त्ताओं को उनकी प्राथमिकता के आधार पर विभिन्न प्रकार की वित्तीय संपत्तियाँ उपलब्ध कराना जिससे वे अपनी निधियों का निवेश कर सकें। इससे उन्हें बचतों को बढ़ाने में प्रोत्साहन मिलता है।

ख) ऋणी भी इस प्रणाली से लाभान्वित होते हैं क्योंकि वित्तीय संस्थाएँ उन्हें ऐसी वित्तीय सहायता उपलब्ध कराती हैं जो उन्हें बचतकर्त्ताओं से सीधे नहीं मिल पाती।

ग) ये सकल निवेशों के आवंटन में सुधार द्वारा उनकी उत्पादकता में वृद्धि करते हैं। इसके अतिरिक्त वित्तीय मध्यवर्ती संस्थाएँ उत्पादन प्रक्रिया एवं वस्तुओं एवं सेवाओं के विनिमय को प्रोत्साहित करती हैं।

इस प्रकार वित्तीय संस्थाएँ देश के आर्थिक विकास में अहम भूमिका निभाती हैं। इन संस्थाओं को मुख्य रूप से निम्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

क) विकास वित्तीय संस्थाएँ

ख) बीमा कंपनियाँ

ग) अन्य सार्वजनिक क्षेत्र की वित्तीय संस्थाएँ

घ) पारस्परिक निधियाँ

ड.) गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियाँ

बजट नीति का प्रमुख उद्देश्य उपरोक्त संस्थाओं को कार्य करने की स्वतंत्रता प्रदान करना तथा उनके वित्तीय आधार को सुदृढ़ करना है। भारतीय वित्तीय प्रणाली की एक प्रमुख अलग विशेषता यहाँ के सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं की प्रधानता का होना है। सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यों से प्रेरित वित्तीय प्रणाली काफी नियंत्रित रही है। एक नयी इकाई की स्थापना या विस्तार दोनों ही सरकार के नियंत्रण में रहे हैं। सरकार सहित विभिन्न क्षेत्रों में साख का आवंटन नियमित कर दिया है। इसके साथ ही सस्ती ब्याज दरों की योजना भी शुरू की गयी है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

गत कुछ वर्षों में वित्तीय संस्थाओं से संबंधित निम्नलिखित बजट नीति संबंधी उपाय शुरू किए गए हैं:

i) वित्तीय संस्थाओं को उनके कार्यों में अधिक स्वायत्ता प्रदान की गयी है। उन्हें वित्तीय क्षेत्र में अपनी क्रियाओं को विस्तृत करने के लिए भी स्वीकृति प्रदान की गयी है।

ii) इन संस्थाओं के लिए पूँजी पर्याप्तता, आय मान्यता, संपत्तियों के वर्गीकरण एवं प्रावधान से संबंधित विवेकपूर्ण मानदण्ड (Prudential Norms) लागू किए गए हैं।

iii) निजी क्षेत्र को बीमा क्षेत्र में आने की अनुमति प्रदान की गयी है। इससे न केवल स्वस्थ प्रतियोगिता को बल मिलेगा अपितु निवेशकों को बेहतर जोखिम सुरक्षा एवं बेहतर आय (Return) मिलेगी। बीमा संस्थाओं की निगरानी एवं नियमन के लिए बीमा विनियमन एवं विकास प्राधिकरण की स्थापना की गयी है।

iv) राष्ट्रीय कषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) के पूँजीगत आधार के विस्तार हेतु बजटीय आवंटन किया गया है। इससे ग्रामीण विकास एवं कृषि विकास में मज़बूती आएगी।

v) पारस्परिक निधियों में निवेश हेतु कुछ करों में विशेष प्रोत्साहन दिए गए हैं।

4.4.1.1 बैंकों पर बजट नीति के प्रभाव

बैंक बचत के विभिन्न माध्यमों से अतिरिक्त निधियों का संग्रह करते हैं। अर्थव्यवस्था में बचतों का प्रवाह प्रत्यक्ष रूप से बजट नीति के प्राविधानों पर निर्भर करता है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि कर निर्धारण नीति, सार्वजनिक व्यय एवं सार्वजनिक ऋण नीति उपभोग एवं बचतों को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार एक सीमा तक बचतें राजकोषीय प्राविधानों से काफी संबंधित हैं। उसी प्रकार साख का विस्तार सरकार द्वारा अपनायी गयी निजी निवेश के प्रोत्साहन की नीति पर निर्भर करता है। यदि औद्योगिक विकास के लिए कर प्रोत्साहन की मात्रा अधिक होती है तो स्वाभाविक रूप से साख की माँग में वृद्धि होगी। यहाँ तक कि चालू व्ययों की पूर्ति के लिए सरकार की नकदी माँग बैंकिंग क्षेत्र से साख की उपलब्धि को सीमित करती है।

वाणिज्यिक बैंक ऐसी इकाइयों से जिनके पास अतिरिक्त निधियाँ हैं, उन इकाइयों को निधियाँ स्थानान्तरित करती हैं जिनको निधियों की आवश्यकता है। आज पूरे देश में बैंक शाखाओं का नेटवर्क है। 1969 में बैंकों का राष्ट्रीयकरण बैंकिंग इतिहास में एक महत्वपूर्ण कदम था। इस अवधि में बैंकों की कई महत्वपूर्ण सफलताएँ एवं विफलताएँ रही हैं। बजट नीति में बहुत से ऐसे कदम उठाए गए हैं जिन्होंने बैंकों को आर्थिक विकास की प्रक्रिया के प्रति अधिक जवाबदेह बनाया है।

बजट के कुछ ऐसे प्रावधान इस प्रकार हैं:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

i) बैंकों से यह अपेक्षा की गयी है कि वे और अधिक प्रगतिशील हों। उनके पूँजी आधार को अधिक सुदृढ़ बनाया गया है। पूँजी पर्याप्तता के 8% मानदण्ड को प्राप्त करने के लिए कमज़ोर बैंकों को बजट स्रोतों से 20000 करोड़ की धनराशि उपलब्ध करायी गयी है।

ii) बैंक साख की लागत को कम करने के लिए ऋण पर ब्याज पर कर को समाप्त कर दिया गया है।

iii) काफी कठिन प्रयास के बाद बजट के माध्यम से प्रयास किया गया है कि घाटे की स्थिति को कम किया जाए। इससे बैंकों को सरकार को कम ब्याज दर पर दिए गए ऋणों के स्तर में कमी आएगी। बैंक अतिरिक्त निधियों को ऋण के रूप में विकास कार्यों के लिए प्रदान कर सकते हैं।

iv) निर्यात व्यवसाय को बढ़ाने के लिए सरकार ने निर्यात-आयांत बैंक की स्थापना की है। इस बैंक की स्थापना के लिए प्रारंभिक पूंजी बजट स्रोतों से ही प्रदान की गयी थी।

v) अपने ऋणों विशेष रूप से गैर-निष्पादित सम्पत्तियों (Non-Performing Assets) की वसूली की समस्या बैंकों के समक्ष एक गंभीर समस्या है। सरकार ने बैंकों की ऋण वसूली प्रक्रिया में गति लाने के लिए ऋण वसूली ट्रिब्यूनलों की स्थापना की है।

vi) बजट नीति में उच्च तकनीक की कृषि परियोजनाओं के लिए विशेष प्रोत्साहन दिए गए हैं एवं उनको साख उपलब्ध कराने के लिए विशेष प्रयास किए हैं।

vii) बैंकिंग क्षेत्र को अपने फार्मों में काफी स्वायत्तता प्रदान की गयी है। बैंकिंग कार्यों को अधिक प्रभावशाली एवं प्रतियोगी बनाने के लिए निजी क्षेत्र एवं विदेशी बैंकों को बैंकिंग व्यवसाय में प्रवेश के लिए अनुमति प्रदान की गयी है।

viii) ग्रामीण क्षेत्र में साख विस्तार एवं उनको व्यापक रूप में स्वीकार करने के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गयी है।

ix) बजट नीति में आवास क्षेत्र के विकास को प्रमुखता दी गयी है। ऋण माँगकर्त्ताओं को आवास ऋणों पर विभिन्न प्रकार के कर प्रोत्साहन दिए गए हैं। राष्ट्रीय आवास बैंक की स्थापना की गयी है।

x) बजट नीति में गरीबों, कृषकों आदि कमजोर वर्ग को लाभ पहुँचाने के लिए अन्य बहुत से उपाय किए गए हैं।

xi) सांविधिक तरलता अनुपात (SLR) एवं नकद आरक्षित अनुपात (CRR) घटाकर काफी कम कर दिया गया है जिससे बैंकों के पास ऋण योग्य राशि की मात्रा बढ़ाई जा सके।

xii) राष्ट्रीयकृत बैंकों के स्वामित्व में सरकार ने अपने इक्विटी शेयर का भाग घटाकर 33 प्रतिशत कर दिया है।

इस प्रकार बजट नीति के माध्यम से बैंकिंग क्रियाओं को अधिक लोचपूर्ण एवं सुदृढ़ बनाया गया है ताकि उनकी भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो सके।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.4.2 बजट नीति एवं वित्तीय बाजार

भारतीय वित्त व्यवस्था में वित्तीय बाजारों के दो भाग हैं (i) मुद्रा बाजार, एवं (ii) पूँजी बाजार।

i) मुद्रा बाजार

मुद्रा बाजार में अल्पावधि के ऋणों के सौदे होते हैं। इस बाजार में वाणिज्यिक बैंकों के अतिरिक्त भारतीय जीवन बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया, पारस्परिक निधियाँ एवं गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियाँ भी प्रतिभागी होती हैं। ये मध्यवर्ती संस्थाएँ अंतर-बैंक मुद्रा ऋण बाजार को सक्रिय बनाने के लिए अल्पावधि के आधार पर ऋण प्रदान करती हैं। भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह (DFHI) मुद्रा बाजार के प्रपत्रों को गौण बाजार (Secondary Market) में तरलता प्रदान करता है।

ii) पूँजी बाजार

पूंजी बाजार में दीर्घावधि के ऋण एवं शेयर्स के लेन देन होते हैं। इस बाजार के दो भाग हैं - प्राथमिक बाजार एवं गौण बाजार। प्राथमिक बाजार में नयी वित्तीय परिसंपत्तियाँ (Financial Assets) निर्गम की जाती हैं जबकि गौण बाजार में विद्यमान वित्तीय परिसम्पत्तियों के लेन-देन होते हैं।

एक बड़ी सीमा तक पूँजी बाजार का विकास बजट की नीतियों से प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए निगम कर, पूंजी लाभ पर कर, लघु बचतों के लिए कर प्रोत्साहन

आदि पूँजी बाजार के विकास को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही औद्योगिक इकाइयों के लिए प्रदान किए गए कर प्रोत्साहनों से पूँजी बाजार से औद्योगिक क्षेत्र की माँग में वृद्धि होगी।

पूँजी बाजार के प्रपत्रों की परिपक्वता अवधि दीर्घ समय के लिए होती है। यह बाजार प्रतिभूति निर्गम के माध्यम से पूँजी एकत्रित करने का स्रोत है। पूँजी बाजार पूँजी निर्माण की दर को बढ़ाता है। गौण पूँजी बाजार में सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त स्टॉक ऐक्सचेंज होते हैं। नेशनल स्टाक ऐक्सचेंज एवं ओवर दि काउण्टर ऐक्सचेंज ऑफ इंडिया प्रतिभूतियों को तरलता प्रदान करते हैं। भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड प्रतिभूति बाजार की क्रियाओं एवं मध्यवर्ती संस्थाओं जैसे बैंक एवं पारस्परिक निधियों को नियंत्रित करता है। इसके अतिरिक्त सरकारी प्रतिभूतियों का एक अलग से बाजार होता है जहाँ केंद्रीय/राज्य सरकार, अखिल भारतीय वित्तीय संस्थान तथा सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा निर्गमित प्रतिभूतियों के लेन-देन होते हैं।

बजट नीति के निम्नलिखित प्राविधानों द्वारा वित्तीय बाजारों के विस्तार एवं उनकी क्रियाओं को गतिशील बनाने में सहायता मिली है:

क) गौण बाजार की क्रियाओं को प्रोत्साहित करने के लिए 1977-78 में लागू अधिकतम ब्याज दर (Cupon Rate) को 6.5% से बढ़ाकर 1985-86 में 11.5% कर दिया गया एवं उसके बाद बाण्ड पर अधिकतम ब्याज दर के प्रतिबंध को समाप्त कर दिया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ख) गौण बाजार के विकास के लिए बाजार में विभिन्न प्रकार के प्रपत्र जैसे 182 दिवसीय ट्रेजरी बिल, जमा प्रमाण पत्र, वाणिज्यिक प्रपत्र एवं अंतर-बैंक प्रतिभगिता आदि विकसित किए गए हैं।

ग) भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह की स्थापना 1988 में की गयी। यह रिजर्व बैंक एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा स्थापित किया गया था। इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य मुद्रा बाजार में तरलता प्रदान कर बाजार में अल्पकालीन तरलता संबंधी असंतुलनों को कम करना है।

घ) ब्याज दरों को विनियमित (deregulated) कर दिया गया है।

ड.) पूँजीगत लाभों, पारस्परिक निधियों में निवेश एवं आधाभूत सुविधाओं वाले बाण्डों में निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष कर प्रोत्साहन प्रदान किए गए हैं।

च) मुद्रा बाजार की क्रियाओं को बढ़ाने के लिए बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं को मुद्रा बाजार पारस्परिक निधियाँ स्थापित करने की स्वीकृति प्रदान की गई है।

छ) वित्तीय बाजारों में प्रतिभागिता के लिए विदेशी संस्थागत निवेशकों को प्रोत्साहित किया गया है।

ज) कर-मुक्त बाण्डों की अवधारणा की शुरूआत की गई है जिससे अधिक मात्रा में संसाधनों को जुटाया जा सके।

4.4.3 बजट नीति एवं वित्तीय प्रपत्र

सामान्य रूप से वित्तीय प्रपत्र को प्रपत्र जारीकर्ता का प्रपत्र धारक के लिए मौद्रिक दायित्व के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। प्रपत्र जारीकर्ता के लिए यह दायित्व या दूसरे शब्दों में वित्तीय बंधन है (Financial Obligation) एवं धारक के लिए यह वित्तीय परिसम्पत्ति है। वित्तीय प्रपत्र आर्थिक इकाइयों द्वारा जारी किए जा सकते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रपत्र चलन में हैं।

i) **माँग जमाएँ (Demand Deposite)**

माँग जमाएँ भी वित्तीय प्रपत्र हैं जो माँग पर उसके स्वामी को धारक द्वारा देय होते हैं। इन पर ब्याज हो भी सकती है और नहीं भी। ये जमाएँ ज्यादातर चालू एवं बचत जमाओं के रूप में बैंकों द्वारा एवं पोस्ट आफिस द्वारा बचत खातों के रूप में रखी जाती हैं।

ii) **अल्पावधि के ऋण (Short-Term Debt)**

इन ऋणों को एक वर्ष की अल्पावधि में पूर्व निर्धारित ब्याज दर पर एक निश्चित राशि के पुनर्भुगतान का वायदा होता है। ट्रेजरी बिल, वाणिज्यिक-प्रपत्र, जमा प्रमाण पत्र के अतिरिक्त एवं कुछ अन्य नये विपत्र भी शुरू किए गए हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428002240

iii) **दीर्घावधि के ऋण (Long-Term Debt)**

इस प्रकार के ऋण प्रपत्रों की भुगतान की अवधि कंपनी क्षेत्र में 5 से 7 वर्ष एवं सरकारी क्षेत्र में 10 वर्ष या इससे अधिक होती है। इनकी एक निश्चित ब्याज दर होती है। निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के बाण्ड एवं ऋण पत्र इस श्रेणी में आते हैं। ऋण प्रपत्रों को विभिन्न विकल्पों एवं बेहतर आय के आधार पर काफी आकर्षित बनाया गया है।

iv) **सामान्य शेयर (Equity Stock)**

कंपनी क्षेत्र द्वारा बाजार में पूँजी एकत्रित करने का यह एक लोकप्रिय साधन है। स्वामित्वधारी होने के नाते, शेयरधारकों का कंपनी की आय में अवशिष्ट हित (Residual interest) होता है क्योंकि उन्हें सभी लेनदारों (Creditors) के दावों के बाद लाभांश मिलता है।

बजट नीति में समय-समय पर यह प्रयास किया गया है कि लोगों की आवश्यकता के अनुसार विभिन्न प्रकार के वित्तीय प्रपत्र बाजार में लाये जाएँ। ये क्तिीय परिसंपत्तियों एवं वित्तीय देयताओं दोनों के ही कार्य करते हैं।

इस दिशा में बजट नीति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि बाजार में नवप्रवर्तित (innovative) प्रपत्रों का प्रयोग बजट नीति में लिए गए निर्णयों पर निर्भर करता है। बजट में अधिक बचतों के प्रोत्साहन के लिए करों में छूट, निवेशों के विकास, मुद्रा आपूर्ति की वृद्धि एवं औद्योगिक विकास की प्रगति को देखते हुए पूँजी बाजार के विकास के लिए विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहन प्रदान किए जाते हैं।

जैसा कि ऊपर बताया गया है बजट नीति के विभिन्न प्रोत्साहनों ने वित्तीय प्रपत्रों को अधिक स्वीकार्य बना दिया है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के वित्तीय अनुबंध जैसे Forward Futures, swaps, Option एवं पेंशन फण्ड भी धीरे-धीरे वित्तीय बाजारों में लाए जा रहे हैं। बजट नीति में लिए गए कुछ महत्वपूर्ण उपाय जिनसे वित्तीय प्रपत्रों की उपयोगिता बढ़ी है, इस प्रकार हैं :

i) बाण्ड पर ब्याज दर पर लगी सीमा (ceiling) को समाप्त कर दिया गया है।

ii) कुछ विशेष प्रकार के बाण्डों जैसे मूलभूत सुविधाओं का विकास (infrastructure development) एवं पावर प्रोजेक्ट के विकास पर कर लाभ कर दिए गए हैं।

iii) मुद्रा बाजार के प्रपत्रों के लेन-देनों को बढ़ाया गया है।

iv) अल्पावधि के ऋण प्रपत्रों की स्वीकार्यता को बढ़ाने के लिए बहुत से प्रयास किए गए हैं। समय-समय पर पात्रता की शर्तों में ढील दी गयी है।

v) पारस्परिक निधियों में निवेश पर करों में विशेष छूट का प्राविधान किया गया है।

vi) Forward Futures Swaps, Options आदि के विकास के लिए विशेष दिशा-निर्देश दिए गए हैं।

बोध प्रश्न 2

1) वित्तीय मध्यवर्ती संस्थाओं के 3 मुख्य कार्यों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) बैंकों को अधिक सक्रिय बनाने के लिए गत कुछ वर्षों में कौन-से उपाय किए गए हैं?

.....

.....

.....

.....

3) यह बताइए कि बजट नीति किस प्रकार से वित्तीय बाजारों को प्रभावित करती है?

.....

.....

.....

.....

4.5 ब्याज दर नीति एवं वित्तीय व्यवस्था (The Interest Rate Policy and the Financial System)

मूल रूप से ब्याज दर नीति के मुख्य उद्देश्य होते हैं:

i) सरकार को कम दर पर ऋण सुनिश्चित कराना।

ii) रियायती उधार दरों के माध्यम से विशेष कार्यों को प्रोत्साहन देना।

iii) अधिकाधिक बचतों को बढ़ावा देना।

iv) समष्टि अर्थव्यवस्था में स्थायित्व लाना।

पहले भारतीय रिजर्व बैंक भारत में ब्याज दरों का अधिकतर नियमन करता था। इस नियमन की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

i) व्यवसायिक बैंकों में जमा राशियों पर ब्याज दर की उच्चतम सीमा निर्धारित है।

ii) ऋणों पर ब्याज दरों का न्यूनतम स्तर निर्धारित होगा।

iii) कम्पनियों द्वारा जमा राशियों पर देय ब्याज दर की उच्चतम सीमा होगी।

iv) वित्तीय विकास संस्थाओं द्वारा ली जाने वाली ब्याज दर की एक न्यूनतम सीमा भी होगी।

DIKSHANT IAS

v) लघु बचत योजनाओं पर देय ब्याज दरों का निर्धारण सरकार करेगी।

Call us @7428092240

हाल के वर्षों में, भारत में ब्याज दर व्यवस्था में शीघ्रता से परिवर्तन आये हैं। जटिल ब्याज दरों की संरचना को अब सरल कर दिया गया है। बैंकों को अब यह छूट प्रदान की गयी है कि वे स्वयं 'मूल ब्याज दरों' (Prime lending rate) का निर्धारण करें एवं उस पर अधिकतम विस्तार (maximum spread) भी स्वयं तय करें। 2 लाख तक के ऋणों पर ब्याज दर उतने ही समय की परिपक्वता प्रतिभूति की मूल ब्याज दर से अधिक नहीं होगी। मुद्रा बाजार दरों को पूर्ण रूप से स्वाधीन कर दिया गया है। इसी प्रकार कम्पनियों को पूँजी बाजार से लिए जाने वाले ऋण पर भी ब्याज दर को स्वाधीन कर दिया गया है। जमा राशियों पर ब्याज दरों का विनियमन (Deregulation) कर दिया गया है, सिवाय बचत खातों पर ब्याज दरों के जिनका निर्धारण भारतीय रिजर्व बैंक करता है।

ब्याज दरों के विनियमन से सरकारी प्रतिभूति बाजार भी प्रभावित हुआ है। नीलामी प्रक्रिया अपनाकर केंद्रीय सरकार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। इस प्रक्रिया के तहत जो ब्याज दर निर्धारित होती है, वह बाजार की परिस्थितियों का सही चित्रण करती है। दिनांकित प्रतिभूतियों एवं ट्रेजरी बिल के संबंध में यह बात साबित हो चुकी है। प्रचुर मात्रा में तरलता निधि होने के कारण ब्याज दरें कम हुई हैं। व्यवस्था में अन्य ब्याज दरों का निर्धारण करने के लिए 364 दिवसीय ट्रेजरी बिलों का आधार के रूप में अधिक से अधिक प्रयोग किया जा रहा है। सरकारी प्रतिभूति बाजार, जहाँ पर ब्याज दरें सामान्यतः बाजार से ही निर्धारित होती हैं, के विकास के फलस्वरूप, मौद्रिक नियंत्रण के अप्रत्यक्ष संयंत्र के रूप में खुले बाजार की क्रियाओं का महत्व बढ़ा

है। सरकारी प्रतिभूति बाजार में महत्वपूर्ण संस्थागत परिवर्तन लाने हेतु कदम उठाए जा रहे हैं।

ब्याज दरों की संरचना में सुधारों के फलस्वरूप अब मुद्रा बाजार एवं पूँजी बाजार के प्रसार (Widening) एवं सघनीकरण (Deepening) पर जोर दिया जाने लगा है। वर्ष 2002-03 के बजट में सरकार ने यह तय किया है कि लघु बचतों पर ब्याज दरें उतने समय परिपक्वता वाली सरकारी प्रतिभूतियों के औसत प्रतिफल से संबंधित होंगी।

नये उदीयमान आर्थिक परिवेश में बजट नीति की भूमिका

1991-92 से भारत आर्थिक सुधारों की ओर अग्रसर है। इन सुधारों के मुख्य नीतिगत पहलू इस प्रकार हैं:

i) राजकोषीय नीति के माध्यम से समष्टि आर्थिक स्थायित्व।

ii) निर्यात को बढ़ावा देने के लिए व्यापार नीति में सुधार।

iii) उद्योगों को प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण प्रदान करने की दृष्टि से औद्योगिक नीति में सुधार।

iv) आर्थिक दक्षता प्राप्त करने के लिए आर्थिक क्षेत्र में व्यापक सुधार।

DIKSHANT IAS
Call Us @7428092240

मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति आर्थिक विकास के अनुरूप कुल माँग को नियंत्रित करती हैं। इसलिए इन नीतियों को स्थायित्व नीतियाँ भी कहते हैं। बजटरी नीति, समष्टि आर्थिक स्थायित्व एवं संरचनात्मक नीतियों में परस्पर तालमेल बनाये रखने का कार्य करती है। अतः बजटरी नीति, स्थायी आर्थिक विकास के लिये समुचित वातावरण बनाने में बहुत निर्णायक एवं महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। हाल के वर्षों में, आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया को तेज करने के लिये कई नीतिगत निर्णय लिये गये हैं जो निम्नलिखित हैं:

i) आर्थिक क्षेत्र में व्यापक सुधार जिसमें बैंकिंग क्षेत्र, पूँजी बाजार के क्रियाकलाप, गैर-बैंकिंग आर्थिक कम्पनियाँ एवं अन्य आर्थिक विकास संस्थानों में किए गए सुधार सम्मिलित हैं।

ii) बजटरी नीति के माध्यम से राजकोषीय असंतुलन को कम करने के लिए कई प्रयास किए गए हैं।

iii) कर कानूनों में आवश्यक सुधार किए गए हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि :

   क) व्यक्तिगत एवं कम्पनी कर की दरें कम हों।

   ख) कर आधार का विस्तार, तथा

   ग) कर दरों को मुद्रा स्फीति दर के अनुसार समायोजित करना।

iv) संशोधित मूल्यवर्धित कर (Modvat) प्रक्रिया के विस्तार के लिए एक नीति बनायी गयी है।

v) सीमा शुल्क संरचना में निरंतर सुधार।

vi) नयी आर्थिक नीति में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रवाह नीति पर अधिक जोर दिया गया है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि नयी आर्थिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बजटरी नीति का बहुत महत्वपूर्ण योगदान होगा।

4.6 हीनार्थ प्रबंधन एवं वित्त व्यवस्था (Deficit Financing and Financial System)

योजना आयोग के अनुसार 'घाटे की वित्त व्यवस्था' का आशय घाटे के बजट द्वारा सकल राष्ट्रीय व्यय में हुई वृद्धि से है। यह घाटा राजस्व खाता या पूँजीगत खाते किसी पर हो सकता है। इस नीति का मुख्य तत्व यह है कि सरकार अपनी आमदनियों जो उसे करों, सरकारी इकाइयों से अर्जित आय, जनता से ली गई उधार राशियों, जमाओं व निधियों की ब्याज एवं अन्य स्रोतों से प्राप्त होती है, से ज्यादा व्यय कर देती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सरकार अपने इस घाटे को निम्नांकित तरीके से पूरा कर सकती है:

i) अपनी कुल जमाराशियों से धन निकालकर

ii) केंद्रीय बैंक से उधार लेकर

iii) व्यावसायिक बैंकों से उधार लेकर

iv) नयी मुद्रा छाप कर

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि घाटे की वित्त व्यवस्था से आशय सार्वजनिक आय से सार्वजनिक व्यय का अधिक होना है। एक समय में घाटे की मात्रा का निर्धारण भारतीय रिजर्व बैंक एवं सरकारी खज़ाने की आर्थिक परिसम्पत्तियों में उतार-चढ़ाव एवं इनके गैर मौद्रिक दायित्वों के आधार पर तय किया जाता है।

घाटे की वित्त व्यवस्था से वित्तीय व्यवस्था के क्रियाकलाप प्रभावित होते हैं। विशेषकर बैंकों के क्योंकि उन्हें निर्देशित किया जाता है कि वे सरकार के व्यय (चालू एवं पूँजीगत दोनों) के लिए ऋण उपलब्ध करायें।

1970 के दशक का समय राजकोषीय अनुशासन की दृष्टि से कमजोर माना जाता है जिसके फलस्वरूप केंद्रीय सरकार की घरेलू एवं विदेशी मुद्रा उधार लेने की प्रवृत्ति में विस्तार हुआ। सकल घरेलू उत्पाद से राजकोषीय घाटा 1970-71 में 2.5% से बढ़कर 1990-91 में 8.4% हो गया। नकद आरक्षित कोषानुपात (CRR) एवं वैधानिक

तरलता अनुपात (SLR) में वृद्धि होने से बैंकों के वित्तीय स्रोत कम हो जाते हैं। सरकार के उधार लेने की लागत को कम करने के लिए खजाना बिलों एवं दीर्घवधि पत्रों के प्रतिफल को जानबूझ कर कम रखा जाता है जिसके फलस्वरूप बैंकों तथा अन्य वित्तीय मध्यस्थों के बीच सरकारी पत्रों की माँग कम रहती है। अतः सरकार की शेष वित्तीय आवश्यकताओं को रिज़र्व बैंक द्वारा पूरा किया जाता है।

नीतियों में उपरोक्त प्रकार का मिश्रण खतरनाक सिद्ध हुआ एवं इसके दूरगामी परिणाम हुए। राजकोषीय घाटे की मात्रा में निरंतर वृद्धि हुई एवं इस कारण दोनों अनुपातों CRR या SLR को बढ़ाना आवश्यक हो गया। 1970 के प्रारंभ में नकद आरक्षित अनुपात 3% एवं सांविधिक तरलता अनुपात 25% था। 1991-92 में नकद आरक्षित अनुपात (CRR) 15% एवं सांविधिक तरलता अनुपात (SLR) 38.5% हो गया। इसी बीच रिजर्व बैंक के पास सरकारी ऋणों (सरकारी घाटे का मौद्रीकरण) की मात्रा में भारी वृद्धि हुई। 1991 में सरकारी ऋणों का भार असहनीय हो गया एवं प्राथमिक घाटे को रोकने के लिए व्यापक सुधारों की आवश्यकता महसूस की गयी। सतत राजकोषीय समायोजन के लिए अभी और अधिक आर्थिक सुधारों की आवश्यकता है। विश्वसनीय राजकोषीय नियंत्रण एवं मूल्य स्थिरता के अभाव में ब्याज दरों के विनियमन से कुछ जोखिम हो सकती है। हो सकता है कि सुधार की प्रक्रिया में इसका विपरीत प्रभाव पड़े। 1992-93 में भारत सरकार ने स्वयं यह वचन दिया था कि वह सकल राजकोषीय घाटे के 5.7% स्तर में कमी करेगी। 2001-02 में वित्तीय घाटे को सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में 2000-01 में 5.5 प्रतिशत से घटा कर 2001-02 में 4.7 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा गया। 1993-94 में वित्तीय घाटे की प्रवृत्ति काफी चिंताजनक थी जबकि पहले 6 माह में लक्ष्य की तुलना में असमायोजित घाटा तीन गुना हो गया था। इसका कारण सरकारी राजस्व में औद्योगिक मंदी एवं सार्वजनिक उपक्रमों की इक्विटी की बिक्री में विलंब होना था। रिजर्व बैंक एवं सरकार के बीच ऐसा समझौता हुआ कि बढ़े हुए वित्तीय घाटे का मौद्रीकरण नहीं होना चाहिए। अतएव सरकार ने ट्रेजरी बिलों की बिक्री एवं जीरो ब्याज दर बौंडों के निर्गमन द्वारा अतिरिक्त ऋणों की व्यवस्था की। उस समय बाजार की स्थिति काफी अनुकूल थी एवं अतिरिक्त निधियाँ उपलब्ध थीं। हालांकि यह अल्प अवधि का कार्यक्रम था लेकिन इससे यह सिद्ध हुआ कि इन प्रपत्रों के द्वारा मौद्रिक घाटे को नियंत्रण में रखा जा सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

1) बजटरी नीति के तहत उठाये गये उन तीन उपायों को बताएँ जिनका उद्देश्य बैंकों को विकास के प्रति अधिक संवेदनशील बनाना है।

.....

.....

.....

.....

.....

2) पूँजी बाजार को सुदृढ़ बनाने के लिए किए गए प्रयासों में से कोई दो उपाय बताएँ।

.....

.....

.....

.....

3) सरकार द्वारा अपने राजकोषीय घाटे को कम करने के लिए किए गए किन्हीं दो उपायों को बताएँ।

.....

.....

.....

4.7 सारांश

आर्थिक नीति के भाग के रूप में बजटरी नीति के कर, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक उधार एवं ऋण प्रबंधन आदि अवयव होते हैं। बजटरी नीति, मौद्रिक नीति एवं बजट संबंधी अन्य प्रपत्र वित्तीय प्रणाली की क्रियाशीलता को, एक बड़ी हद तक प्रभावित करते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कर नीति का सीधा प्रभाव बचत, निवेश एवं उपभोग पर पड़ता है। प्रत्यक्ष करों की दर में परिवर्तन, बचत एवं उपभोग के प्रतिरूप को प्रभावित करते हैं। सार्वजनिक व्यय भी, सार्वजनिक निवेश एवं उसके निजी निवेश के अंतःसंबंधों को प्रभावित करता है। सार्वजनिक ऋण नीति भी सांविधिक तरलता अनुपात एवं नकद आरक्षित अनुपात जो वित्तीय संस्थाओं की साख सृजन की क्षमताओं को प्रभावित करते हैं, के माध्यम से वित्तीय क्षेत्र को प्रभावित करती है।

इस प्रकार बजटरी नीति, बचत, निवेश, ऋण क्षमता, उपभोग अदि पर उल्लेखनीय प्रभाव डालती है जिसके फलस्वरूप वित्तीय प्रणाली पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

1991 के आर्थिक सुधारों के बाद से आर्थिक संस्थाओं को और स्वायत्ता प्रदान की गयी है। एक प्रमुख बदलाव के अंतर्गत बीमा क्षेत्र को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया। बजटरी नीति ने बैंकों को भी बहुत हद तक स्वायत्ता प्रदान की है ताकि वे वित्तीय प्रणाली में और अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें। बजटरी प्रावधानों से वित्तीय बाजारों को अपने विस्तार में मदद मिली है। कई प्रकार के नये वित्तीय प्रपत्र जैसे अल्पावधि के ट्रेजरी बिल, जमा प्रमाण पत्र, वाणिज्यिक प्रपत्र भी शुरू किए गए हैं।

जब सरकार अपनी प्राप्तियों से अधिक व्यय करती है तो घाटे की वित्त व्यवस्था का उपयोग करती है। घाटे की वित्त व्यवस्था ने वित्तीय क्षेत्र के कार्यों को बहुत हद तक प्रभावित किया है, विशेषकर बैंक जो इस घाटे को पूरा करने के लिए बहुत बड़े स्तर

पर सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद फरोख्त करते हैं। 1970 के बाद से सरकार का घरेलू एवं विदेशी मुद्रा ऋण बहुत बढ़ गया है। सरकारी ऋण लेने की लागत को कम रखने के लिए, दीर्घावधि ऋणों के प्रतिफलों को जानबूझ कर कम रखा जाता है। इस नीति के वित्तीय प्रणाली के लिए दूरगामी परिणाम घातक हो सकते हैं।

जुलाई 1991 के बाद से बजटरी नीति में कई बदलाव किए गए हैं ताकि आर्थिक क्षेत्र को और अधिक मजबूत एवं गतिशील बनाया जा सके। बजटरी नीति में किए गए परिवर्तनों से वित्तीय संस्थाएँ एवं वित्तीय बाजार बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित हुए हैं। बजट नीति एवं वित्तीय पद्धति के बीच तादात्म्य से आर्थिक विकास में वृद्धि होती है।

4.8 शब्दावली

भुगतान संतुलन : किसी देश के बाकी विश्व से प्राप्तियों एवं भुगतान का हिसाब किताब रखने की एक व्यवस्थित प्रणाली।

आरक्षित नकदी अनुपात : सभी व्यावसायिक बैंकों को अपनी कुल जमा राशियों का एक निश्चित अनुपात केंद्रीय बैंक के पास जमा करना होता है। यही आरक्षित नकदी अनुपात (CRR) कहलाता है।

आर्थिक विकास : देश के प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि। दूसरे शब्दों में शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

विनिमय दर : वह दर जिस पर एक देश की मुद्रा दूसरी देश की मुद्रा से बदली जाती है।

मानव विकास : लोगों की रुचियों को वृहद करने की प्रक्रिया और उनकी खुशी (well being) में वृद्धि।

प्रगामी कर : वह कर जिसके अंतर्गत आय में वृद्धि के साथ कर की दर बढ़ती जाती है।

उपभोग प्रवृत्ति : आय का वह अनुपात जिसको वस्तुओं एवं सेवाओं के उपभोग पर व्यय किया जाता है।

ऋण शोधन : अपने दायित्व से मुक्त होने के लिए एक ऋणकर्त्ता द्वारा अपने ऋण का भुगतान करना।

4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Economic Survey – Govt. of India, 2001, 2002.

Union Budget Document, 2001-02, 2002-03 Government of India.

I C Dhingra (2001) : *Macro Economic Analysis and Policy*, Sultan Chand & Sons, Delhi.

Ruddar Dutt (2002) : *Indian Economy*, S. Chand & Company, Delhi.

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) राजकोषीय नीति एक ऐसा नीतिगत संयंत्र है जिसके अंतर्गत कर, सार्वजनिक व्यय एवं लोक ऋण का प्रबंध आदि का प्रयोग वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

2) सामाजिक-आर्थिक आधारभूत संरचना पर व्यय द्वारा जिससे वैयक्तिक विनियोग करने के लिए प्रेरणा मिलती है।

3) i) सही

ii) सही

iii) गलत

बोध प्रश्न 2

1) i) ऋणदाता एवं ऋण लेने वाले के बीच मध्यस्थता का कार्य करती है।

ii) बचतकर्त्ताओं को अपनी निधियाँ निवेश करने के लिए विभिन्न प्रकार की वित्तीय परिसंपत्तियों प्रदान करती है।

iii) उधारकर्त्ताओं को निधियाँ लेने के अवसर प्रदान करती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) i) बैंकों की ऋण वसूली समस्या में सुधार लाने के लिए ऋण वसूली ट्रिव्यूनल की स्थापना।

ii) बैंकिंग व्यवस्था को अधिक प्रभावी एवं प्रतियोगी बनाने को लिए निजी क्षेत्र के बैंक एवं विदेशी बैंकों को प्रवेश की अनुमति।

iii) सांविधिक तरलता अनुपात (SLR) एवं नकदी आरक्षित निधि अनुपात (CRR) की मात्रा में कमी जिससे बैंकों को ऋण विस्तार के लिए अधिक निधियाँ उपलब्ध हो सकें।

3) बजट नीति के विभिन्न उपाय जैसे कर नीति बचत एवं निवेश को प्रभावित करती हैं जो वित्तीय बाजार के कार्यों को प्रभावित करते हैं।

बोध प्रश्न 3

1) i) ऋणों की ब्याज पर ब्याज कर को समाप्त करना।

ii) निर्यात वृद्धि के लिए निर्यात आयात बैंक की स्थापना।

iii) बैंकों द्वारा अधिक मात्रा में ऋण उपलब्ध कराने के लिए SLR एवं CRR के स्तर में कमी करना।

2) i) ब्याज दर की सीमा को हटाना।

ii) ट्रेजरी बिल, जमा पत्र, वाणिज्यिक प्रपत्र एवं अंतर-बैंक सहभागिता जैसे नये प्रपत्रों को प्रारंभ करना।

3) i) बाजार से ऋण उधार लेना।

ii) घाटे की पूर्ति के लिए वित्त उपलब्ध कराना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 5 भारत में वाणिज्यक बैंक

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 वाणिज्यिक बैंकों का वर्गीकण
  5.2.1 सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक
    5.2.1.1 भारतीय स्टेट बैंक समूह
    5.2.1.2 राष्ट्रीयकृत बैंक
  5.2.2 निजी क्षेत्र के बैंक
    5.2.2.1 निजी स्वामित्व के बैंक
    5.2.2.2 विदेशी बैंक
    5.2.2.3 अनुसूचित बैंक
5.3 वाणिज्यिक-बैंकों के संसाधन
  5.3.1 प्रदत्त पूँजी एवं आरक्षित निधियाँ (Paid-up Capital and Reserves)
  5.3.2 जमाएँ
  5.3.3 उधार लेनदारियाँ
5.4 निधियों का नियोजन
5.5 रिजर्व बैंक के दिशा-निर्देश एवं मानदंड
  5.5.1 प्राथमिकता क्षेत्र को ऋण
  5.5.2 विवेक पूर्ण मानदण्ड (Prudential Norms)
  5.5.3 आय मान्यता (Incorne Recognition)
  5.5.4 परिसंपत्तियों का वर्गीकरण (Asset Classification)
  5.5.5 पूँजी पर्याप्तता मानदण्ड (Capital Adequacy Norms)
5.6 निष्पति शून्य परिसंपत्तियों की समस्या (Problem of Non-performing Assets)
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- भारत में वाणिज्यिक बैंकों की संरचना की व्याख्या कर सकेंगे,
- वाणिज्यिक बैंकों की निधियों के स्रोत एवं उनके उपयोग का वर्णन कर सकेंगे,
- भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा स्थापित एवं जारी किए गए महत्वपूर्ण विनियमित निदेश एवं मानदण्डों (Regulatory Directives and Norms) की चर्चा कर सकेंगे, तथा
- बैंकों में निष्पत्ति शून्य परिसंपत्तियों की समस्या को बता सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

भारत में वाणिज्यिक बैंक सबसे बड़ी एवं सबसे पुरानी बैंकिंग संस्थाएँ हैं। उनमें से कुछ एक सौ वर्ष से भी अधिक पुरानी हैं। इनकी शाखाओं का प्रसार देश के कोने-कोने तक हो चुका है।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् वाणिज्यिक बैंकिंग व्यवस्था तीन विभिन्न चरणों से गुजरी है। **प्रथम चरण** 1955-1970 की अवधि में जब भारतीय बैंकिंग में सार्वजनिक क्षेत्र का प्रादुर्भाव हुआ। सबसे पहले भारतीय स्टेट बैंक को 1955 में सार्वजनिक क्षेत्र में लिया गया एवं 1969 में 14 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया।

बैंक राष्ट्रीयकरण के पश्चात् दो दशकों में अर्थात् सत्तर के दशक एवं अस्सी के दशक में एक वर्ग विशेष बैंकिंग जन बैंकिंग (Mass Banking) के रूप में परिवर्तित हुआ। इस अवधि में बड़े स्तर पर शाखा विस्तार हुआ एवं इसके साथ ही बड़ी संख्या में बैंक कर्मचारियों की नियुक्ति की गयी। प्राथमिक क्षेत्र के अग्रिमों का विस्तार हुआ एवं निर्धन एवं उपेक्षित क्षेत्र को विशेष रूप से प्राथमिकता दी गयी। ऋण मेला इस अवधि की मुख्य विशेषता रही है। दूसरी ओर बैंकिंग परिचालन के विभिन्न पहलुओं पर भारतीय रिजर्व बैंक के विनियामक नियंत्रण काफी गहन किए गए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

राष्ट्रीयकरण के पश्चात् का काल समस्याओं से मुक्त नहीं था। प्रशिक्षण की निम्न गुणवत्ता के साथ कर्मचारियों की कार्य कुशलता एवं उत्पादकता में कमी आयी। ऋणों के वसूल न होने की समस्या उभर कर आयी एवं सांविधिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए निधियों के पूर्व क्रय अधिकार (Pre-emptive) की मात्रा बढ़ती ही गयी जिससे बैंकों की लाभ-प्रदता में गिरावट आयी।

1991 में सरकार ने नयी आर्थिक नीतियों की शुरुआत की। वित्तीय क्षेत्र की कुशलता में सुधार लाने के लिए एवं बैंकों की उत्पादकता एवं लाभप्रदता बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव एवं मापदण्डों के लिए एम. नरसिम्हम की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की गयी। इस समिति द्वारा प्रस्तावित ज्यादातर मापदण्डों को कार्यान्वित किया गया। इस इकाई में आप आर्थिक सुधारों के क्रियान्वयन के बाद से वाणिज्यिक बैंकों की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करेंगे।

5.2 वाणिज्यिक बैंकों का वर्गीकरण

स्वामित्व एवं प्रबंध नियंत्रण के आधार पर भारत में वाणिज्यिक बैंकों को दो वृहद श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:

i) सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक, एवं ii) निजी क्षेत्र के बैंक

भारत के बैंकिंग व्यवसाय में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का प्रमुख भाग है। इनके भी दो उपवर्ग हैं : क) भारतीय स्टेट बैंक समूह एवं ख) राष्ट्रीयकृत बैंक।

5.2.1 सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक

5.2.1.1 भारतीय स्टेट बैंक समूह

इस समूह में भारतीय स्टेट बैंक एवं इसके सात सहायक बैंक सम्मिलित हैं एवं यह भारत में सबसे बड़ा वाणिज्यिक बैंक है। भारतीय स्टेट बैंक अधिनियम, 1955 के अंतर्गत सरकार ने उस समय के विद्यमान इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया को अधिग्रहीत कर 1955 में भारतीय स्टेट बैंक की स्थापना की थी। उस समय लगभग 93 प्रतिशत शेयर्स रिजर्व बैंक के पास थे। जहाँ कहीं भी भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यालय नहीं हैं, भारतीय स्टेट बैंक उसके एजेंट के रूप में कार्य करता है। 1959 में भारतीय स्टेट बैंक (सहायक बैंक) अधिनियम 1959 के अंतर्गत आठ राज्यों से संबद्ध (associated) बैंकों को भारतीय स्टेट बैंक के सहायक बैंकों के रूप में परिवर्तित किया गया। बाद में एक बैंक का किसी अन्य बैंक के साथ विलयन (merger) हो गया। इस प्रकार वर्तमान में स्टेट बैंक समूह में आठ बैंक सम्मिलित हैं। स्टेट बैंक समूह की स्थापना का उद्देश्य देश के अंतर्गत बैंकिंग सुविधाओं को बढ़ाना एवं विस्तृत करना था।

5.2.1.2 राष्ट्रीयकृत बैंक

बाद में लगभग एक दशक के बाद 19 जुलाई 1969 को बैंकिंग कंपनीज (अधिग्रहण एवं उपक्रमों का स्थांतरण) अधिनियम 1970 के अंतर्गत देश के 14 प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों का, जिनकी प्रत्येक की जमा राशियाँ 50 करोड़ रुपये से अधिक थीं, का राष्ट्रीकरण कर दिया गया। तत्पश्चात् पुनः लगभग एक दशक के बाद 15 अप्रैल 1980 को अन्य 6 वाणिज्य बैंकों को जिनकी जमा राशियाँ 200 करोड़ रुपये से अधिक थीं को राष्ट्रीयकृत कर दिया गया। उनमें से एक बैंक, न्यू बैंक ऑफ इंडिया का पंजाब नेशनल बैंक के साथ विलय कर दिया गया और इस प्रकार वर्तमान में कुल राष्ट्रीयकृत बैंकों की संख्या 19 है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.2.2 निजी क्षेत्र के बैंक

5.2.2.1 निजी स्वामित्व के बैंक

निजी क्षेत्र के बैंकों की दो श्रेणियाँ हैं। ऐसे निजी क्षेत्र के बैंक जो राष्ट्रीयकरण के समय विद्यमान थे, की संख्या 23 है एवं उन्हें पुराने निजी क्षेत्र के बैंक कहा जाता है। बैंक-राष्ट्रीयकरण के पश्चात् 1993 तक कोई भी निजी क्षेत्र का बैंक स्थापित न हो सका। 1993 में भारतीय रिजर्व बैंक ने नए निजी क्षेत्र के बैंकों की स्थापना के लिए दिशा-निर्देश तैयार किए जिनके अनुसार नए बैंकों की न्यूनतम पूँजी 100 करोड़ रुपये होनी चाहिए एवं उन्हें पूँजी पर्याप्तता के 8 प्रतिशत मानदण्ड को स्थापना के प्रारंभ से ही पालन करना होगा। उक्त दिशा निर्देशों के आधार पर 9 नए बैंक स्थापित किए गए। उनमें से एक बैंक का बाद में दूसरे बैंक के साथ विलय हो गया। 30 मार्च 2002 को आई सी आई सी आई लि. (ICICI Ltd.) जो एक महत्वपूर्ण विकास वित्त संस्था थी का विलय उसकी ही सहायक कंपनी अर्थात आई सी आई सी आई बैंक लि. के साथ हो गया। अब यह बैंक भारतीय स्टेट बैंक के पश्चात् भारत का दूसरा सबसे बड़ा बैंक

बन गया है। यह बैंक निजी क्षेत्र का सबसे बड़ा बैंक है। 2001 में यह दिशा निर्देश संशोधित किया गया एवं इन बैंकों में पूँजी की मात्रा को बढ़ाकर 200 करोड़ (पुनः 300 करोड़ बढ़ायी जानी है) रुपए कर दी गई एवं पूँजी पर्याप्तता के मानदण्ड को बढ़ाकर 9 प्रतिशत किया गया है।

5.2.2.2 विदेशी बैंक

इस समय भारत में 21 देशों के 41 विदेशी बैंक कार्यरत हैं। ये भारत के बाहर निगमित (Incorporated) बैंकिंग कंपनियों की शाखाएँ हैं। 30 जून 2001 को भारत में विदेशी बैंकों की 194 शाखाएँ कार्यरत थीं।

5.2.3 अनुसूचित बैंक

भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 के खंड 42 के अनुसार सार्वजनिक एवं निजी दोनों ही क्षेत्र के बैंकों को जिनका नाम भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की दूसरी अनुसूची में सम्मिलित है, अनुसूचित बैंकों का दर्ज़ा दिया गया है। अनुसूचित बैंक का दर्जा प्राप्त करने के लिए एक बैंक को निम्नलिखित शर्तें पूरी करनी होंगीः

i) उसके पास प्रदत्त पूँजी एवं निधियों का कुल मूल्य 5 लाख रुपये से कम नहीं होना चाहिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ii) उसे भारतीय रिजर्व बैंक को इस बात से संतुष्ट करना होगा कि उसके द्वारा ऐसे कोई भी कार्य नहीं किए जा रहे हैं जो जमाकर्त्ताओं के हित में बाधक हों।

iii) यह केंद्रीय सरकार की ओर से अधिसूचित (Notified) राज्य सहकारी बैंक, या कंपनी या संस्था हो सकती है अथवा किसी कानून के आधीन निगमित कंपनी या निगम हो सकता है।

इस प्रकार से वाणिज्यिक बैंकों के अतिरिक्त, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, राज्य सहकारी बैंक एवं शहरी सहकारी बैंक भी अनुसूचित बैंकों का दर्जा प्राप्त करने के पात्र हैं।

बोध प्रश्न 1

1) भारत में विभिन्न प्रकार के वाणिज्यिक बैंकों के विविध प्रकारों को बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

i) स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में वाणिज्यिक बैंक .....चरणों से गुजरे हैं।

ii) स्टेट बैंक में ..... बैंक सम्मिलित हैं।

iii) वर्तमान में कुल राष्ट्रीयकृत बैंकों की संख्या ..... है।

iv) ..... निजी क्षेत्र का सबसे बड़ा बैंक है।

3) भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 के खंड 42 के आधीन एक बैंक को अनुसूचित बैंक की श्रेणी मे स्थान पाने के लिए कौन-सी शर्तें पूरी करनी होती हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

5.3 वाणिज्यिक बैंकों के संसाधन

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बैंकिंग व्यवसाय में आवश्यक रूप से ऋण उधार देने एवं निवेश के उद्देश्य से जमाएँ स्वीकार करना सम्मिलित हैं। इस प्रकार से जमाएँ स्वीकार करना बैंक में निधियों का प्रमुख स्रोत है। उनके कुल संसाधनों में उनकी स्वयं की निधियों का छोटा-सा अंश रहता है। गत कुछ वर्षों में ऐसे प्रयास किए गए हैं कि बैंकों की स्वयं की निधियों में भी वृद्धि हो।

5.3.1 प्रदत्त पूँजी एवं आरक्षित निधियाँ (Paid-up Capital and Reserve Fund)

प्रत्येक राष्ट्रीयकृत बैंक की अधिकृत पूँजी 1500 करोड़ रुपये है। कुछ बैंकों के मामले में केंद्रीय सरकार ने 100 प्रतिशत प्रदत्त पूँजी अभिदत्त (Subscribed) की है जबकि अन्य मामलों में बैंकों द्वारा आम जनता को शेयर निर्गमन के कारण, सरकार द्वारा अभिदत्त अंश पूँजी के प्रतिशत में कमी हुयी है।

बैंक अपने शुद्ध लाभ का 20% (वर्तमान में 25%) प्रतिवर्ष वैधानिक आरक्षित निधि में स्थांतरण करते हैं। इसके अतिरिक्त, बैंक अन्य आरक्षित निधियाँ भी रखते हैं, जैसे पूँजी निधियाँ, शेयर प्रीमियम, आय एवं अन्य निधियाँ एवं निवेश अस्थिर निधि (Investment, Fluctuation Reserve)।

5.3.2 जमाएँ

जनता, संस्थाओं एवं संगठनों द्वारा की गई जमाराशियाँ, वाणिज्यिक बैंकों की निधियों

की सबसे बड़ी स्रोत हैं। ऐसी जमा राशियाँ तीन प्रकार के जमा खातों द्वारा स्वीकार की जाती हैं :

i) सावधि जमाएँ - ऐसी जमाओं की न्यूनतम अवधि 15 दिन है।

ii) बचत जमा राशियाँ

iii) चालू जमाएँ

चालू जमा खातों पर कोई ब्याज नहीं मिलता है जबकि बचत बैंक खातों की ब्याज दर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित की जाती है। वर्तमान में यह ब्याज दर 4 प्रतिशत है। बचत खाते पर ब्याज की गणना महीने के 11वें दिन से अंतिम दिन तक न्यूनतम रखे गए शेष पर की जाती है।

कुछ वर्षों पूर्व तक सावधि जमाओं पर ब्याज दर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित की जाती थी। परंतु अब यह ब्याज दर पूर्ण रूप से अविनियमित (De-requlated) कर दी गयी है। बैंक अब सावधि जमाओं के ऊपर विभिन्न परिपवक्ता अवधि (Maturity) के आधार पर अपनी स्वयं की ब्याज दर निर्धारित करने को स्वतंत्र हैं। भारतीय रिजर्व बैंक के संकेत पर बैंक बड़ी मात्रा में जमा राशियों पर अर्थात् 15 लाख रुपये या इससे अधिक की जमाओं पर सामान्य से कुछ ज्यादा ब्याज प्रदान करती है। उसी प्रकार से ऐसी जमाओं पर जो वरिष्ठ नागरिकों (ऐसे व्यक्ति जिनकी आयु 60 वर्ष से अधिक हो) के नाम में जमा की जाती है, पर भी कुछ अधिक ब्याज दर प्रदान की जाती है। वाणिज्यिक बैंकों व इसके साथ ही क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों एवं सहकारी बैंकों के पास प्रत्येक खाते में एक लाख रुपये तक की जमा राशियाँ डिपोजिट ऐश्योरेंश एण्ड क्रेडिट गारंटी कारपोरेशन द्वारा बीमित रहती हैं। इस प्रकार की बीमा सुरक्षा के लिए बैंक कारपोरेशन को 5 पैसे प्रति 100 रुपये की दर से प्रीमियम का भुगतान करते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428002240

वाणिज्यिक बैंकों ने जमा प्रमाण पत्रों के माध्यम से भी बड़ी मात्रा में जमाएँ अर्जित की हैं। 20 अक्तूबर 2000 को ऐसी जमाओं की मात्रा 1695 करोड़ रुपये थी लेकिन 5 अक्तूबर 2001 को यह घटकर 823 करोड़ हो गयी थी।

5.3.3 उधार लेनदारियाँ (Borrowings)

बैंकें उधार लेने के माध्यम से भी अपनी निधियों में वृद्धि करते हैं। ऐसी उधार राशियों के निम्न स्रोत हैं:

i) भारतीय रिजर्व बैंक

ii) अन्य बैंक एवं

iii) अन्य संस्थाएँ एवं एजेंसी

भारतीय रिजर्व बैंक निर्यात साख के लिए पुनर्वित्त (Refinance) प्रदान करता है एवं अल्पावधि के लिए तरलता समायोजन सुविधा (Liquidity Adjustment Facility) (इस संबंध में विस्तृत चर्चा इकाई 7 में दी गई है।) के अंतर्गत निधियाँ भी प्रदान करता

है। इसके अतिरिक्त बैंक अन्य शीर्ष बैंकों जैसे निर्यात आयात बैंक, आई डी बी आई आदि से भी पुनर्वित्त प्राप्त करते हैं।

5.4 निधियों का नियोजन (Employment of Resources)

अब आप यह समझ गए होंगे कि बैंकों की निधियाँ बड़ी मात्रा में जमाओं के आधार पर विकसित की जाती हैं एवं ऐसी जमा राशियाँ मांग पर या एक निश्चित अवधि के बाद प्रतिदेय (Repayble) होती हैं। अतएव बैंक इन निधियों का आंशिक रूप से तरल परिसंपत्तियों जैसे स्वयं के पास नकद शेष या अन्य बैंकों के पास नकद शेष एवं माँग और अल्प सूचना पर प्रतिदेय राशि (Money at call and short notice) एवं शेष धनराशि को या तो प्रतिभूतियों में निवेशित करते हैं या ऋण या अग्रिम रूप में प्रदान करते हैं।

i) **अन्य बैंकों के पास नकद शेषः** ये बैंक की सबसे अधिक तरल सपत्ति होती है एवं इन्हें सुरक्षा की प्रथम पंक्ति कहा जाता है। ऐसे नकद शेषों के आधार पर बैंक अपने जमाकर्त्ताओं की माँग पर तुरंत चुकता कर सकता है। बैंक ऐसे नकद शेषों में एक उचित मात्रा में धनराशि - जमा राशियों का लगभग 10 प्रतिशत - नकद रूप में रखता है।

ii) **माँग और अल्प सूचना पर प्रतिदेय राशिः** बैंक अपने पास उपलब्ध अतिरिक्त धन को दूसरे बैंकों को उनकी आवश्यकता के अनुसार एक दिन या कुछ दिनों की अवधि के लिए उधार देते हैं। बैंक ऐसी धनराशि पर ब्याज भी अर्जित करते हैं। इस प्रकार की मिलने वाली ब्याज दर निधियों की माँग एवं पूर्ति के आधार पर प्रत्येक अवधि के लिए अलग-अलग होती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

iii) **भारतीय रिजर्व बैंक के पास आरक्षित निधिः** भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 की धारा 42 के तहत वाणिज्यिक बैंकों को अपनी शुद्ध माँग एवं सावधि देयताओं का कम से कम 3 प्रतिशत आवश्यक रूप से नकद्री के रूप में भारतीय रिजर्व बैंक के पास जमा करना होता है। यह न्यूनतम वैधानिक (Statutory) सीमा है एवं भारतीय रिजर्व बैंक को इसे 15 प्रतिशत तक बढ़ाने का अधिकार है।

1 जून, 2002 से नकद आरक्षित अनुपात की आवश्यकता को 5.5 प्रतिशत से घटाकर 5 प्रतिशत कर दिया गया है। अतः गत कुछ वर्षों में रिजर्व बैंक ने इसकी दर को धीरे-धीरे कम किया है। नकद आरक्षित अनुपात में कमी से रिजर्व बैंक के पास बैंकों की जमाराशि में कमी आती है एवं आवश्यकता के अतिरिक्त पैसा बैंकों को वापस मिल जाता है। उससे उनकी तरलता में वृद्धि होती है। रिजर्व बैंक बैंकों को उनके द्वारा नकद रूप में रखे गए 3 प्रतिशत से अधिक शेष पर बैंक दर के आधार पर ब्याज का भुगतान करता है।

iv) **निवेशः** बैंक अपनी जमाराशियों की काफी मात्रा में निवेश करते हैं। प्राथमिक रूप से बैंकों को बैंकिंग विनियम अधिनियम 1949 के खंड 24 के तहत सांविधिक तरलनिधि के रूप में एक निश्चित मात्रा अनिवार्य रूप से सरकारी एवं अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में निवेशित करनी होती है।

इसके अतरिक्त भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंकों को उनके गत वर्ष के कुल अदत्त अग्रिमों का 5 प्रतिशत उच्चतम सीमा के अंतगर्त कंपनी प्रतिभूतियों जैसे शेयर्स, परिवर्तनीय बाण्ड एवं ऋण पत्रों में निवेश करने की स्वीकृति प्रदान की है। इस प्रकार वाणिज्यिक बैंक कारपोरेट प्रतिभूतियों में ज्यादातर बाण्ड एवं ऋण पत्रों में निवेश करते हैं। बैंकों के निवेशों को उनके तुलन पत्र में निम्न शीर्षकों में दर्शाया जाता है।

1) सरकारी प्रतिभूतियां

2) अन्य अनुमोदित (Approved) प्रतिभूतियां

3) शेयर्स

4) ऋण पत्र एवं बाण्ड

5) सहायक एवं संयुक्त उद्यम

6) अन्य वाणिज्यिक प्रपत्र (Commercial Paper), इंदिरा विकास पत्र, यू टी आई के यूनिट, पारस्परिक निधियां।

यद्यपि वर्तमान में सांविधिक तरलता की आवश्यकता उनकी शुद्ध मांग एवं सावधि देयताओं का 25 प्रतिशत है पर बैंक इस प्रतिशत से अधिक निवेश करते हैं क्योंकि उनके ज्यादातर निवेश कारपोरट बाण्ड एवं ऋण पत्रों में होते हैं। मार्च 23, 2001 को अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का निवेश जमा अनुपात (अदत्त के आधार पर) 38.5 प्रतिशत था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

v) **ऋण एवं अग्रिम (Loans and Advances)**: ऋण एवं अग्रिम स्वीकार करना वाणिज्यिक बैंकों का प्रमुख व्यवसाय है। विभिन्न प्रकार के ऋण तीन रूपों में स्वीकृत किए जाते हैं।

क) खरीदे गए एवं भुनाए गए बिल

ख) नकदी ऋण, ओवर ड्राफ्ट एवं मांग पर देय ऋण

ग) मियादी ऋण (Term Loans)

क) **विनिमय बिल (Bill of Exchange):** विनिमय बिल वास्तविक व्यापारिक लेन देनों पर आधारित होते हैं। जब बिल दिखाने पर या प्रस्तुत करने पर देय (payble at sight or presentment) होते हैं तो बैंक उन्हें ग्राहकों (बिल के आहर्ता) से खरीद लेते हैं। सावधि या मियादी (Time or usance) बिलों की स्थिति में बैंक उन्हें भुना देता है।

ख) **नकदी ऋण (Cash Credit)** : यह एक चल (Running) खाता है जिसके अंतर्गत एक ग्राहक के लिए नकदी साख सीमा निर्धारित की जाती है। ग्राहक को यह सुविधा रहती है कि वह निर्धारित सीमा के अंतर्गत चाहे जब पैसा निकाल सकता है एवं अपनी सुविधानुसार जमा कर सकता है। ऐसा खाता जितनी अदत्त धनराशि जितने दिन के लिए दिखाएगा उसी पर ब्याज ली जाएगी।

ग्राहकों को ओवर ड्राफ्ट अस्थायी सुविधा के रूप में प्रदान की जाती है। ओवर ड्राफ्ट के अंतर्गत ग्राहक किसी आकस्मिक या आवश्यक कार्य के लिए अपनी जमा से अधिक राशि निकाल सकता है। ग्राहकों को अल्पावधि के ऋण भी स्वीकृत किए जाते हैं जो माँग पर चुकाने होते हैं।

ग) **मियादी ऋण :** मध्यम या दीर्घकालीन ऋण होते हैं। ऐसे ऋण बैंकों द्वारा स्वयं या अन्य मियादी ऋणदायी संस्था के साथ संयुक्त रूप से स्वीकृत किए जाते हैं। ये ऋण व्यवसाय की स्थायी संपत्तियों में निवेश, विस्तार या नवीनीकरण के लिए दिए जाते हैं।

बैंकों द्वारा ली जाने वाली प्रतिभूति के आधार पर ऋणों को निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है :

i) दृश्य संपत्तियों (Tangible Assets) के आधार पर प्रतिभूत ऋण (बही ऋणों के अग्रिमों को मिलाकर)

ii) बैंक/सरकारी गारंटी द्वारा प्रतिभूत ऋण

iii) प्रतिभूति रहित ऋण (Unsecured loans)

उपरोक्त में दर्शाए गए ज्यादातर ऋण पहली श्रेणी में एवं न्यूनतम ऋण अंतिम श्रेणी में आते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

vi) **ब्याज दर नीति :** भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंकों को परिचालनात्मक लोच (Operational Flexibility) प्रदान करने के लिए वित्तीय क्षेत्र में सुधारों की प्रक्रिया प्रारंभ की थी। 1994 तक बैंकों द्वारा ऋणों पर वसूल की जाने वाली ब्याज दर रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित की जाती थी। अक्तूबर 1994 में रिजर्व बैंक ने बैंकों द्वारा ऋणों पर उधारकर्ताओं से न्यूनतम ऋण ब्याज दर वसूल करने के लिए मूल उधार दर (Prime Landing Rate) विचारधारा प्रारंभ की जो ऐसे ऋण कर्त्ताओं पर लागू होगी जिनकी साख सीमा 2 लाख रुपये से अधिक है। इसके बाद बैंकों को स्वायत्तता प्रदान की गयी कि वे स्वयं अपनी मूल उधार दर निश्चित करें एवं उस पर अधिकतम प्रसार (Spread) भी निर्धारित करें। बैंक अब विभिन्न परिपक्वता (Maturity) के लिए अलग-अलग ऋणों पर अलग-अलग मूल उधार दर निर्धारित कर सकते हैं। 19 अप्रैल 2001 से वाणिज्यिक बैंकों को निर्यातकों एवं अन्य अच्छी साख वाले उधारकर्ताओं को एवं सार्वजनिक उपक्रमों को मूल उधार दर से कम ब्याज दर पर भी ऋण देने की अनुमति प्रदान की गयी है।

vii) **क्षेत्रवार बैंक साख का नियोजन :** वाणिज्यिक बैंक अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। वे न केवल उद्योग व व्यापार को वित्त प्रदान करते हैं अपितु उपभोक्ता साख, फुटकर साख एवं आवास ऋण भी प्रदान करते हैं। उनके द्वारा प्राथमिक क्षेत्र को दिए गए ऋण कुल बैंक साख का 40 प्रतिशत रहता है। 27 जुलाई 2001 को क्षेत्रवार अदत्त बैंक साख की स्थिति निम्न तालिका में दर्शायी गयी है।

तालिका-1

27 जुलाई, 2001 को बैंक साख का क्षेत्रवार वितरण

	क्षेत्र	धनराशि (रु. करोड में)
1.	उद्योग (मध्यम एवं बड़े आकार के)	160175
2.	थोक व्यापार (खाद्यान्न खरीद को छोड़कर)	16567
3.	सार्वजनिक खाद्यान खरीद	51027
4.	प्राथमिकता वाले क्षेत्र :	
	i) कृषि	52076
	ii) लघु उद्योग	53241
	iii) अन्य प्राथमिक क्षेत्र	48839
	कुल	**154156**
5.	अन्य क्षेत्र	
	i) आवास	17891
	ii) टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ	6793
	iii) गैर-बैंकिंग वित्त कंपनियाँ	7491
	iv) व्यक्तिगत ऋण	1454
	v) भूमि भवन ऋण	1912
	vi) अन्य गैर प्राथमिक क्षेत्र	18415
	vii) मियादी जमाओं के आधार पर ऋण	19383
	viii) पर्यटन एवं पर्यटन संबंधी सेवाएँ	1473
	कुल	**98723**
6.	निर्यात साख	3227
	कुल योग	**339477**

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्रोत : भारत में बैंकिंग प्रगति एवं प्रवृत्ति की रिपोर्ट (2000-01)

बोध प्रश्न 2

1) उधार लेने के आधार पर बैंक स्रोतों को बढ़ाने के प्रमुख स्रोतों को बताइए।

.....

.....

.....

2) आरक्षित नकद निधि अनुपात को रिजर्व बैंक द्वारा अधिकतम किस सीमा तक बढ़ाया जा सकता है?

.....

.....

.....

3) ऋण स्वीकार करने के विभिन्न स्वरूपों को बताइए।

.....

.....

.....

5.5 रिजर्व बैंक के दिशा-निर्देश एवं मानदण्ड

5.5.1 प्राथमिकता क्षेत्र को ऋण

भारतीय वाणिज्यिक बैंक (सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र दोनों ही) रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित निम्नलिखित लक्ष्यों के अंतर्गत प्राथमिक क्षेत्र को ऋण प्रदान करने के लिए बाध्य हैं:

प्राथमिकता क्षेत्र को कुल ऋण	:	शुद्ध बैंक साख का 40%
कुल कृषि क्षेत्र को ऋण	:	शुद्ध बैंक साख का 18%
कमजोर वर्ग को ऋण	:	शुद्ध बैंक साख का 10%

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

विदेशी बैंकों के लिए निम्नलिखित लक्ष्य हैं:

प्राथमिकता क्षेत्र को कुल ऋण	:	शुद्ध बैंक साख का 32%
लघु उद्योगों को ऋण	:	शुद्ध बैंक साख का 10%
निर्यात साख	:	शुद्ध बैंक साख का 12%

प्राथमिक क्षेत्र में कृषि, लघु स्तरीय उद्योग, परिवहन चालक, फुटकर व्यापार एवं लघु व्यवसाय, व्यावसायिक एवं स्व-नियोजित व्यक्ति, कमजोर वर्ग को आवासीय ऋण एवं अन्य ऋण, तथा हडको (हाउसिंग एन्ड अरबन डवलपमेंट कोरपोरेशन), राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक एवं राष्ट्रीय आवास बैंक द्वारा जारी किए गए विशेष बाण्डों में निवेश सम्मिलित है।

5.5.2 विवेकपूर्ण मानदण्ड (Prudential Norms)

वाणिज्यिक बैंकों की कार्य प्रणाली में सुधार लाने की दृष्टि से रिजर्व बैंक ने बैंकों के लिए निम्नलिखित विवेकपूर्ण मानदण्ड निर्धारित किए हैं :

निष्पत्ति शून्य परिसंपत्तियाँ (Non-performing Assets)

एक परिसंपत्ति निम्नलिखित परिस्थितियों में निष्पत्ति शून्य परिसंपत्ति मानी जाएगी:

i) मियादी ऋणों के संबंध में यदि ब्याज एवं/या मूलधन की किश्त 180 दिनों से अधिक अतिदेय रहती है।

ii) ओवर ड्राफ्ट एवं नकदी साख खातों के संबंध में यदि एक खाता 180 दिनों से अधिक अनियमित रहता है।

iii) एक विनिमय पत्र यदि 180 दिनों से अधिक अतिदेय रहता है।

iv) अल्पकालीन कृषि ऋणों के संबंध में यदि ब्याज एवं/या मूलधन दो फसली मौसम (Harvest season) से अधिक अतिदेय रहता है।

31 मार्च 2004 को समाप्त होने वाले वर्ष से 180 दिन की उपरोक्त अवधि घटकर 90 दिन रह जाएगी।

5.5.3 आय मान्यता (Income Recognition)

बैंक किसी भी निष्पत्ति शून्य परिसंपत्ति पर ब्याज को आय के रूप में नहीं मानेंगे। लेकिन मियादी जमाओं, इंदिरा विकास पत्र, किसान विकास पत्र, बीमा पालिसी के आधार पर दिए गए ऋणों पर ब्याज को आय माना जा सकता है बशर्ते ऐसे खातों पर पर्याप्त मार्जिन उपलब्ध हो। यदि कोई अग्रिम जिसे सरकार द्वारा गारन्टी दी हो, निष्पत्ति शून्य हो जाता है तो ऐसे अग्रिमों पर ब्याज को तब तक आय खाते में नहीं डाला जाना चाहिए जब तक कि वह ब्याज प्राप्त न हो गई हो।

DIKSHANT IAS

5.5.4 परिसंपत्तियों का वर्गीकरण (Asset Classification)

Call us @7428092240

अग्रिम संविभाग (Advances portfolio) की सभी निष्पत्ति शून्य परिसंपत्तियों को निम्नलिखित तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है:

i) **अवमानक परिसंपत्ति (Sub-Standard Asset):** यदि एक परिसंपत्ति 18 माह या इससे कम अवधि के लिए निष्पत्ति शून्य परिसंपत्ति रही है।

ii) **संदिग्ध परिसंपत्ति (Doubtful Asset):** यदि एक परिसंपत्ति 18 माह से अधिक निष्पत्ति शून्य रहती है।

iii) **हानि परिसंपत्ति (Loss Asset):** जिस परिसंपत्ति में बैंक के आंतरिक या बाह्य लेखा परीक्षक द्वारा हानि की मात्रा सुनिश्चित कर दी गयी हो लेकिन हानि की मात्रा पूर्ण रूप से लिखित (written) न की गयी हो।

उपरोक्त मानदण्ड निम्न मामलों में लागू नहीं होंगे:

i) राज्य सरकार द्वारा गारंटी दिए गए ऋण जहाँ गारंटी पर कोई विवाद न हो।

ii) केंद्रीय सरकार द्वारा गारंटी दिए गए ऋण जहाँ केंद्रीय सरकार ने गारंटी खंडित न की हो।

अन्य सभी उपयोगी परिसंपत्तियों को मानक परिसंपत्तियाँ माना जाएगा।

बैंकों को अपनी लेखा पुस्तकों में निम्न प्रावधान करने होंगेः

i) **मानक परिसंपत्तियाँः** विश्वव्यापी परिसंपत्तियों के आधार पर 0.25%

ii) **अवमानक परिसंपत्तियाँ :** अदत्त धनराशि का 10%

iii) **संदिग्ध परिसंपत्तियाँ :** असुरक्षित (Unsecored) अंश पर 100% एवं सुरक्षित अंश का :

- एक वर्ष तक की संदिग्ध परिसंपत्ति पर 20%
- एक वर्ष से तीन वर्ष तक की संदिग्ध परिसंपत्ति पर 30%
- तीन वर्ष से ऊपर की संदिग्ध परिसंपत्ति पर 50%

iv) **हानि परिसंपत्तियाँ :** अदत्त धनराशि का 100%

1) **बैंक निवेश के मानदण्ड (Exposure Norms of Banks):** ऋणों में अंतर्निहित जोखिम को कम करने के लिए रिजर्व बैंक ने वाणिज्यिक बैंकों कें लिए निवेश के मानदण्ड निर्धारित किए हैं। इन मानदण्डों के अनुसार मार्च 2002 से एक उधारकर्ता एवं/या समूह उधारकर्ता को निधि या गैर निधि पर आधारित सुविधाओं एवं उनके शेयर्स में निवेश (एक निर्धारित उच्चतम सीमा तक जो नीचे दर्शायी गयी है) की अधिकतम धनराशि निम्नलिखित रूप में निर्धारित की गयी हैः

i) **व्यक्तिगत उधारकर्ता :** बैंक की पूँजी निधियों का 15% (पूँजी निधि में प्रदत्त पूँजी एवं निर्बाध आरक्षित निधियाँ (Free Reserve) सम्मिलित हैं।)

ii) **समूह उधारकर्ता :** पूँजी निधियों का 40% (आधारभूत परियोजनाओं को वित्त प्रदान करने की स्थिति में यह 10% अतिरिक्त हो सकता है।)

2) **पूँजी बाजार में निवेश के मानदण्ड :** बैंक अपनी निधियों को कारपोरेट प्रतिभूतियों में निवेश करते हैं एवं शेयर्स की प्रतिभूति के आधार पर व्यक्तिगत दलालों आदि को ऋण प्रदान करते हैं। रिजर्व बैंक ने पूँजी बाजार में निवेश के लिए मानदण्ड निर्धारित किए हैं। कुल मिलाकर ऐसे निवेश को उनके गत वर्ष 31 मार्च के कुल अदत्त अग्रिमों (वाणिज्यिक प्रपत्र को मिलाकर) का 5 प्रतिशत तक ही प्रतिबंधित किया है। 11 मई 2001 से इस 5 प्रतिशत की उच्चतम सीमा में निम्नलिखित सम्मिलित हैंः

i) शेयर्स, परिवर्तनीय बाण्ड एवं ऋण पत्रों में प्रत्यक्ष निवेश।

ii) शेयर्स, बाण्ड, ऋण पत्र, पारस्परिक निधियों के यूनिटों में निवेश के लिए शेयर्स के आधार पर किए गए व्यक्तिगत ऋण।

iii) शेयर दलालों को प्रतिभूति एवं गैर-प्रतिभूति ऋण एवं शेयर दलालों के पक्ष में जारी की गयी गारंटी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.5.5 पूँजी पर्याप्तता मानदण्ड

1992 से रिजर्व बैंक ने वाणिज्यिक बैंकों के लिए पूँजी पर्याप्तता मानदण्ड निर्धारित किए हैं।

31 मार्च 2000 से प्रभावी सभी बैंकों को 9% पूँजी पर्याप्तता की शर्तें माननी होंगी। इससे पूर्व यह मानदण्ड 8% था।

इन मानदण्डों के निर्धारण का प्रमुख उद्देश्य बैंकों को अपनी पूँजी निधियाँ (जैसा कि नीचे व्याख्या की गयी है) की वृद्धि करना है। ऐसा करना इसलिए आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार की परिसंपत्तियों में जोखिम की मात्रा में वृद्धि हुयी है। इसके लिए बैंक की विभिन्न परिसंपत्तियों को जोखिम भारित किया गया है एवं ऐसी भारिता (Weightage) 0-100 के बीच होगी। इस प्रकार परिसंपत्तियों का जोखिम समायोजित मूल्य प्राप्त किया जाता है। बैंकों की पूँजी निधियाँ कम से कम जोखिम समायोजित परिसंपत्तियों के मूल्य के निर्धारित प्रतिशत के बराबर होनी चाहिए। वर्तमान में यह 9 प्रतिशत निर्धारित किया गया है।

पूँजी निधियों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं।

पूँजी के प्रथम स्तर में (Tier-I) निम्नलिखित सम्भावित हैं:

i) प्रदत्त पूँजी, सांविधिक निधियां एवं अन्य प्रकट की गयी मुक्त आरक्षित निधियाँ (Disclosed Free Reserves)।

ii) परिसंपत्तियों की बिक्री के आधार पर आधिक्य द्वारा सृजित पूँजी आरक्षित निधियाँ।

उपरोक्त (i) एवं (ii) से निम्नलिखित को घटाया जाएगा।

DIKSHANT IAS

क) बैंक की सहायक कंपनियों में निवेश किए गए शेयर्स

Call us @7428092240

ख) अदृश्य संपत्तियाँ एवं

ग) गत एवं वर्तमान वर्षों में घटित हानियाँ।

पूँजी के द्वितीय स्तर (Tier-II) में शामिल हैं :

i) अप्रकट निधियाँ एवं संचयी बेमियादी अधिमान शेयर (Cumulative Perpectual Preferance Share)
ii) पुनर्मूल्यन निधियाँ (55% बट्टे पर)
iii) सामान्य प्रावधान एवं हानि निधियाँ (loss reserves) (मानक परिसंपत्तियों पर सामान्य प्रावधान को सम्मिलित करते हुए (1.25% से अधिक न हो)
iv) संकर ऋण पूँजी लिखत (Hybrid debt instrument)
v) गौण ऋण (Subordinated debt) – (पूँजी की प्रथम पंक्ति के 50% इसके लिए पात्र हैं)

जोखिम भारित परिसंपत्तियों से पूँजी का अनुपात

मार्च 2001 के अंत में 27 सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में से 23 बैकों की पूँजी जोखिम भारित परिसंपत्तियों से 10 प्रतिशत से अधिक थी। शेष में 2 बैंकों का अनुपात 9 से 10% था, एक का 4 से 9% एवं दूसरे का अनुपात नकारात्मक था।

23 पुराने निजी क्षेत्र के बैंकों में 16 का अनुपात 10% से अधिक था, 4 बैंकों का 9 से 10% था एक का 4 एवं 9 के बीच का जबकि दो बैंकों का पूँजी अनुपात

नकारात्मक था। नए निजी क्षेत्र के बैंकों में 7 बैंकों का जोखिम भारित पूंजी अनुपात 10% से अधिक था जबकि 1 बैंक का 9 एवं 10% के बीच था।

5.6 निष्पत्ति शून्य परिसंपत्तियों की समस्या

वर्तमान में बैंकों की सबसे जटिल समस्या निष्पत्ति शून्य परिसंपत्तियाँ की बड़ी मात्रा में विद्यमानता है। अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की सकल निष्पत्ति शून्य परिसंपत्तियों की मात्रा मार्च 2000 में 60408 करोड़ रुपये से बढ़कर मार्च 2001 में 63883 करोड़ रुपये हो गयी। इसी क्रम में शुद्ध निष्पत्ति शून्य परिसंपत्तियों की मात्रा क्रमशः 30073 करोड़ रुपये एवं 32468 करोड़ रुपये थी। सभी प्रकार के बैंक अर्थात् सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के बैंक एवं विदेशी बैंक इस समस्या का सामना कर रहे हैं। निष्पत्ति शून्य परिसंपत्तियों की मात्रा को कम करने के लिए भारत सरकार एवं रिजर्व बैंक ने बहुत से उपाय किए हैं। उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं।

i) **ऋण वसूली अधिकरण (Tribunals) की स्थापना:** बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं के लिए ऋण वसूली अधिनियम 1993 के पश्चात् देश के विभिन्न नगरों में 23 ऋण वसूली अधिकरणों की स्थापना की गयी है। ये अधिकरण बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं की ऋण वसूली एवं न्याय निर्णयन (adjudication) की प्रक्रिया को गति प्रदान करते हैं। अभी जल्दी में ही इन अधिकरणों को इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए और अधिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। ये अधिकरण बैंक दावों के उन मामलों का निपटान करते हैं जहाँ दावे की मात्रा 10 लाख या इससे अधिक हो।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ii) **प्रस्तावित परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनियों की स्थापना (Proposed Establishment of Asset Reconstruction Companies):** सरकार जल्दी ही परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनियों की स्थापना करने की योजना तैयार कर रही है। ये कंपनियां बैंकों से निष्पत्ति शून्य परिसंपत्तियों को खरीदेंगी एवं उनकी शीघ्र वसूली का हर संभव प्रयास करेंगी।

बोध प्रश्न 3

1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

   i) रिजर्व बैंक ने निर्धारित किया है कि बैंक की शुद्ध साख का .... प्रतिशत कमजोर वर्ग को ऋण के रूप में दिया जाना चाहिए।

   ii) विदेशी बैंक अपनी शुद्ध बैंक साख का ..... प्रतिशत प्राथमिकता क्षेत्र को ऋण देने के लिए बाध्य हैं।

2) उन परिस्थितियों को बताइये जब एक परिसंपत्ति को निष्पत्ति शून्य परिसंपत्ति माना जाता है।

   .....

   .....

.....

.....

.....

5.7 सारांश

भारत में वाणिज्यिक बैंकों का अधिकांश बैंकिंग कार्य सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा किया जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र में, स्वामित्व स्वरूप के आधार पर भारतीय स्टेट बैंक एवं इसके सहायक बैंकों को स्टेट बैंक समूह संगठन कहा जाता है। नए निजी क्षेत्र के बैंकों में आई सी आई सी आई बैंक लिमिटेड सम्मिलित है जो भारतीय स्टेट बैंक के बाद दूसरा सबसे बड़ा बैंक है। बैंकों को निर्धारित शर्तों के पूरा करने पर अनुसूचित बैंकों का दर्जा मिलता है।

जमाएँ बैंक निधियों का मुख्य स्रोत हैं। बचत खातों को छोड़कर अन्य जमाओं पर ब्याज दर पूर्ण रूप से अविनियमित हैं। रिजर्व बैंक एवं अन्य संस्थाओं से उधारियाँ बैंकों की निधियों में वृद्धि करती हैं।

वाणिज्यिक बैंकें अपनी निधियों का नियोजन तरल परिसंपत्तियों, अर्ध-तरल परिसंपत्तियों एवं लाभ अर्जन करने वाली परिसंपत्तियों जैसे ऋण एवं अग्रिम में करती हैं। उन्हें अपनी जमा राशियों का एक निर्धारित प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास आरक्षित नकदी निधि एवं सांविधिक तरलता अनुपात के रूप में 25% जमा करना होता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ऋण विभिन्न प्रयोजनों के लिए प्रदान किए जाते हैं। कुल अग्रिमों का 40% प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को दिया जाता है। ऋण आवास, उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएँ, भूमि व भवन के वित्तीयन एवं व्यक्तिगत उद्देश्यों के लिए भी प्रदान किए जाते हैं।

रिजर्व बैंक ने विवेकपूर्ण मानदण्ड निर्धारित किए हैं जो सभी वाणिज्यिक बैंकों द्वारा अपनाए जाते हैं। पूँजी पर्याप्तता का 9% मानदण्ड बैंकों को पूरा करना होता है।

वर्तमान में वाणिज्यिक बैंकों की सबसे बड़ी समस्या बड़ी मात्रा में निष्पत्ति शून्य परिसंपत्तियाँ का होना हैं। ऋण वसूली ट्रिव्यूनल एवं अन्य माध्यमों से इस समस्या को हल करने के प्रयास किए जा रहे हैं। हालांकि बैंकिंग क्षेत्र में सुधारों की प्रक्रिया 1991 से प्रारंभ की गयी है फिर भी वाणिज्यिक बैंकों की कार्य प्रणाली को सुधारने के लिए आगे भी सुधारों की आवश्यकता है।

5.8 शब्दावली

अधिकृत पूँजी : किसी कम्पनी की अधिकृत पूँजी वह अधिकतम राशि होती है जिसे अंशधारकों (शेयर होल्डरों) से संग्रहीत किया जा सकता है। कंपनियों के निगमित होते समय इसकी सीमा निर्धारित की जाती है और इस राशि का उल्लेख मैमोरेन्डम ऑफ अंडर स्टैडिंग में होता है।

जोखिम भारित परिसंपत्तियों से पूँजी का अनुपात : पूँजी मानदंडों के अनुसार बैंकों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपनी परिसंपत्तियों के जोखिम समायोजित मूल्य के एक निश्चित भाग के बराबर पूँजी अपने पास रखें। इस समय यह अनुपात 9% है जिसे जोखिम भारतीय परिसपंत्तियों से पूँजी का अनुपात कहते हैं।

अदृश्य संपत्तियाँ : वे परिसंपत्तियाँ जिनका भौतिक रूप में अस्तित्व नहीं होता, अदृश्य परिसंपत्तियाँ कहलाती हैं। उदाहरण के लिए सद्भावना, पेटेन्ट अधिकार आदि। अन्य परिसंपत्तियाँ दृश्य परिसंपत्तियाँ होती हैं।

प्रदत्त पूँजी : पूँजी की वह राशि जिसका अंशधारकों ने वास्तविक भुगतान कर दिया हो। कंपनियाँ सामान्य रूप से अधिकृत पूँजी का एक भाग अभिदत्त पूँजी के रूप में रखती हैं। इसमें से अंश धारकों द्वारा अभिदत्त की गई पूँजी अभिदत्त (Subscribed) पूँजी कहलाती है और भुगतान की गई पूँजी प्रदत्त पूँजी कहलाती है।

अधिमान शेयर : अधिमान शेयर (Preference share) तथा सामान्य शेयर में दो अंतर हैं: (i) सामान्य शेयर धारकों के लिए लाभांश घोषित करने से पूर्व अधिमान शेयर धारकों को लाभांश दिया जाता है। (ii) कंपनी के बंद होते समय अधिमान शेयर धारकों को सामान्य शेयर धारकों से पहले भुगतान किया जाता है।

मूल उधार दर : वह दर जिस पर कोई वाणिज्य बैंक प्रथम दर उधारकर्ता, जिसे सबसे अधिक विश्वसनीय माना जाता है, से अग्रिम पर वसूल करता है। यह एक ऐसी न्यूनतम दर है जिसका निर्धारण बैंक स्वयं करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जोखिम भारित परिसंपत्तियाँ : रिजर्व बैंक द्वारा तय पूँजी मानदंडों के अनुसार बैंक परिसंपत्तियों में निहित जोखिम स्तर के अनुसार बैंक परिसंपत्तियों को भिन्न-भिन्न जोखिम भारांकन प्रदान किए जाते हैं। इन जोखिमों का भारांकन 0-100 तक होता है।

मानक परिसंपत्तियाँ : रिजर्व बैंक के निर्देशों के अनुसार बैंकों को अपनी परिसंपत्तियों को चार भागों में बाँटना होता है। मानक परिसंपत्तियाँ वे परिसंपत्तियाँ होती हैं जो निष्पत्ति शून्य नहीं हैं, यानी बैंक उधारकर्ताओं से ब्याज एवं मूलधन की वसूली नियमित करते रहते हैं।

सांविधिक आरक्षित निधि : बैंकिंग नियमीकरण अधिनियम, 1949 के तहत प्रत्येक बैंक को अपनी [illegible] की 20% निधियाँ आरक्षित कोष में रखनी होती हैं। यही सांविधिक आरक्षित कोष कहलाता है।

अवधि संबद्ध (Tenor Linked PLR) : भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा विभिन्न परिपक्वता अवधि वाले अग्रिमों के लिए बैंकों द्वारा अलग-अलग मूल उधार दरें लेने की अनुमति दी गई है। ये दरें अवधि सम्बद्ध कहलाती हैं।

5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Machiraju, H.R. (1998) : *"Indian Financial System"*, Vikas Publication. Delhi.

Sundharam, K.D.S. and Varshney, P.N. (2000) : *"Banking and Financial System"*, Sultan Chand and Sons, Delhi.

Bhole L.M. (2000) : *"Financial Institution and Markets"*, Tata Mc Graw Hills, New Delhi.

Varshney, P.N. (1999) : *"Indian Financial System and Commercial Banking"*, Sultan Chand and Sons, Delhi.

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) वृहद रूप से वाणिज्यिक बैंकों को दो समूहों में विभाजित किया गया है : (i) सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक, (ii) निजी क्षेत्र के बैंक। पुनः सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को दो वर्गों में उप-विभाजित किया गया है। (i) भारतीय स्टेट बैंक (ii) राष्ट्रीयकृत बैंक।

2) i) 3

ii) 8

iii) 19

iv) आई सी आई सी आई बैंक लिमिटेड

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) देखें उपभाग 5.2.3

बोध प्रश्न 2

1) उधार लेने के मुख्य स्रोत हैं:

i) भारतीय रिजर्व बैंक

ii) अन्य बैंक

iii) अन्य संस्थाएँ एवं एजेंसी

2) 20%

3) i) बिलों की खरीद

ii) नकदी ऋण, ओवर ड्राफ्ट एवं माँग पर चुकाए जाने वाले ऋण

iii) सावधि ऋण

बोध प्रश्न 3

1) i) 10%

ii) 32%

2) उपभाग 5.5.2 को देखें।

इकाई 6 बैंक एवं गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों की नियामक रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 भारतीय रिजर्व बैंक - केंद्रीय बैंक के रूप में इसके कार्य
6.3 वाणिज्यिक बैंकों पर नियंत्रण
6.4 सहकारी बैंकों पर नियंत्रण
6.5 गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों पर नियंत्रण
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- मुद्रा बाजार में विभिन्न प्रतिभागियों के नाम जान सकेंगे,
- बैंक एवं गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के प्रमुख विनियामक प्राधिकारी (Authority) को बता सकेंगे,
- बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1947 (Banking Regulations Act, 1947) के उन मुख्य प्रावधानों की व्याख्या जो वाणिज्यिक बैंक एवं गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों को नियमित करते हैं, कर सकेंगे, और
- भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 के अंतर्गत रिजर्व बैंक को वाणिज्यिक बैंकों एवं गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों को नियंत्रित करने के लिए निहित अधिकारों का विवरण दे सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

आज वित्तीय प्रणाली को विनियमित करने की आवश्यकता को सर्वमान्य रूप से मान लिया गया है, जिससे कि बड़ी संख्या में बचतकर्त्ताओं/जमाकर्ताओं के हितों की सुरक्षा की जा सके। इसके साथ ही उन संस्थाओं की, जो वित्तीय प्रणाली का एक प्रमुख अंग हैं, उचित एव प्रभावी क्रियाशीलता सुनिश्चित की जानी चाहिए। भारत में दो प्रमुख विनियामक प्राधिकारी हैं - भारतीय रिजर्व बैंक एवं भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (Securities and Exchange Board of India-SEBI) इनको क्रमशः मुद्रा बाजार एवं पूँजी बाजार के विकास एवं नियंत्रण की जिम्मेदारी

सौंपी गयी है। ये प्राधिकारी विभिन्न अधिनियमों में निहित विधायी (legistative) अधिकारों का प्रयोग करते हैं एवं अपने विवेक से भी कार्य करते हैं। इस प्रकार से वित्तीय प्रणाली विनियामक ढाँचे में कार्य करती है। इस एवं इससे अगली इकाई का उद्देश्य आपको विनियामक ढाँचे की वृहद जानकारी देना है। इस इकाई में हम मुद्रा बाजार के विनियामक वातावरण एवं उसमें प्रमुख प्रतिभागियों, जिनमें वाणिज्यिक वातावरण एवं उसमें प्रमुख प्रतिभागी जैसे वाणिज्यिक बैंक, सहकारी बैंक, वित्तीय संस्थाएँ एवं गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाएँ सम्मिलित हैं, के बारे में चर्चा करेंगे।

6.2 भारतीय रिजर्व बैंक — केंद्रीय बैंक के रूप में इसके कार्य

रिजर्व बैंक देश का केंद्रीय बैंक होने के साथ-साथ भारतीय मुद्रा बाजार का प्रमुख विनियामक (regulator) प्राधिकारी भी है। इसको दो मुख्य अधिनियमों जैसे भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 एवं बैंकिंग विनियमन अधिनियम 1949 के तहत अधिकार प्राप्त हैं। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 में रिजर्व बैंक के संगठन, प्रबंध एवं कार्यों का प्रावधान है। इसके साथ ही रिजर्व बैंक को वाणिज्यिक बैंकों, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों एवं वित्तीय संस्थाओं को नियंत्रित करने के विनियामक अधिकार प्रदान किए गए हैं। बैंकिंग रेगूलेशन एक्ट, 1949 में भारत में वाणिज्यिक बैंकों को नियमित करने के विभिन्न प्रावधान हैं। इनमें से बहुत से प्रावधान सहकारी बैंकों पर भी लागू होते हैं। भारतीय स्टेट बैंक, इसके सहायक बैंक एवं राष्ट्रीयकृत बैंक भी उन्हीं विधायी प्रावधानों द्वारा नियंत्रित किए जाते हैं जिसके लिए वे निगमित (Incorporate) किए गए हैं। यहां हम विनियामक रूपरेखा के बारे में चर्चा करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पहले हम रिजर्व बैंक द्वारा निष्पादित किए जाने वाले मुख्य कार्यों की चर्चा करेंगे। रिजर्व बैंक की स्थापना 1 अप्रैल 1935 को रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया एक्ट, 1934 के तहत हुई थी। देश के केंद्रीय बैंक के रूप में रिजर्व बैंक के निम्नलिखित कार्य हैं:

क) **करेंसी नोट का जारी करना:** एक रुपये का नोट एवं छोटे मूल्य वर्ग के सिक्कों को छोड़कर बाकी करेंसी नोट जारी करने का एकमात्र अधिकार रिजर्व बैंक को है। रिजर्व बैंक से नोट जारी करने से संबंधित सारे कार्य-निर्गम विभाग (Issue Department) द्वारा किए जाते हैं। यह विभाग नोट जारी करने एवं जारी किए गए नोटों के सममूल्य की पात्र परिसंपत्तियों के रख-रखाव का कार्य करता है।

ख) **सरकार के लिए बैंकर :** रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया एक्ट, 1934 के अनुसार रिजर्व बैंक केंद्रीय सरकार एवं समझौते के अनुसार राज्य सरकारों के लिए बैंकर के रूप में कार्य करता है। सरकार के लिए बैंकर के रूप में रिजर्व बैंक जमाएँ स्वीकार करना, निधियों का आहरण (withdrawl), सरकार की ओर से प्राप्तियों एवं भुगतान का कार्य, निधियों का रूपांतरण एवं सार्वजनिक ऋण के प्रबंध का कार्य करता है।

ग) **बैंकों का बैंक :** रिजर्व बैंक विभिन्न साख नियंत्रणों के माध्यम से वाणिज्यिक बैंकों के संसाधनों का नियंत्रण करता है। इससे बैंकों की उद्योग, व्यापार व वाणिज्य क्षेत्र को साख बढ़ाने या कम करने की क्षमता नियंत्रित रहती है।

घ) **पर्यवेक्षी प्राधिकारी (Supervisory Authority):** रिजर्व बैंक को वाणिज्यिक बैंकों के पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण के अधिकार हैं। यह बैंकों को नयी शाखाएँ खोलने के लिए लाइसेंस प्रदान करता है। रिजर्व बैंक को आरक्षित अनुपातों को परिवर्तन करने का, बैंकों के कार्य का निरीक्षण, एवं अध्यक्ष एवं मुख्य कार्यकारी अधिकारियों की नियुक्ति करने का अधिकार है।

ड.) **विनिमय नियंत्रण प्राधिकारी :** भारतीय रुपये का वाह्य मूल्य निर्धारित करने के अतिरिक्त, रिजर्व बैंक विदेशी विनिमय प्रबंध अधिनियम के अंतर्गत विदेशी विनिमय की माँग को नियमित करता है।

च) **साख नियंत्रण :** रिजर्व बैंक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य उद्योग क्षेत्र के लिए साख प्रवाह को नियंत्रित करना है। इसके लिए रिजर्व बैंक, बैंक दर, आरक्षित निधि की माँग, खुले बाजार की क्रियाएँ, चयनित साख नियंत्रणों एवं नैतिक अभिप्रेरण (moral suasion) आदि मापदण्डों का सहारा लेता है।

6.3 वाणिज्यिक बैंकों पर नियंत्रण

वाणिज्यिक बैंकों को नियंत्रित करने वाले बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 के मुख्य प्रावधान इस प्रकार हैं:

1) स्थापना

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रत्येक बैंकिंग कंपनी, भारतीय या विदेशी, को भारत में अपना व्यवसाय प्रारंभ करने के पूर्व रिजर्व बैंक से लाइसेंस प्राप्त करना अनिवार्य है। रिजर्व बैंक कंपनी द्वारा निम्न शर्तें पूर्ण करने की संतुष्टि पर लाइसेंस जारी करता है।

i) एक कंपनी अपने वर्तमान या भावी जमाकर्त्ताओं को उनके द्वारा किए गए दावों को भुगतान करने में समर्थ है या होगी।

ii) कंपनी कोई भी ऐसे कार्य नहीं कर रही है या करेगी जो इसके वर्तमान या भावी जमाकर्ताओं के हित में बाधक हो।

iii) कंपनी के प्रस्तावित प्रबंधकर्ता के सामान्य लक्षण — आम जनता या जमाकर्त्ता के हित के विरोध में नहीं होंगे।

iv) कंपनी के पास पर्याप्त पूँजी संरचना एवं आय के साधन हैं।

v) कंपनी को भारत में बैंकिंग व्यवसाय प्रारंभ करने के लिए लाइसेंस प्रदान करना आम जनता के हित में सहायक होगा।

vi) लाइसेंस प्रदान करना बैंकिंग प्रणाली के परिचालन एवं समेकिकीकरण (consolidation) जो मौद्रिक स्थिरता एवं आर्थिक विकास में सहायक है, के विरोध में न होगा।

vii) ऐसी अन्य शर्तों की संतुष्टि होने पर कि भारत में बैंकिंग व्यवसाय करना किसी भी प्रकार से आम जनता या जमाकर्ताओं के हित में बाधक न होगा।

उपरोक्त के अलावा एक विदेशी बैंक को निम्न शर्तें भी पूरी करनी होंगी :

i) ऐसी कंपनी का भारत में व्यवसाय करना आम जनता के हित में होगा।

ii) उस देश की सरकार जहाँ ऐसी कंपनी स्थापित हुई हैं, का कानून किसी भी तरह भारत में बैंकिंग कंपनी के विरोध में या भेदभाव नहीं करता है।

iii) कंपनी अधिनियम के उन सभी प्रावधानों का पालन करेगी जो ऐसी कंपनी पर लागू होते हैं।

2) शाखाओं का खोलना

प्रत्येक बैंकिंग कंपनी (भारतीय या विदेशी) को भारत या भारत के बाहर व्यवसाय करने के लिए नयी शाखाएँ खोलने या विद्यमान स्थान को परिवर्तन करने के लिए रिजर्व बैंक की पूर्व अनुमति आवश्यक है। रिजर्व बैंक अनुमति प्रदान करने के पूर्व निम्न बातों पर ध्यान देता है:

i) कंपनी की वित्तीय स्थिति एवं पृष्ठभूमि,

ii) प्रबंध वर्ग के सामान्य लक्षण,

iii) पूँजी की पर्याप्तता एवं आय के साधन, तथा

iv) क्या नयी शाखा खोलने/स्थान परिवर्तन करने से आम जनता का हित होगा?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) अनुमोदित एवं वर्जित व्यवसाय (Business permitted and prohibited)

बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 6 की सूची में ऐसे कार्यों का विवरण है जो एक बैंकिंग कंपनी कर सकती है। अनुच्छेद (clause) 'ओ' के अनुसार केंद्रीय सरकार कोई भी ऐसा व्यवसाय निर्दिष्ट कर सकती है जो एक बैंकिंग कंपनी कानूनन कर सकती है। लेकिन एक बैंकिंग कंपनी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई भी व्यापारिक क्रिया और व्यापारिक जोखिम (केवल वित्त संग्रहण की वसूली के कार्य जिसके लिए उधार दिया गया है को छोड़कर) का कार्य नहीं कर सकती है।

4) सहायक कम्पनी

एक बैंकिंग कंपनी धारा 6 में अनुमोदित कोई भी व्यवसाय या भारत के बाहर पूर्ण रूप से बैंकिंग व्यवसाय या अन्य कोई व्यवसाय जो रिजर्व बैंक के विचार से भारत में बैंकिंग प्रसार को प्रोत्साहन देगा या जनहित में उपयोगी आदि कार्यों के लिए अपने अधीन एक सहायक कंपनी की स्थापना कर सकती है।

5) प्रदत्त पूँजी

अधिनियम में उन बैंकों के लिए, जिनकी स्थापना 1962 से पूर्व हुई है, प्रदत्त पूँजी एवं आरक्षित निधियों का न्यूनतम कुल मूल्य नियत है। 1962 के पश्चात् स्थापित बैंकों के लिए पूँजी की न्यूनतम धनराशि बढ़ाकर 5 लाख रुपये कर दी गयी थी। रिजर्व बैंक द्वारा जारी किए गए संशोधित दिशा-निर्देशों के अनुसार, निजी क्षेत्र में

स्थापित होने वाले नए बैंकों के लिए न्यूनतम प्रदत्त पूँजी की मात्रा 200 करोड़ रुपये होगी जो अगले तीन वर्षों में 300 करोड़ रुपये बढ़ा दी जाएगी। कुल प्रदत्त पूँजी में प्रवर्तकों (Promoters) का अंशदान 25% (या प्रदत्त पूंजी की मात्रा 100 करोड़ रुपये से अधिक होने की दशा में 20%) होगा। अनिवासी भारतीय भी नए बैंकों की पूँजी में 40% तक अपना अंशदान प्रदान कर सकते हैं।

एक राष्ट्रीय कृत बैंक की अधिकृत पूँजी 1500 करोड़ रुपये है जो 3000 करोड़ रुपये तक बढ़ायी जा सकती है। इन बैंकों को पूँजी कम करने की भी अनुमति दी जा सकती है, लेकिन यह राशि 1500 करोड़ रुपए से कम नहीं होनी चाहिए। ये बैंक जनता को शेयर्स निर्गमित कर सकते हैं, लेकिन कुल प्रदत्त पूँजी में केंद्रीय सरकार का अंशदान 51% से कम नहीं हो सकता है। प्रदत्त पूँजी के स्तर को किसी भी समय कम किया जा सकता है लेकिन ऐसा स्तर 1995 के प्रदत्त पूँजी के 25% से कम नहीं होना चाहिए।

6) चल परिसंपत्तियों का रख-रखाव (Maintenance of Liquid Assets)

धारा 24 के अनुसार भारत में एक बैंकिंग कंपनी को अपने किसी भी दिन के शुद्ध मांग एवं सावधि दायित्वों का कम से कम 25% धनराशि नकद, स्वर्ण या भार रहित (unencumbered) अनुमोदित स्वीकृति रखना होगा। इसे सांविधिक तरलता अनुपात कहा जाता है एवं भारतीय रिजर्व बैंक को इसे शुद्ध माँग एवं सावधि दायित्वों का 40% तक बढ़ाने का अधिकार है। जब इस अनुपात में वृद्धि होती है तो बैंक अपनी जमाओं का बड़ा भाग इन विशिष्ट तरल परिसंपत्तियों में रखने को विवश होते हैं। सांविधिक तरलता अनुपात प्रतिदिन के आधार पर रखना पड़ता है। इसकी गणना पिछले पखवाड़े (Fortnight) के अंतिम शुक्रवार को शुद्ध मांग एवं सावधि दायित्वों के आधार पर की जाती है। बैंकों द्वारा रखी गयी प्रतिभूतियों को मूल्यांकन कराने का अधिकार रिजर्व बैंक को है। रिजर्व बैंक इस संबंध में रुपये समय पर मूल्यांकन की पद्धति जैसे लागत मूल्य पर, बाजार मूल्य पर या अंकित मूल्य (face value) पर तय कर सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अनुमोदित प्रतिभूतियों का तात्पर्य उन प्रतिभूतियों से है जहाँ ट्रस्टी भारतीय ट्रस्ट अधिनियम 1882 की धारा 20 के अनुसार निवेश कर सकते हैं। प्रतिभूतियाँ भार रहित होनी चाहिए अर्थात् किसी लेनदार के पक्ष में भार नहीं होना चाहिए।

धारा 24 के अंतर्गत निर्धारित तरल परिसपंत्तियाँ न रखने पर या चूक करने की स्थिति में दण्ड का प्रावधान है। वर्तमान में सांविधिक तरलता अनुमान शुद्ध मांग एवं सावधि दायित्वों का 25% है (इसमें अंतर बैंक दायित्व शामिल नहीं किए जाते है)।

7) भारत में परिसंपत्तियों का रख रखाव (Maintenance of Assets in India)

धारा 25 के अनुसार प्रत्येक बैंकिंग कंपनी की परिसपंत्तियाँ उनके प्रत्येक तिमाही के अंतिम शुक्रवार को कुल माँग एवं सावधि दायित्वों के 75 प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए।

8) रिजर्व बैंक द्वारा निरीक्षण

धारा 35 के अंतर्गत रिजर्व बैंक स्वयं की ओर से अथवा केंद्रीय सरकार के निर्देश पर एक बैंकिंग कंपनी का एक या एक से अधिक शाखाओं का निरीक्षण कर उनकी लेखा पुस्तकों की जाँच कर सकता है। रिजर्व बैंक की निरीक्षण रिपोर्ट मिलने के बाद यदि केंद्रीय सरकार यह सोचती है कि बैंकिंग कपंनी के कार्य इसके जमाकर्ताओं के हित में नहीं हैं तो वह उस बैंकिंग कंपनी को नयी जमाएँ स्वीकार करने से रोक सकती है या रिजर्व बैंक को उस बैंकिंग कंपनी के समापन के निर्देश दे सकती है।

9) निर्देश जारी करने के रिजर्व बैंक के अधिकार

धारा 35 ए के अंतर्गत रिजर्व बैंक को बैंकिंग कंपनियों को सामान्य रूप से एवं विशेष संदर्भ में किसी एक कंपनी को निर्देश जारी करने के व्यापक अधिकार हैं। ऐसे निर्देश निम्न संबंध में हो सकते हैं :

i) बैंकिंग नीति के हित में या जन हित में।
ii) बैंकिंग कंपनी के कार्यों को रोकने में, यदि ऐसे कार्य जमाकर्ताओं के हितमें न हों या बैंकिंग कंपनी के हित में विरोधी हों।
iii) सामान्य रूप से किसी बैंकिंग कंपनी का उचित प्रबंध सुनिश्चित करने के लिए।

बैंकिंग कंपनी उक्त निर्देशों को पालन करने के लिए बाध्य होगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

धारा 36 के अनुसार रिजर्व बैंक को यह अधिकार है कि वह किसी भी बैंकिंग कंपनी को किसी विशेष या सामान्य लेन-देनों पर रोक लगा सकती है या उसे लेन-देनों के प्रति सचेत कर सकती है एवं बैंकिंग कंपनी को अपनी सलाह प्रदान कर सकती है।

रिजर्व बैंक को यह भी अधिकार है कि वह बैंकिंग कंपनी को निदेशक मण्डल की बैठक बुलाने को कह सकता है, अपने अधिकारियों को निदेशक मण्डल की सभा की कार्यवाही की निगरानी के लिए प्रतिनियुक्त कर सकता है, अपने अधिकारियों को प्रेक्षक (observer) के रूप में नियुक्त कर सकता है या बैंकिंग कंपनी को उसके प्रबंध वर्ग को बदलने के लिए सुझाव दे सकता है।

10) बैंकों का प्रबंध

एक निजी क्षेत्र के वाणिज्यिक बैंक के निदेशक मण्डल का गठन बैंकिंग विनिमयन अधिनियम 1949 के प्रावधानों के अनुसार होना चाहिए। धारा 10 ए के अनुसार निदेशक मण्डल के कम से कम 51% सदस्य ऐसे हों जो निम्न दो शर्तें पूरी करते हों:

i) उनको लेखा पद्धति, कृषि, ग्रामीण-अर्थव्यवस्था, बैंकिंग, सहकारिता, अर्थशास्त्र, वित्त, कानून, लघु उद्योग या अन्य संबंधित विषयों में कार्य करने का अनुभव या विशेष ज्ञान होना चाहिए।

ii) उन्हें किसी ऐसी कंपनी या फर्म जो किसी व्यापारिक, वाणिज्यिक या औद्योगिक क्रिया से संबंधित कार्य करती है, में बहुत ज्यादा हित नहीं होना चाहिए। (इसमें लघु औद्योगिक इकाइयों से संबंधित या उन कंपनियों को जो कपंनी अधिनियम की धारा 25 में रजिस्टर्ड है, को छोड़ दिया गया है)।

रिजर्व बैंक को यह अधिकार है कि वह एक बैंकिंग कंपनी को यदि उपरोक्त आधार पर उसके बोर्ड का गठन नहीं किया गया हो तो बोर्ड के पुनर्गठन के बारे में निदेशित कर सकता है। वह किसी भी निदेशक को हटाकर एक योग्य निदेशक नियुक्त कर सकता है। एक व्यक्ति दो बैंकिंग कंपनियों का निदेशक नहीं हो सकता है या एक बैंकिंग कंपनी का निदेशक नहीं हो सकता है यदि वह ऐसी कंपनियों का निदेशक है जो बैंकिंग कंपनी के सभी शेयर धारकों में 25% से अधिक वोटिंग करने का अधिकार रखता है।

अधिनियम के अनुसार बैंकिंग कंपनी का अध्यक्ष एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसको वित्तीय संस्था, वित्त मामलों, आर्थिक या व्यवसाय प्रशासन में कार्य करने का व्यवहारिक अनुभव एवं विशेष ज्ञान होना चाहिए। लेकिन उसे किसी कंपनी का निदेशक, एक फर्म में साझेदार या किसी कंपनी या फर्म में बहुत ज्यादा हित नहीं होना चाहिए। यदि रिजर्व बैंक यह समझता है कि जिस व्यक्ति को अध्यक्ष नियुक्त किया गया है, वह उस आफिस के लिए उचित योग्य व्यक्ति नहीं है तो वह बैंक को किसी दूसरे व्यक्ति को नियुक्त करने की सलाह दे सकता है। यदि बैंक ऐसा नहीं करता है तो रिजर्व बैंक को उस व्यक्ति को हटाने एवं दूसरे व्यक्ति को उसके स्थान पर नियुक्त करने का अधिकार है।

एक अध्यक्ष, निदेशक या मुख्य कार्यकारी अधिकारी की नियुक्ति, पुनर्नियुक्ति या सेवाएँ समाप्त करने के लिए रिजर्व बैंक का अनुमोदन आवश्यक है। यदि रिजर्व बैंक यह समझता है कि बैंकिंग कंपनी के कार्य जमाकर्ताओं के हित में बाधक हैं तो वह उस बैंकिंग कंपनी के उच्च अधिकारी वर्ग के कर्मचारियों को हटा सकता है। रिजर्व बैंक को ऐसे हटाए गए व्यक्ति के स्थान पर दूसरे व्यक्ति को नियुक्त करने का अधिकार है। रिजर्व बैंक को अधिकतम 5, या कुल निदेशक मण्डल की संख्या का एक तिहाई जो दोनों में कम हो, अतिरिक्त निदेशक नियुक्त करने का अधिकार है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

राष्ट्रीयकृत बैंकों के निदेशक मण्डल का गठन बैंकिंग कंपनीज (अधिग्रहण एवं सार्वजनिक इकाइयों का स्थांतरण) अधिनियम 1970 या 1980 की धारा 9 के प्रावधानों के अनुसार होना चाहिए। इसमें रिजर्व बैंक के अधिकारियों, केंद्रीय सरकार, अन्य वित्तीय संस्थाओं एवं संबंधित बैंक के कर्मचारी या अधिकारी वर्ग के सदस्यों को निदेशक के रूप में नियुक्त करने का प्रावधान है। कुल मिलाकर 6 निदेशक केंद्रीय सरकार द्वारा नामित किए जाते हैं। दो से 6 के बीच निदेशक अंशधारकों द्वारा चयनित किए जाते हैं। इन निदेशकों को निजी बैंकों के निदेशकों के लिए उल्लिखित विषयों में व्यवहारिक अनुभव या विशेषज्ञ होना चाहिए। यदि रिजर्व बैंक यह समझता है कि अंशधारकों द्वारा नियुक्त किया गया निदेशक उपरोक्त आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं है तो वह ऐसे निदेशक को हटा सकता है एवं निदेशक मण्डल उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को सहयोजित (co-opt.) कर सकता है।

राष्ट्रीयकृत बैंक केंद्रीय सरकार द्वारा दिए गए दिशा निर्देशों का पालन करने को बाध्य हैं। अधिनियम की धारा 8 के अनुसार, एक राष्ट्रीयकृत बैंक अपने कार्यों के अनुपालन में उन दिशा-निर्देशों से मार्गदर्शन लेगा जो केंद्रीय सरकार द्वारा रिजर्व बैंक के परामर्श के बाद जनहित में नीतियों के रूप में बनायी जाती हैं।

11) अग्रिमों पर नियंत्रण

बैंकिंग कंपनियों द्वारा सामान्य रूप से या किसी एक विशेष कंपनी द्वारा दिए जाने वाले ऋणों के संबंध में रिजर्व बैंक धारा 21 के अंतर्गत दिशा-निर्देश जारी कर सकता है। ऐसे दिशा निर्देश निम्नलिखित में से किसी एक या सभी मामलों से संबंधित हो सकते हैं।

क) उद्देश्य जिसके लिए ऋण स्वीकार या अस्वीकार किए जाते हों।

ख) प्रतिभूति वाले अग्रिमों के संबंध में मार्जिन राशि की मात्रा।

ग) एक व्यक्ति, फर्म, कंपनी या व्यक्तियों के संघ को दिए जाने वाले ऋण की अधिकतम मात्रा।

घ) एक बैंकिंग कंपनी द्वारा किसी दूसरी बैंकिंग कंपनी की ओर से की जाने वाली गारंटी की अधिकतम मात्रा।

ड.) ब्याज दर एवं अन्य शर्तों का निर्धारण जिस पर अग्रिम या गारंटी दी जा सकती है।

इस खंड के अंतर्गत यदि दिशा-निर्देश चयनित वस्तुओं की प्रतिभूति के आधार पर ऋण दिए जाने के संबंध में हैं तो उन्हें चयनित साख नियंत्रण दिशा-निर्देश कहा जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12) ऋण एवं अग्रिमों पर प्रतिबंध

एक बैंकिंग कंपनी पर अपने स्वयं के शेयर्स की प्रतिभूति पर ऋण या अग्रिम स्वीकार करने का प्रतिबंध है। धारा 20 के अंतर्गत उन लोगों को स्वीकार किए गए ऋणों पर जिनका बैंक के प्रबंध में कोई हित है, प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं।

13) रिजर्व बैंक के पास आरक्षित नकद शेष

भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 की धारा 42 के अनुसार भारत में प्रत्येक वाणिज्यिक बैंक को उनके प्रतिदिन के शुद्ध मांग एवं सावधि देयताओं का कम से कम 3% रिजर्व बैंक के पास नकद रूप में रखना होगा। रिजर्व बैंक को इस दर को शुद्ध माँग एवं सावधि दायित्वों के 20% तक बढ़ाने का अधिकार है। यदि कोई बैंक अपेक्षित नकद आरक्षित नहीं रख पाता है तो रिजर्व बैंक अधिनियम के तहत दण्ड लगा सकता है। यह प्रावधान सभी अनुसूचित बैंकों - वाणिज्यिक बैंक, राज्य सहकारी बैंक एवं क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों पर लागू होता है।

29 दिसंबर, 2001 से वाणिज्यिक बैंकों को उनके गत पखवाड़े के अंतिम शुक्रवार को शुद्ध माँग एवं सावधि दायित्वों का 5.5% आरक्षित नकदी निधि अनुपात के रूप में रखना होगा। 1जून, 2002 से यह प्रतिशत 7.5% से घटाकर 5.5% कर दिया गया है। जून 1, 2002 से आरक्षित नकद निधि अनुपात 5% होगा। रिजर्व बैंक 3% से अधिक की अर्ह धनराशि पर बैंक दर के अनुसार (6.5%) व्याज का भुगतान करती है।

6.4 सहकारी बैंकों पर नियंत्रण

केंद्रीय और राज्य सहकारी बैंक एवं शहरी सहकारी बैंक, सहकारी बैंक की श्रेणी में आते हैं। ये संगठित सहकारी समितियाँ होती हैं जो संबंधित राज्य सरकारों के सहकारी समितियाँ अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत एवं नियंत्रित होती हैं। इस प्रकार से पंजीकरण, प्रशासन, नियुक्ति, समापन एवं विलय (amalgamation) आदि के मामले राज्य सरकारों द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं। क्योंकि ये कुछ कार्य बैंक के रूप में करते हैं, इसलिए बैंकिंग विनिमयन अधिनियम 1949 के कुछ प्रावधान इन पर लागू होते हैं। बैंकिंग मामलों के संबंध में वे रिजर्व बैंक द्वारा नियंत्रित किए जाते हैं।

शहरी सहकारी बैंकों पर रिजर्व बैंक का पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण बहुत कमजोर है क्योंकि ये बैंक दुहरे नियंत्रण में रहते हैं। फिर भी रिजर्व बैंक ने आय की मान्यता, परिसंपत्तियों के वर्गीकरण एवं प्रावधान से संबंधित विवेकपूर्ण मानदण्ड निर्धारित किए हैं। निवेश के मानदण्ड वाणिज्यिक बैंकों की भाँति शहरी सहकारी बैंकों के लिए भी निर्धारित किए गए हैं।

बोध प्रश्न 1

1) एक बैंकिंग कंपनी द्वारा नए स्थान पर व्यवसाय प्रारंभ करने के लिए अनुमति प्रदान करते समय रिजर्व बैंक किन-किन बातों पर विचार करता है?

.....

.....

.....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

   i) एक राष्ट्रीयकृत बैंक की अधिकृत पूँजी ..... होती है।

   ii) रिजर्व बैंक को शुद्ध माँग एवं सावधि दायित्वों का ..... सांविधिक तरलता अनुपात के रूप में बढ़ाने का अधिकार है।

   iii) धारा ..... के अंतर्गत रिजर्व बैंक को बैंकिंग कंपनियों को निर्देश देने के अधिकार हैं।

   iv) आरक्षित नकद निधि अनुपात ..... का एक महत्वपूर्ण संयंत्र है।

3) रिजर्व बैंक द्वारा कौन-कौन से कार्य संपादित किए जाते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

6.5 गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों का नियंत्रण

भारत में गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियाँ वित्तीय मध्यस्थता का एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। वे बैंकिंग संस्थाओं की पूरक भूमिका निभाती हैं क्योंकि वे उन ऋण कर्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं जो बैंकिंग संस्थाओं की परिधि से बाहर हैं। इसके साथ ही वे जमाओं का संग्रह भी करती हैं। किराया, क्रय, वित्त एवं पट्टेधारी (leasing) कंपनियाँ, ऋण एवं निवेश कपंनियाँ एवं आवास वित्त कंपनियां कुछ ऐसी महत्वपूर्ण कंपनियाँ हैं जो गैर-बैंकिंग वित्तीय कपंनियों की श्रेणी में आती हैं।

गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। अतएव, जमाकर्त्ताओं के हितों की विशेष रूप से रक्षा करते हुए इनके नियंत्रण की रूपरेखा तैयार की गयी है। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 के अध्याय-III बी में गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के नियंत्रण के बारे में प्रावधान हैं। जनवरी 1997 में इस अध्याय में व्यापक संशोधन किए गए हैं जिससे रिजर्व बैंक को इन कंपनियों का नियंत्रण करने के लिए और अधिक अधिकार मिल गए हैं। पहले यहाँ हम अध्याय-III बी के बारे में चर्चा करेंगे। तत्पश्चात् रिजर्व बैंक द्वारा स्वीकृत निर्देशों की चर्चा की जाएगी।

1) भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934

भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 के अध्याय-III बी में रिजर्व बैंक को निहित अधिकार निम्नलिखित हैं :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

i) **विवरण पत्रिका (Prospectus) जारी करने पर नियंत्रण या प्रतिबंध :** रिजर्व बैंक जनहित में गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों पर किसी प्रकार की विवरण पत्रिका जारी करने या जनता से जमाएं स्वीकार करने के लिए विज्ञापनों पर नियंत्रण या प्रतिबंध लगा सकता है। रिजर्व बैंक इन कंपनियों को विज्ञापन में शामिल करने के लिए विवरणों के बारे में भी दिशा निर्देश दे सकता है।

ii) **जमाओं के बारे में सूचना एकत्रित करना एवं दिशा देना:** रिजर्व बैंक को प्रत्येक बैंकिंग कंपनी से इसके द्वारा प्राप्त की गयी जमाओं के बारे में सूचना मांगने या विवरण एकत्रित करने का अधिकार है। रिजर्व बैंक जमाओं के बारे में जनहित में इस प्रकार की संस्थाओं को या किसी विशेष संस्था को या संस्थाओं के एक विशेष समूह को दिशा-निर्देश दे सकता है। अगर कोई संस्था इन दिशा-निर्देशों का पालन नहीं करती है तो रिजर्व बैंक उन संस्थाओं के जमा स्वीकार करने पर प्रतिबंध लगा सकता है।

iii) **निरीक्षण करना :** रिजर्व बैंक किसी भी समय एक गैर-बैंकिंग संस्था का निरीक्षण कर सकता है। यह सत्यापित करने के लिए कि बैंक द्वारा दी गयी सूचना सही एवं पूर्ण है या ऐसी कोई सूचना प्रदान नहीं की गयी है तो उसको लेने के लिए निरीक्षण कर सकता है।

iv) भारतीय रिजर्व बैंक (संशोधित) अधिनियम 1997 के तहत रिजर्व बैंक को निम्नलिखित अधिकार सुनिश्चित किए गए हैं:

क) एक नयी गैर-बैंकिंग संस्था जब तक रिजर्व बैंक से रजिस्टर्ड नहीं है एवं उसके पास कम से कम 25 लाख रुपए की अपनी निजी निधियाँ नहीं हैं, वह कार्य नहीं कर सकती है। कोई ऐसी कंपनी जो 20 अप्रैल 1999 के बाद स्थापित होती है एवं रिजर्व बैंक से पंजीकरण के लिए आवेदन करती है तो रिजर्व बैंक को यह अधिकार है कि वह ऐसी कंपनी की न्यूनतम निजी निधियों की धनराशि को बढ़ाकर 2 करोड़ तक कर सकता है।

ख) प्रत्येक गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी को अपना आरक्षित निधि कोष बनाना होगा एवं प्रति वर्ष लाभांश की घोषणा करने के पूर्व अपने शुद्ध लाभ का 20% इस कोष में स्थांतरण करना होगा।

ग) रिजर्व बैंक को अधिकार है कि वह एक कंपनी द्वारा भार-रहित चल परिसंपत्तियों का न्यूनतम स्तर (जमाओं का प्रतिशत) निर्धारित करे। ऐसा निवेश अनुमोदित प्रतिभूतियों (सरकारी प्रतिभूतियों/गारंटीकृत बाण्डों) में होगा।

घ) अगर एक कंपनी अपने जमाकर्ताओं को जमा राशियों की अवधि पूर्ण होने पर उनका भुगतान नहीं कर पाती है तो कंपनी लॉ बोर्ड को ऐसी कंपनी को निर्देशित करने का अधिकार है।

ड.) रिजर्व बैंक को निम्नलिखित अधिकार दिए गए हैं:

- गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के लिए विवेकपूर्ण मानदण्डों के बारे में दिशा-निर्देश देना।
- गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनी के लेखा परीक्षकों (Auditors) को तुलन पत्र के बारे में विशेष लेखा परीक्षा से संबंधित निर्देश देना एवं गैर कानूनी अनियमितताओं के लिए अर्थ दण्ड देना।
- भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए जमाएँ स्वीकार न करने के लिए निर्देश देना एवं परिसपंत्तियों के स्वत्वाधिकार (alienation) अंतरण के बारे में दिशा-निर्देश देना।
- गैर कानूनी अनियमितताओं के लिए गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के विरुद्ध समापन याचिका (winding petition) दाखिल करना।
- गैर कानूनी अनियमितताओं के लिए प्रत्यक्ष रूप से अर्थ दण्ड लगाना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) गैर बैंकिंग कंपनियों द्वारा जनता से जमाएँ स्वीकार करना - रिजर्व बैंक के दिशा-निर्देश

अध्याय-III बी में निहित अधिकारों का प्रयोगा करते हुए रिजर्व बैंक ने जनता से जमाएँ स्वीकार करने के संबंध में गैर -बैंकिंग कंपनियों को दिशा-निर्देश स्वीकृत किए हैं। इन निर्देशों को जनवरी 1998 में व्यापक रूप से संशोधित किया गया एवं इन गैर संशोधनों में बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के लिए विवेकपूर्ण मानदण्ड सम्मिलित किए गए। दिसंबर 1998 में पुनः संशोधित रिजर्व बैंक दिशा-निर्देशों की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

i) नियंत्रण की दृष्टि से इन कंपनियों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है:

क) वे कंपनियाँ जो जनता से जमाएँ स्वीकार करती हैं।

ख) वे कंपनियाँ जो जनता से जमाएँ स्वीकार नहीं करतीं लेकिन वित्तीय व्यवसाय में कार्यरत हैं।

ग) स्थायी रूप से निवेश कंपनियाँ जो अपनी कुल परिसम्पत्तियों का 90% अपने समूह, नियंत्रित या सहायक कंपनी की प्रतिभूतियों में निवेश करती हैं।

रिजर्व बैंक के इन निर्देशों का जनता से जमाएँ स्वीकार करने वाली कंपनियों पर अधिक जोर है।

ii) जनता से जमाओं की परिभाषा में जनता से प्राप्त मियादी/आवर्ती जमाएँ, मित्रों एवं संबंधियों से प्राप्त जमाएँ, एक सार्वजनिक कंपनी द्वारा अंशधारियों से प्राप्त जमाएँ एवं गैर-प्रतिभूति ऋण पत्रों एवं अंशधारियों व आम जनता से बाण्डों के माध्यम से एकत्रित की गयी राशि सम्मिलित है। **जनता की जमाओं** में प्रतिभूत ऋण पत्रों एवं बाण्डों द्वारा एकत्रित धनराशि, बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं से उधार की गयी ऋण राशि, (गैर-प्रतिभूत ऋण पत्रों को सम्मिलित करते हुए), निदेशकों से जमाएँ, अंतर-कंपनी जमाएँ, विदेशी नागरिकों की जमाएँ, निजी क्षेत्र की कंपनियों द्वारा अपने अंशधारियों से प्राप्त जमाएँ, कर्मचारियों की प्रतिभूति जमाएँ, पट्टे एवं किराया, क्रय की अग्रिम प्राप्त की गयी किश्तें **सम्मिलित नहीं** हैं।

iv) ऐसी गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियाँ जिनकी शुद्ध स्वाधिकृत निधियाँ (net-owned funds) 25 लाख रुपये (साख रेटिंग या साख रेटिंग के बिना) से कम हैं, को जनता से जमाएँ स्वीकार करने की अनुमति नहीं है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

iv) गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के लिए 25 लाख रुपये एवं इससे अधिक उच्चतम सीमा निम्नलिखित प्रकार से निर्धारित की गई है। इन उच्चतम सीमाओं को दिसंबर 1998 में लागू किया गया था। इससे पूर्व जनवरी 1998 में यह सीमा साख रेंटिंग के आधार पर थी।

क) **उपकरण पट्टा एवं किराया क्रय वित्त कंपनियाँ (Equipment Leasing and Hire Purchase Finance Companies)**

अ) ऐसी गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियाँ जिनकी रेटिंग नहीं हुयी है, या रेटिंग कम है (जिनकी रेटिंग निवेश के न्यूनतम ग्रेड से कम है) - की शुद्ध स्वाधिकृत निधियों का 1.5 गुना या 10 करोड़ रुपये जो दोनों में कम हो (शर्त यह है कि गतलेखा परिक्षित तुलन पत्र के अनुसार उस कंपनी का CRAR 15% या इससें अधिक होना चाहिए)

ब) ऐसी कंपनी को जहाँ साख रेटिंग न्यूनतम निवेश ग्रेड से कम है - उनकी शुद्ध स्वाधिकृत निधियों का 4 गुना - (शर्त यह है कि उस कंपनी का CRAR 31.3.1998 को 10% एवं 31.3.1999 को 12% से कम नहीं होना चाहिए) इन कंपनियों को अपने CRAR को 15% तक बढ़ाने की आवश्यकता है।

ख) **ऋण एवं निवेश कपंनियाँ :**

अ) गैर-रेटिंग या कम रेटिंग वाली कंपनियाँ जनता से जमाएँ स्वीकार करने के लिए अधिकृत नहीं हैं (उनकी शुद्ध स्वाधिकृत निधियाँ एवं CRAR कितना भी क्यों न हो)

ब) जहाँ साख रेटिंग न्यूनतम निवेश ग्रेड की हो - उनके शुद्ध स्वाधिकृत निधियों का 1.5 गुना (शर्त यह है कि उस कंपनी का CRAR 15% या इससे अधिक हो)

आगे यह भी शर्त रखी गयी है कि ऐसी ऋण एवं निवेश कंपनियाँ जिनका वर्तमान में न्यूनतम CRAR 15% से कम है लेकिन वे विवेक-पूर्ण मानदण्डों को पूरा करती हैं, एवं

अ) यदि उनकी साख रेटिंग AAA है तो वे 18 दिसंबर 1998 के अवशेष स्तर तक या अपनी शुद्धं स्वाधिकृत निधियों का डेढ़ गुना जो भी दोनों में अधिक हो, जमाएँ स्वीकार या जमाओं का नवीनीकरण कर सकती हैं। इसमें शर्त यह है कि ऐसी कंपनियों को अपना CRAR 31 मार्च 2000 तक 15% करना होगा और यदि अतिरिक्त जमा राशियाँ हैं तो उन्हें 31 दिसंबर 2000 तक कम करना होगा, एवं

ब) AAA साख रेटिंग वाली कंपनियाँ निर्देशों के विद्यमान (0.5 या उनकी स्वाधिकृत निधियों का एक गुना) प्रावधान के अनुसार जमाएँ स्वीकार या नवीनीकरण कर सकती हैं लेकिन उन्हें 31 मार्च, 2000 तक अपने लेखा परीक्षित तुलन पत्र के अनुसार 15% न्यूनतम CRAR का स्तर प्राप्त करना होगा अन्यथा 31 दिसंबर 2001 तक जमाओं के पुनर्भुगतान द्वारा अपनी स्थिति को नियमित करना होगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उपरोक्त लाभ उन कंपनियों को नहीं मिलेगा जिनका वर्तमान CRAR 15% है लेकिन बाद में 15% से कम हो जाता है।

v) सार्वजनिक जमाओं पर ब्याज की अधिकतम ब्याज दर 15% प्रतिवर्ष निर्धारित की गयी है। कंपनी एक वर्ष से 5 वर्ष तक की अवधि की जमा राशियों पर समान रूप से 2% की दलाली भी भुगतान कर सकती है। दलालों को अन्य व्ययों के रूप में उनके द्वारा संग्रहित जमाओं पर अधिकतम 0.5% की राशि की क्षतिपूर्ति की जा सकती है।

vi) केवल उन कंपनियों को जो जनता से जमाएँ स्वीकार करती हैं, रिजर्व बैंक को वार्षिक सांविधिक विवरण एवं वित्तीय विवरण प्रस्तुत करने होंगे। अन्य कंपनियाँ इस आवश्यकता की शर्त से मुक्त कर दी गयी हैं।

3) गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के विवेकपूर्ण मानदण्ड

रिजर्व बैंक ने जून 1994 में गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के लिए विवेकपूर्ण मानदण्डों के संबंध में दिशा-निर्देश जारी किए थे। ऐसी कंपनियाँ, जो जमाएँ स्वीकार करने का कार्य करती हैं, को सभी निर्देशों का पालन करना होगा। लेकिन पट्टेदारी, किराया क्रय वित्त, ऋण एवं निवेश कपंनी जो जनता से जमाएँ स्वीकार नहीं करती हैं, को

विवेकपूर्ण मानदण्ड पूँजी पर्याप्तता एवं ऋण एवं निवेश पर अन्य मानदण्डों का पालन करना होगा। इसी प्रकार से ऐसी निवेश कंपनियाँ जिनकी 90% से अधिक परिसंपत्तियाँ उनकी समूह/नियंत्रित/सहायक कंपनियों की प्रतिभूति में हैं एवं वे जनता से जमाएँ स्वीकार करने का कार्य नहीं करती हैं, विवेकपूर्ण मानदण्डों को पालन करने से मुक्त कर दी गयी हैं। ये दिशा-निर्देश निम्न प्रकार हैं :

i) **आय की मान्यता :** ऐसी आय जो देय है (अर्जित हो चुकी है) लेकिन गत 6 माह की अवधि में प्राप्त नहीं हुयी है, को खातों में आय के रूप में नहीं दिखाया जाएगा।

ii) **परिसंपत्तियों का वर्गीकरण :** अगर गत 6 माह में किसी ऋण खाते में उसके देय मूलधन या ब्याज या दोनों की प्राप्ति नहीं होती है तो ऐसी परिसंपत्ति को निष्पत्ति शून्य माना जाएगा। पट्टेदारी एवं किराया क्रय वित्त कंपनियों के मामले में पट्टा किराया या किराया क्रय किश्तें यदि गत 12 माह से देय रहती हैं, तो ऐसी परिसंपत्तियाँ को निष्पत्ति शून्य (non-performing) माना जाएगा। परिसंपत्तियों के चार श्रेणियों में वर्गीकरण संबंधी निर्देश, वाणिज्यिक बैंकों की तरह की शर्तें या निर्देश गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों पर लागू नहीं होते हैं।

iii) **पूँजी पर्याप्तता के मानदण्ड :** जनवरी 1998 से ऐसी कंपनियों के मामले में जिनकी शुद्ध स्वाधिकृत निधियाँ 25 लाख रुपये या इससे अधिक हैं एवं जो जनता से जमाएँ स्वीकार करती हैं, 31.3.1998 से पूँजी पर्याप्तता की आवश्यकता 8% से बढ़ाकर 10% एवं पुनः 31.3.1999 से 12% कर दी गयी हैं। पूँजी का मिश्रण, परिसंपत्तियों की जोखिम भारिता एवं तुलन पत्र के बाहर के मदों के परिवर्तन के मानदण्ड वही होंगे जो बैंकों के लिए लागू हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428692240

iv) **साख/निवेश संबंधी मानदण्ड :** रजिस्टर्ड वित्त कंपनियाँ एक ऋणकर्त्ता को अपने शुद्ध स्वाधिकृत निधियों (net owned funds) के 15% एवं ऋण कर्त्ताओं के समूहों को 25% से अधिक उधार नहीं दे सकती हैं। ये सीमाएँ एक कंपनी या कंपनी के समूहों पर भी लागू होती हैं। साख की मिश्रित सीमाएँ एवं एक कंपनी या कंपनियों के समूह को निवेश की सीमा स्वाधिकृत निधियों की क्रमशः 25% एवं 40% निर्धारित की गयी हैं। ये कंपनियाँ अपने स्वयं के शेयर्स की प्रतिभूति पर उधार नहीं दे सकती हैं। अपने समूह की या सहायक कंपनियों को छोड़कर अन्य कंपनियों के ऐसे शेयर जो शेयर बाजार के बाहर हैं, के आधार पर निवेश की उच्चतम सीमा उनके स्वाधिकृत निधियों से 10% से कम निश्चित की गयी है। यह सीमा उपकरण पट्टेदारी कंपनियों एवं किराया क्रय वित्त कंपनियों के मामले में है। ऋण एवं निवेश कंपनियों के बारे में यह सीमा 20% है।

अपने निजी प्रयोग को छोड़कर अन्य प्रकार की भवन व भूमि में एक कंपनी अपनी स्वाधिकृत निधियों के 10% से अधिक निवेश नहीं कर सकती है। यदि किसी कंपनी के पास इससे अधिक ऐसी परिसंपत्तियाँ हैं तो उन्हें बेचना होगा एवं तीन वर्षों में उच्चतम सीमा दर्शानी होगी।

v) **तरल परिसंपत्तियाँ (Liquid Assets):** गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों को अपनी जमाओं का एक निश्चित प्रतिशत भाग का जमाकर्ताओं के हित को ध्यान में

रखते हुए तरल संपत्तियों में निवेश करना होगा। 2 जनवरी 1998 से कंपनियों के लिए जो जमाएँ स्वीकार करती हैं, तरल परिसंपत्तियों का अनुपात एक समान होगा। यह अनुपात एक अप्रैल 1998 से 12.5% एवं एक अप्रैल 1999 से 15% निर्धारित किया गया था। तरल परिसंपत्तियों का अनुपात केवल सार्वजनिक जमाओं से ही संबंधित होगा।

इन कंपनियों को सरकारी प्रतिभूतियों एवं सरकार द्वारा गारंटीकृत बाण्डों में निवेश करना होगा। इन प्रतिभूतियों को जमाकर्ताओं के भुगतान के लिए या अन्य प्रतिभूतियों के स्थान पर परिवर्तन के लिए या जमाओं में कमी होने पर निकाला जा सकता है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि रिजर्व बैंक ने गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के नियंत्रण के लिए व्यापक विनियामक रूपरेखा तैयार की है। 8802 आवेदन पत्रों में से, जो 25 लाख रुपये के न्यूनतम शुद्ध स्वाधिकृत निधियों के आधार पर पंजीकरण के लिए पात्र थीं, 7555 गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों का पंजीकरण हो चुका है। इनमें से केवल 584 कंपनियों को जनता से जमाएँ स्वीकार करने के लिए अनुमोदित किया गया है। 1030 कंपनियों के आवेदन पत्र निरस्त कर दिए गए हैं। 28676 कंपनियों को जिनकी स्वाधिकृत निधियाँ 25 लाख रुपये से कम थीं, को जनवरी 8, 2000 तक का समय दिया गया था जिससे वे न्यूनतम स्वाधिकृत निधियां के स्तर को प्राप्त कर सकें। इस प्रकार से गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के कार्यकलापों को समेकित व सुदृढ़ करने का कार्य प्रारंभ हो गया है एवं भविष्य में अच्छे परिणामों की अपेक्षा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 के तहत रिजर्व बैंक के निहित अधिकारों को बताइये।

.....

.....

.....

2) यह बताइये कि निम्नलिखित विवरण सही हैं या गलतः

i) ऐसी कपंनियाँ जिनकी स्वाधिकृत निधियाँ 25 लाख रुपये से कम हैं, सार्वजनिक जमाएँ स्वीकार नहीं कर सकती हैं।

ii) नियंत्रण की दृष्टि से गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है।

iii) गैर रेटिंग व कमं रेटिंग वाली ऋण एवं निवेश कंपनियाँ सार्वजनिक जमाएँ स्वीकार करने को अधिकृत नहीं हैं।

iv) गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों को निर्देश दिए गए हैं कि वे अपनी निधियों का 10% से अधिक प्रयोग को छोड़कर अन्य भूमि व भवन में निवेश न करें।

3) क्या गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों को पूँजी पर्याप्तता एवं साख/निवेश के मानदण्ड मानने होंगे? यदि हाँ तो क्यों?

.....

.....

.....

6.6 सारांश

हमने इस इकाई के अंतर्गत विनियामक रूपरेखा का अध्ययन किया है जिसके अंतर्गत भारत में बैंक एवं गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियाँ कार्य करती हैं। इस क्षेत्र में दो नियंत्रक प्राधिकारी हैं: एक, रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, एवं दूसरा, भारतीय प्रतिभूति व विनिमय बोर्ड। उन्हें क्रमशः मुद्रा बाजार व पूंजी बाजार के विकास एवं नियंत्रण का उत्तरदायित्व सौंपा गया है।

रिजर्व बैंक वाणिज्यिक बैंकों, सहकारी बैंकों, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों एवं वित्तीय संस्थाओं का नियंत्रण प्राधिकारी है। इसे भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 एवं बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 के अंतर्गत अधिकार प्रदान किए गए हैं। अपने विवेकाधीन अधिकारों का प्रयोग करते हुए रिजर्व बैंक समय-समय पर इन संस्थाओं को निर्देश जारी करता है। हमने इस इकाई में संस्थावार नियंत्रण रूपरेखा का भी अध्ययन किया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

रिजर्व बैंक वाणिज्यिक बैंकों पर बैंकों के लाइसेंस के संबंध में, शाखाएं खोलने, सहायक कंपनियों की स्थापना करने, प्रदत्त पूँजी एवं तरल परिसंपत्तियों के रख–रखाव आदि के संबंध में बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 के प्रावधानों के अंतर्गत नियंत्रण करता है। रिजर्व बैंक को बैंकों का निरीक्षण, दिशा-निर्देश जारी करने, उच्च प्रबंध एवं उनके द्वारा प्रदत्त ऋण एवं अग्रिमों पर नियंत्रण करने का अधिकार है। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 42 के अधीन बैंकों को रिजर्व बैंक के पास नकदी आरक्षित निधियाँ रखनी पड़ती हैं। रिजर्व बैंक प्राथमिक क्षेत्र को ऋण पूँजी पर्याप्तता अनुपात, निवेश के मानदण्ड, परिसंपत्तियों का वर्गीकरण, आदि के संबंध में दिशा-निर्देश जारी करता है।

सहकारी बैंक, रिजर्व बैंक एवं संबंधित राज्य सरकार के दुहरे नियंत्रण में कार्य करते हैं। रिजर्व बैंक को गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियाँ एवं वित्तीय संस्थाओं के नियंत्रण करने का अधिकार है। रिजर्व बैंक द्वारा इन कंपनियों को जनता से जमाएँ स्वीकार करने के संदर्भ में निर्देश स्वीकृत किए गए हैं। साथ ही गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों एवं वित्तीय संस्थाओं, दोनों को ही विवेकपूर्ण मानदण्ड आदि के संबंध में निर्धारित मानदण्ड भी जारी किए गए हैं।

6.7 शब्दावली

मांग पर/सूचना/सावधि मुद्रा बाजार : मुद्रा बाजार की ये तीन श्रेणियाँ हैं। जब निधियाँ बहुत छोटी अवधि के लिए जैसे एक दिन, दो दिन या ऋणदाता द्वारा मांग पर

पुनर्भुगतान करती होती हैं तो ऐसे लेन-देनों को मांग मुद्रा बाजार के लेन-देन कहा जाता है। सामान्य रूप से बैंक मांग मुद्रा बाजार में प्रतिभागी होते हैं।

जब निधियाँ अल्प सूचना पर या 3 दिन या 7 दिन की सूचना पर चुकानी होती हैं तो इसे सूचना मुद्रा बाजार कहा जाता है। जब निधियाँ अल्प अवधि लेकिन निश्चित अवधि जैसे 15 या 30 दिन के बाद चुकानी होती हैं तो इसे सावधि मुद्रा बाजार कहा जाता है।

आरक्षित नकदी निधि अनुपात : बैंकों को अपनी शुद्ध मांग एवं सावधि देयताओं का एक निश्चित प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास नकद अवशेष के रूप में रखना होता है। कम से कम सांविधिक अपेक्षा 3% है लेकिन रिजर्व बैंक इसे 15% तक बढ़ा सकता है। जून 1, 2002 से प्रभावी यह अनुपात 5% है।

पूँजी पर्याप्तता मानदण्ड : रिजर्व बैंक ने बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं के लिए मानदण्ड निर्धारित किए हैं जिससे वे परिसंपत्तियों की तुलना में स्वयं की पूँजी निधियाँ सृजित कर सकें। ऐसी परिसंपत्तियों की गणना जोखिम समायोजन के आधार पर की जाती है।

साख रेटिंग (ऋण पात्रता मूल्यांकन): साख रेटिंग एक साख मूल्यांकन एजेंसी द्वारा दिया गया प्रतीक है, जो एक कंपनी के ऋण प्रपत्र जैसे बाण्ड, ऋण पत्र, सावधि जमाएँ एवं वाणिज्यिक प्रपत्र आदि की गुणवत्ता, मूलधन की सुरक्षा एवं ब्याज भुगतान की संभावनाओं का प्रतीक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

निवेश मानदण्ड (Exposure Norms) : ये मानदण्ड रिजर्व बैंक द्वारा बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं के लिए निर्धारित किए जाते हैं। इन मानदण्डों के द्वारा एक बैंक, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी या वित्तीय संस्था द्वारा एक ऋणकर्ता या ऋणकर्ताओं के समूह को दिए जाने वाले ऋण या अन्य जोखिम की अधिकतम मात्रा निर्धारित की जाती है। इस मानदण्ड को बैंक या वित्तीय संस्थाओं की शुद्ध स्वाधिकृत निधियों के प्रतिशत द्वारा व्यक्त किया जाता है। इसके द्वारा एक उद्योग के लिए निवेश की मात्रा भी निर्धारित की जाती है। इसका उद्देश्य बैंक द्वारा एक ऋणकर्ता या ऋणकर्ताओं के समूह को अति-उधार देने को हतोत्साहित करना है।

तरल परिसंपत्तियाँ (Liquid Assets) : बैंक अपनी जमा राशियों का एक निश्चित भाग नकदी के रूप में अपने पास या अन्य बैंकों के पास चालू खाते में या रिजर्व बैंक के पास रखते हैं। इसके अतिरिक्त वे श्रेष्ठ प्रतिभूतियों (gilt-edged securities) में भी निवेश करते हैं जो आसानी से नकदी में परिवर्तित की जा सकती है। इन सभी परिसंपत्तियों को बैंक की तरल परिसंपत्तियाँ कहा जाता है।

मुद्रा बाजार (Money Market) : मुद्रा बाजार वित्तीय बाजार का एक भाग है जहाँ अल्पावधि निधियों के लेन-देन किए जाते हैं, अर्थात् निधियाँ ऋणकर्ताओं को अल्प-अवधि के लिए उधार दी जाती हैं।

राष्ट्रीयकृत बैंक (Nationalised Banks) : भारत में 19 बैंक राष्ट्रीयकृत हैं। इनका स्वामित्व भारत सरकार के पास है। गत कुछ वर्षों में इनमें से कुछ बैंकों ने जनता को भी पूँजी निर्गमित की है।

प्राथमिकता क्षेत्र (Priority Sector) : रिजर्व बैंक ने अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों को प्राथमिकता क्षेत्र का नाम दिया है। बैंकों को निर्देश दिए गए हैं कि वे अपनी साख का 40% इन क्षेत्रों को ऋण के रूप में प्रदान करें। इन क्षेत्रों में लघु उद्योग, निर्यात, लघु व्यवसाय, छोटे परिवहन चालक, कृषि एवं स्वनियोजित व्यक्ति संभावित हैं। पहले इन क्षेत्रों को बैंकों द्वारा उपेक्षित किया जाता था।

विवेकपूर्ण मानदण्ड (Prudential Norms) : बैंकों की वित्तीय स्थिति सुधारने एवं उनकी कार्यक्षमता एवं उत्पादकता में वृद्धि करने के उद्देश्य से रिजर्व बैंक ने कुछ सिद्धांत या मानक स्तर निर्धारित किए हैं जो इन बैंकों द्वारा पारित किए जाते हैं। इन मानदण्डों को विवेकपूर्ण मानदण्ड कहा जाता है क्योंकि इनका उद्देश्य विवेकपूर्ण कार्यप्रणाली को बढ़ावा देना है।

पुनर्खरीद परिचालन एवं विपरीत पुनर्खरीद परिचालन सौदे : एक व्यक्ति या संस्था अल्प अवधि के लिए पुनर्खरीद के आधार पर भी उधार ले सकता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि विक्रेता अपनी प्रतिभूतियों को इस शर्त पर बेच सकता है कि वह एक निश्चित अवधि में अपनी प्रतिभूतियों को वापस खरीद लेगा एवं ऋण का पुनर्भुगतान स्वयं कर सकता है या प्रतिभूतियों को बेचकर कर सकता है। ऐसे मामलों में वह उस अवधि के लिए जिसके लिए पैसा लिया गया है, की ब्याज का भुगतान करेगा। इसको पुनर्खरीद दर (Repo Rate) कहते हैं।

"विपरीत पुनर्खरीद" पुनर्खरीद के विपरीत होती है। इसमें उधारदाता इस शर्त पर उधार देता है (या प्रतिभूतियाँ क्रय करता है) कि वह प्रतिभूतियों को पुनः उसी व्यक्ति को (उधारकर्ता) वापस बेच सकता है। उधारकर्ता को प्रतिभूतियां पुनः वापस खरीदनी होंगी एवं उधारदाता को 'विपरीत पुनर्खरीद' दर का भुगतान करना होगा।

DIKSHANJ IAS
Call us @ 7428092240

चयनित साख नियंत्रण (Selective Credit Control): रिजर्व बैंक को चयनित वस्तुओं की प्रतिभूति के आधार पर अग्रिम स्वीकार करने के संबंध में बैंकों को अग्रिम की धनराशि, शर्तें, ब्याज की दर, मार्जिन आदि के बारे में दिशा-निर्देश जारी करने का अधिकार है। ऐसे निर्देशों को चयनित साख नियंत्रण कहा जाता है।

सांविधिक तरलता अनुपात (Satutory Liquid Ratio): रिजर्व बैंक एक बैंक की शुद्ध मांग एवं सावधि देयताओं से चल परिसंपत्तियों का अनुपात निर्धारित करता है। इस अनुपात को सांविधिक चलनिधि अनुपात कहा जाता है। इस समय यह अनुपात 25% है।

6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Varshney P.N.,(1999), *"Indian Financial System and Commercial Banking"*, Sultan Chand and Sons, New Delhi.

Varshney P.N. & Mittal D.K., (2000) : *4th ed. – Indian Financial System"*, Sultan Chand and Sons, Delhi.

Reserve Bank of India : Functions and Working (1983), RBI.

Bhole L.M. (2000) : *"Financial Institutions and Markets"*, Tata McGraw Hills, New Delhi.

Khan M.Y. (2000) : *"Financial Services (Chap. 1)"*, Vikas Publishing House, New Delhi.

Machiraju, H.R. : *(1998) "Indian Financial System"*, Vikas Publishing House, New Delhi.

Reserve Bank of India : Various Reports on Currency and Finance, RBI, Mumbai.

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) i) कंपनी की पृष्ठभूमि एवं वित्तीय स्थिति।

ii) इसके प्रबंध वर्ग के सामान्य लक्षण।

iii) पूँजी संरचना की पर्याप्तता एवं आय की संभावनाएँ।

iv) जनहित पर प्रभाव।

2) i) 1500 करोड़ रुपये

ii) 40%

iii) खंड 35 ए

iv) साख नियंत्रण

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) खंड 6.2 का अवलोकन करें।

बोध प्रश्न 2

1) i) विवरण पत्रिका (Prospectus) जारी करने पर नियंत्रण।

ii) गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों द्वारा जमाएँ प्राप्त करने के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करना।

iii) गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी द्वारा प्रदान किए गए विवरणों की सत्यता/पूर्णता की रिजर्व बैंक द्वारा जाँच करना।

2) i) सही

ii) गलत

iii) सही

iv) सही

3) भाग 6.5 का अवलोकन करें।

इकाई 7 भारत में मुद्रा बाजार

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 मुद्रा बाजार के प्रतिभागी
7.3 भारतीय रिजर्व बैंक
7.3.1 अंतरिम तरलता समायोजन सुविधा (Interim Liquidity Adjustment Facility)
7.3.2 तरलता समायोजन सुविधा (Liquidity Adjustment Facility)
7.4 माँग और अल्प सूचना पर प्रतिदेय राशि (Money at call and short notice)
7.4.1 पूर्ण अंतर बैंक माँग मुद्रा बाजार की ओर कदम
7.5 राजकोषीय बिल (Treasury Bill)
7.5.1 भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह लि. (Discount and Finance House of India Ltd.) तथा ट्रेजरी बिल
7.5.2 वाणिज्यिक विनिमय प्रपत्र (Commercial Exchange Paper)
7.6 जमा प्रमाणपत्र (Certificate of Deposits)
7.7 वाणिज्यिक प्रपत्र (Commercial Papers)
7.8 सारांश
7.9 शब्दावली
7.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.0 उद्देश्य

इस इकाई में भारत में मुद्रा बाजार के प्रतिभागियों एवं उसके प्रपत्रों (instruments) की चर्चा की जाएगी। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- मुद्रा बाजार के अर्थ एवं महत्व की व्याख्या कर सकेंगे,
- मुद्रा बाजार में प्रयोग किए जाने वाले विभिन्न प्रपत्रों की प्रकृति एवं व्यवस्था का विवरण दे सकेंगे, तथा
- मुद्रा बाजार पर नियंत्रक के रूप में रिजर्व बैंक के महत्व की चर्चा कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

गत इकाई में हमने यह जाना कि वित्तीय बाजार देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बृहद रूप में इन बाजारों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है : मुद्रा बाजार एवं पूँजी बाजार। यह वर्गीकरण निधियों में लेन-देन की अवधि के आधार पर किया जाता है। इस इकाई में हम भारत में मुद्रा बाजार के बारे में चर्चा करेंगे। पूँजी बाजार की चर्चा अगली इकाई में की जाएगी। मुद्रा बाजार अल्पावधि निधियों (short

term funds) का बाजार है। यह अवधि एक दिन से एक वर्ष तक हो सकती है। यह बाजार बैंकों, वित्तीय संस्थाओं, फर्म, कंपनीज़ एवं सरकार की भी अल्पावधि एवं अति अल्पावधि की निधियों की आवश्यकता को पूरी करने में सहायता करता है। दूसरी ओर, व्यक्तिगत एवं अन्य बचतकर्ताओं की कम अवधि की अतिरिक्त बचतें इस बाजार के माध्यम से संग्रह की जाती हैं एवं उपरोक्त इकाइयों को प्रयोग के लिए प्रदान की जाती हैं। इस प्रकार मुद्रा बाजार अर्थव्यवस्था में अल्पावधि की तरलता प्रदान कर असंतुलन को दूर करता है। मुद्रा बाजार का विकास किसी देश की प्रगति एवं विकास के लिए एक पूर्व-आवश्यक शर्त होती है।

7.2 मुद्रा बाजार के प्रतिभागी

मुद्रा बाजार में प्रमुख प्रतिभागी जो निधियों की माँग व पूर्ति करते हैं, निम्नलिखित हैं:

i) **भारतीय रिजर्व बैंक :** रिजर्व बैंक भारत में मुद्रा बाजार का नियंत्रक है। केंद्रीय बैंक होने के नाते यह बैंकिंग व्यवस्था में निधियों की कमी होने पर निधियाँ प्रदान करता है एवं निधियों की अधिकता होने पर मुद्रा का संकुचन करता है।

ii) **बैंकें :** वाणिज्यिक बैंक एवं सहकारी बैंक भारतीय मुद्रा बाजार के प्रमुख प्रतिभागी हैं। वे जमाएँ स्वीकार कर लोगों से बचतों का संग्रह करते हैं एवं अल्पावधि के लिए कार्यशील पूँजी की माँग को पूरा करने हेतु व्यवसायिक घरानों को उधार देते हैं। उनकी जमाओं का कुछ अंश मध्यम एवं दीर्घकालीन सरकारी प्रतिभूतियों, कंपनी शेयर्स एवं बाण्डों में निवेश किया जाता है। वे अल्पावधि के लिए राजकोषीय बिलों में भी निवेश कर सरकार को निधियाँ प्रदान करते हैं। वे अल्पावधि की अतिरिक्त निधियों (funds) को मुद्रा बाजार के विभिन्न प्रपत्रों में निवेश करते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

iii) **भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह लिमिटेड (Discount and Finance House of India Ltd-DFHI):** यह मुद्रा बाजार के प्रपत्रों में दो प्रकार से सहायता करता है। इसने दोनों ही अर्थात् सहायक बाजार के विकास एवं मुद्रा प्रपत्रों के विकास में सहायता की है।

iv) **वित्तीय एवं निवेश संस्थाएँ :** ये संस्थाएँ (भारतीय जीवन बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया, सामान्य बीमा कंपनी, विकास बैंक आदि) केवल उधारदाता के रूप में ही माँग पर प्रतिदेय बाजार में प्रतिभागी हो सकती हैं।

v) **कारपोरेटस :** कंपनियाँ बैंकिंग प्रणाली से निधियों की माँग का सृजन करती हैं। ये कंपनियाँ वाणिज्यिक प्रपत्रों के माध्यम से सीधे मुद्रा बाजार से अल्पावधि के लिए निधियाँ जुटाती हैं। वे जनता से जमाएँ स्वीकार करती हैं एवं अंतर-कंपनी जमाओं एवं निवेशों में भी सम्मिलित रहती हैं।

vi) **पारस्परिक निधियाँ (Mutual Funds):** पारस्परिक निधियाँ अपनी अतिरिक्त निधियों को अल्प अवधि के लिए विभिन्न मुद्रा बाजार प्रपत्रों में निवेश करती हैं। वे माँग पर प्रतिदेय बाजार (Call Money Market) में भी प्रतिभागी होते हैं। मुद्रा बाजार पारस्परिक निधियों विशेष रूप से अल्प अवधि के लिए निधियों का संग्रहण करने एवं उन्हें मुद्रा बाजार के प्रपत्रों में निवेश के लिए स्थापित किए गए हैं।

7.3 भारतीय रिजर्व बैंक

केंद्रीय बैंक के रूप में रिजर्व बैंक भारतीय मुद्रा बाजार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। रिजर्व बैंक द्वारा निष्पादित किए जाने वाले बहुत से कार्यों की व्याख्या इकाई 6 में की जा चुकी है। हमें स्मरण है कि रिजर्व बैंक, बैंकों का बैंक तथा केंद्र सरकार एवं राज्य सरकारों के लिए बैंकर्स के रूप में कार्य करता है। यह मुद्रा बाजार में बैंकों को पुनर्वित्तीय सुविधा प्रदान कर एवं आरक्षित निधियों की आवश्यकता द्वारा तरलता का प्रबंधन करता है। आरक्षित नकद निधि अनुपात (CRR) एवं सांविधिक तरलता अनुपात (SLR) बैंकों में तरलता प्रदान करने के प्रमुख तंत्र (tools) हैं। जब बैंकिंग व्यवस्था में अधिक तरलता होती है तो रिजर्व बैंक आरक्षित नकद निधि के अनुपात में वृद्धि द्वारा अतिरिक्त तरलता को कम कर देता है। इसके विपरीत CRR में कमी द्वारा अतिरिक्त तरलता में वृद्धि भी की जा सकती है।

सांविधिक तरलता (SLR) में बढ़ोत्तरी द्वारा बैंकों के पास निधियाँ कम कर दी जाती हैं ताकि उन अतिरिक्त निधियों को सरकारी या अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में निवेशित किया जा सके। इससे बैंकों की तरलता कम हो जाती है।

रिजर्व बैंक ने पूर्व में विभिन्न योजनाओं के माध्यम से बैंकों को पुनर्वित्त सुविधाएँ प्रदान की हैं। बैंकिंग क्षेत्र में सुधारों पर नरसिम्हम समिति 1998 ने सिफारिश की थी कि रिजर्व बैंक को तरलता समायोजन सुविधा (Liquidity Adjustment Facility-LAF) के माध्यम से बाजार को प्रोत्साहित करना चाहिए। रिजर्व बैंक ने 5 जून 2000 से तरलता समायोजन सुविधा प्रारंभ की। इस योजना ने 15 अप्रैल 1997 से जारी अंतरिम चलनिधि सुविधा का स्थान ले लिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.3.1 अंतरिम तरलता समायोजन सुविधा (Interim Liquidity Adjustment Facility - ILAF)

ILAF सुविधा के तहत तरलता की व्यवस्था निम्नलिखित तत्वों को मिलाकर की जाती थी :

i) पुनर्खरीद परिचालन (Repos)

ii) पुनर्वित्त निर्यात साख (Export credit refinance)

iii) समर्थित ऋण सुविधाएँ (Collateralised lending facilities)

iv) एक निश्चित ब्याज दर पर खुले बाजार की क्रियाएँ

पुनर्खरीद कुछ प्रतिभूतियों के आधार पर अल्पावधि के लिए उधार लेने का तरीका है। इसमें उधारकर्ता प्रतिबद्धता के साथ यह वायदा करता है कि वह उसी प्रतिभूति को जिसके आधार पर ऋण ले रहा है, एक निश्चित अवधि के बाद पूर्व निर्धारित ब्याज पर पुनः खरीद लेगा या वापस लेगा। दोनों कीमतों में अंतर उधार ली गई राशि पर ब्याज समझा जाता है।

विपरीत पुनर्खरीद उपरोक्त की विपरीत प्रक्रिया है जिसमें उधारदाता जिस प्रतिभूति के आधार पर उधार देता है, को उधारकर्ता से निर्धारित मूल्य पर वापस लेने का वायदा करता है। इस प्रकार विपरीत पुनर्खरीद द्वारा रिजर्व बैंक मुद्रा बाजार व्यवस्था में तरलता का संकुचन करता है।

समर्थित ऋण सुविधाएँ : इस सुविधा में बैंकों को 1997-98 में पखवाड़े के औसत जमाओं के 0.25% तक निधियाँ प्रदान की गयी थीं। यह सुविधा दो सप्ताह के लिए बैंक दर पर प्रदान की गयी थी। इसके साथ ही बैंकों को अतिरिक्त समर्थित ऋण सुविधाओं के रूप में उतनी ही धनराशि की समान निधियाँ बैंक दर से 2% अधिक ब्याज दर पर प्रदान की गयी थीं। उन निधियों को 2 सप्ताह से अधिक के लिए भी 2% का दांडिक ब्याज (Penal interest) पर प्रयोग किया जा सकता था। उसी प्रकार साधारण व्यापारियों (Dealers) को प्रथम स्तर की तरलता सहायता (बैंकों को समर्थित ऋण सुविधा के समान की धनराशियाँ) 90 दिन के लिए सरकारी प्रतिभूतियों के समर्थन के आधार पर प्रदान की गयी थी। साथ ही व्यापारियों को दूसरे स्तर की अतिरिक्त सहायता (अतिरिक्त समर्थित ऋण सुविधाओं के समान) दो सप्ताह के लिए बैंक दर से 2% अधिक ब्याज दर पर प्रदान की गयी थी। इस प्रक्रिया के द्वारा रिजर्व बैंक ने अंतरिम चलनिधि समायोजन सुविधा के अंतर्गत तरलता का प्रबंध किया जो बाद में पूर्णरूप से चलनिधि समायोजन सुविधा के रूप में परिवर्तित कर दी गयी।

7.3.2 तरलता समायोजन सुविधा (Liquidity Adjustment Facility)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यह सुविधा 5 जून 2000 से प्रारंभ की गयी जो निम्नलिखित तीन चरणों में पूरी की जाती है:

i) बैंकों के लिए अतिरिक्त समर्थित ऋण सुविधाएँ एवं साधारण व्यापारियों के लिए द्वितीय स्तर की तरलता सहायता का स्थान जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, परिवर्तनीय विपरीत पुनर्खरीद नीलामी (Variable reverse repo auctions) द्वारा ले लिया गया।

ii) दूसरे चरण में बैंकों के लिए समर्थित ऋण सुविधा एवं साधारण व्यापारियों को प्रथम स्तर की सहायता को विपरीत पुनर्खरीद नीलामी के आधार पर परिवर्तनीय ब्याज दरों पर प्रतिस्थापित किया जाएगा।

iii) तीसरे चरण में, यदि आवश्यक हुआ तो तरलता समायोजन सुविधा को एक दिन में ही अलग-अलग समयों पर चलाया जाएगा।

इस प्रकार दूसरे चरण के पश्चात् खुले बाजार की क्रियाओं के साथ पुनर्खरीद एवं विपरीत पुनर्खरीद अल्प अवधि के मुद्रा बाजार में तरलता को प्रभावित करने के मुख्य प्रपत्र हो सकेंगे। वर्तमान में पुनर्खरीद या विपरीत पुनर्खरीद नीलामी शनिवार के दिन को छोड़कर प्रतिदिन के आधार पर की जाती है। ऐसी नीलामी शुक्रवार के दिन एवं अवकाश के पूर्व दिन को छोड़कर एक दिन के अंतर पर की जाती हैं। रिजर्व बैंक द्वारा बोलियाँ (Bids) आमंत्रित की जाती हैं जिन्हें आंशिक रूप में या पूर्णरूप से स्वीकार किया जाता है।

पुनर्खरीद एवं विपरीत पुनर्खरीद दोनों ही के संबंध में ब्याज दरों का निर्धारण उच्चतम औसत सीमा के आधार पर होता है जो समान मूल्य पर नीलामी द्वारा प्राप्त किया जाता है। अगस्त 2000 में पुनर्खरीद नीलामी 3 से 7 दिन के बीच प्रारंभ की गयी।
जब बाज़ार में तरलता का रुख होता है तो रिजर्व बैंक की पुनर्खरीद नीलामी पर काफी मात्रा में बोलियाँ होती हैं। पुनर्खरीद ब्याज दर एक दिवसीय ब्याज दर होती है। मार्च 2002 के शुरुआत में रिजर्व बैंक ने एक दिन के पुनर्खरीद दरों की उच्चतम औसत सीमा 6.5% से घटाकर 6% कर दी थी। इस प्रकार पुनर्खरीद ब्याज दर माँग पर प्रतिदेय दरों के लिए न्यूनतम ब्याज दर (floor rate) मानी जाती है। जून 27, 2002 से इस ब्याज दर को पुनः घटाकर 5.75% कर दिया गया।

रिजर्व बैंक विपरीत पुनर्खरीद नीलामी द्वारा बाजार में तरलता प्रदान करता है। तरलता समायोजन का सबसे प्रमुख लाभ यह है कि समायोजन की मात्रा एवं ब्याज दरों का निर्धारण व्यवस्था में लेनदेनों की आवश्कयता के आधार पर लोचपूर्ण (Flexible) होंगे। इसके साथ ही उपरोक्त सुविधा के तहत रिजर्व बैंक द्वारा उधार दी जाने वाली निधियों का मुख्य प्रयोजन दिन प्रतिदिन तरलता में आए माँग एवं पूर्ति के अंतर से उत्पन्न अंतराल (gap) को दूर करना होता है। यह भी सुनिश्चित किया जाता है बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाएँ अपनी सामान्य वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने में इन निधियों का उपयोग न करें।

बोध प्रश्न 1

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) मुद्रा बाजार से आप क्या समझते हैं? इस बाजार में प्रतिभागी कौन होते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) रिजर्व बैंक द्वारा कार्यान्वित की गयी तरलता समायोजन सुविधा का महत्व तथा इसकी विशेषताएँ क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) निम्नलिखित में अंतर स्पष्ट कीजिए?

i) मुद्रा बाजार एवं पूँजी बाजार

.....

.....

.....

.....

ii) पुनर्खरीद एवं विपरीत पुनर्खरीद

.....

.....

.....

7.4 अल्पसूचना एवं माँग पर प्रतिदेय धनराशि (Money at Call and Short Notice)

अल्पसूचना एवं माँग पर प्रतिदेय बाजार मुद्रा बाजार का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसमें अल्प अवधि के लेन-देन होते हैं जो माँग पर या अल्पसूचना पर प्रतिदेय (repayable) होते हैं। प्रारंभ में वाणिज्यिक बैंक इस बाजार के प्रतिभागी होते थे। इसलिए इस बाजार को अंतर बैंक माँग पर देय बाजार कहा जाता था। अंतर बैंक ऋण-ग्रहण (borrowings) उधारियों की आवश्यकता इसलिए हुयी कि कुछ बैंकों के पास किसी समय विशेष पर अल्प अवधि की तरलता की कमी रहती थी जबकि अन्य बैंकों के पास इसी समय विशेष पर तरलता का आधिक्य रहता था। ये आधिक्य राशि वाले बैंक अल्प अवधि अर्थात् एक दिन या कुछ दिन के लिए जरूरतमंद बैंकों को निधियाँ उपलब्ध कराते थे। इससे उनको आय भी प्राप्त होती थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

गत दो दशकों में रिजर्व बैंक ने अन्य वित्तीय संस्थाओं को भी केवल उधारदाता के रूप में भाग लेने के लिए माँग पर देय मुद्रा बाजार में प्रवेश की अनुमति प्रदान की है। इन संस्थाओं में भारतीय जीवन बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया, भारतीय सामान्य बीमा निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक एवं पारस्परिक निधियाँ सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक ने उन सभी इकाइयों को जिनके पास बड़ी मात्रा में उधार देने के श्रोत हों पर जिन्होंने बैंकों से उधार न लिया हो, माँग पर प्रतिदेय मुद्रा बाजार में प्राथमिक व्यापारियों के माध्यम से ऋण उधार देने की अनुमति दी है। भारतीय मितीकारा (Discounting) एवं वित्त गृह माँग मुद्रा बाजार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है तथा ऋण एवं ऋणी दोनों ही रूप में भाग लेता है। इसकी अग्रणी भूमिका का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि इसकी माँग सूचना एवं सावधि मुद्रा बाजार में कुल उधार धनराशियाँ 2000-01 में रुपये 657094 करोड़ थी एवं उससे पूर्व के वर्ष में उधार की मात्रा 6,77,922 करोड़ रुपये थी। यह दो प्रकार की दर प्रस्तावित करता है जिनके बीच बहुत मामूली अंतर होता है - पहली बोली दर (Bid-Rate), दूसरी विक्रय प्रस्ताव दर (other Rate)। उदाहरण के लिए 29 नवंबर 2001 को बोली दर 6.70% थी जबकि प्रस्ताव दर (offer rate) 6.40% थी।

मई 1984 तक माँग दरें (call rates) भारतीय बैंक संघ द्वारा दर की उच्चतम सीमा निर्धारण द्वारा नियंत्रित की जाती थीं। उसके बाद से ये दरें अब बाजार में उपलब्ध बैंक

द्वारा स्वीकार्य करने योग्य (Bankable) निधियों की माँग एवं पूर्ति के आधार पर की जाती हैं। व्यवहार में ये माँग दरें बहुत अस्थिर होती हैं - जब तरल (नकद) राशि कम होती है तो माँग दरें काफी ऊँची हो जाती हैं एवं इसके विपरीत पर्याप्त निधियों की आपूर्ति होने पर माँग दर (call rate) कम हो जाती है। भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह द्वारा घोषित किए जाने वाले माँग ऋण दरों की भी यही स्थिति है। उदाहरण के लिए 20 अप्रैल 2000 को समाप्त होने वाले पखवाड़े में न्यूनतम माँग दर 0.5% थी जबकि 29 जून, 2000 को समाप्त होने वाले पखवाड़े में अधिकतम दर 35% तक पहुँच गयी थी।

7.4.1 पूर्ण अंतर बैंक माँग मुद्रा बाजार की ओर कदम

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, बहुत सी गैर-बैंकिंग इकाइयों जैसे - वित्तीय संस्थाएँ एवं कारपोरेट (जो माँग मुद्रा बाजार में प्राथमिक व्यापारियों के माध्यम से उधार देते है) को माँग एवं अल्प सूचना मुद्रा बाजार में उधार देने की अनुमति दी गयी थी। नरसिम्हम समिति की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए रिजर्व बैंक ने पूर्ण अंतर बैंक (प्राथमिक व्यापारियों सहित) माँग/सूचना मुद्रा बाजार की ओर बढ़ने का निर्णय लिया है। रिजर्व बैंक ने अप्रैल 2001 की साख नीति में माँग मुद्रा बाजार से इन संस्थाओं को धीरे-धीरे हटाने के कदम उठाए हैं। कारपोरेटस को प्राथमिक व्यापारियों के माध्यम से माँग बाजार के लेन-देनों को कम करने के लिए 30 जून 2001 तक की अनुमति प्रदान की गयी थी। गैर-बैंकिंग संस्थाएँ धीरे-धीरें चार चरणों में माँग बाजार में अपनी प्रतिभागिता को कम करेंगे। 5 मई 2001 से गैर-बैंकों को उनकी दैनिक औसत ऋण राशियों की 85% भाग को माँग बाजार में उधार देने की स्वीकृति प्रदान की गयी है। 2000-2001 के दौरान उनकी दैनिक औसत उधार राशियों का 70%, 40%, 10% एवं 0% तक कम किया जाएगा। इसकी प्रभावी तिथियाँ रिजर्व बैंक द्वारा तय की जाएँगी। गैर-बैंकों को मुद्रा बाजार से हटाने से बाजार में अस्थिरता के कम होने की संभावना है। इसके स्थान पर पुनर्खरीद बाजार को विकसित करने का इरादा है जिससे कि गैर बैंकें अपनी अतिरिक्त निधियों को वहाँ नियोजित कर सकें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

29 अप्रैल 2002 को घोषित अपनी साख नीति में रिजर्व बैंक ने माँग/सूचना मुद्रा-बाजार से बैंकों की निर्भरता को कम करने का निर्णय लिया है। इसके लिए निम्न सीमाएँ प्रस्तावित की गयी हैं।

i) माँग/सूचना मुद्रा बाजार में वाणिज्यिक बैंकों की दैनिक उधारियाँ उनके गत वित्तीय वर्ष की स्वाधिकृत निधियों की 25% तक ही प्रतिबंधित की गयी हैं।

ii) माँग/सूचना मुद्रा बाजार में उनके दैनिक उधार लेने की सीमा को उनकी गत वित्तीय वर्ष की (मार्च के अंत में) स्वाधिकृत निधियों (owned funds) का 100% या कुल जमाओं का 2% , दोनों में जो ज्यादा होगा, तक सीमित किया गया है। इसको अगस्त 2002 से क्रियान्वित किया जाएगा।

7.5 राजकोषीय बिल

ट्रेजरी बिल, भारत सरकार द्वारा अल्पावधि के लिए उधार लेने का प्रपत्र है। यह प्रतिज्ञा पत्र (Promissory note) के रूप में भारत सरकार की ओर से रिजर्व बैंक द्वारा निर्गमित किया जाता है। ट्रेजरी बिल जारी करने की आवश्यकता इसलिए होती है कि सरकार की प्राप्तियाँ समयबद्ध (Periodic) होती हैं जबकि सरकारी व्यय निरंतर किए जाते हैं। सरकार को करों की प्राप्ति तिमाही अंतराल पर होती है जबकि सरकार को व्यय दैनिक या मासिक आधार पर करने होते हैं। अतएव सरकारी प्राप्तियों एवं व्ययों में समयांतर (time gap) के असंतुलन को दूर करने के लिए सरकार ट्रेजरी बिल के आधार पर अल्प अवधि के लिए ऋण उधार लेती है।

ट्रेजरी बिल विभिन्न परिपक्वता अवधि के लिए जारी किए जाते हैं। 14 मई, 2001 तक इन बिलों की अवधि 14 दिन, 91 दिन, 182 दिन एवं 365 दिन थी। परंतु 14 मई, 2001 के बाद 14 दिन एवं 182 दिनों के ट्रेजरी बिलों की नीलामी समाप्त कर दी गयी है। ट्रेजरी बिल नीलामी के द्वारा बिक्री किए जाते हैं। 91 दिवसीय ट्रेजरी बिल की नीलामी साप्ताहिक आधार पर की जाती है जबकि 364 दिन के ट्रेजरी बिलों की नीलामी पखवाड़े के आधार पर होती है। रिजर्व बैंक ट्रेजरी बिल नीलामी की धनराशि को भी अधिसूचित करता है। 14 एवं 91 दिवसीय ट्रेजरी बिलों की नीलामी की अधिसूचित धनराशि 100 करोड़ रुपये है। 364 दिवसीय ट्रेजरी बिलों की अधिसूचित धनराशि 2000-01 में 500 करोड़ से बढ़ाकर 750 करोड़ रुपये कर दी गयी थी एवं 2002-03 की अवधि में नीलामी के लिए यह धनराशि पुनः बढ़ाकर 1000 करोड़ रुपये कर दी गयी है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोली की उच्चतम दर निर्धारित करने के पश्चात् रिजर्व बैंक कुल प्राप्त नीलामी में से अधिसूचित धनराशि तक की नीलामियों को स्वीकार करता है। कम धनराशि की बोली भी स्वीकार की जा सकती है। ऐसे मामलों में शेष धनराशि (गैर अभिदत्त राशि - Unsubscribed Amount) रिजर्व बैंक द्वारा सौंपी जाती है। उच्चतम मूल्य के आधार पर ट्रेजरी बिल पर आय की गणना की जाती है। उदाहरण के लिए 26 दिसंबर 2000 को 14 दिवसीय ट्रेजरी बिल की नीलामी में 18 बोलियाँ (bids) प्राप्त की गयी थीं लेकिन उनमें से केवल 30 करोड़ रुपये की धनराशि की 5 बोलियाँ ही स्वीकृति की गयी थी। इन बोलियों की उच्चतम सीमा मूल्य 99.68 रुपये था जिस पर 8.37% आय प्राप्ति हुई थी जो पूर्व में हुयी नीलामी की आय के बराबर थी। इस प्रकार 70 करोड़ रुपये रिजर्व बैंक को सौंपे गए। ट्रेजरी बिल पर आय (yiled) मूल्य के उच्चतम स्तर पर निर्भर करती है। जैसा कि तालिका 7.1 में दर्शाया गया है, वित्तीय वर्ष 2001-2002 में ट्रेजरी बिलों पर प्राप्त आय में उल्लेखनीय कमी आयी है।

तालिका 7.1

ट्रेजरी बिल पर आय

माह	364 दिवसीय बिल		91 दिवसीय बिल	
	2000-01	2001-02	2000-01	2001-02
अप्रैल	9.27	8.83	8.05	8.6
मई	9.15	8.33	8.46	7.65

माह	364 दिवसीय बिल		91 दिवसीय बिल	
	2000-01	2001-02	2000-01	2001-02
जून	9.24	7.83	8.91	7.26
जुलाई	9.77	7.37	8.86	7.07
अगस्त	10.81	7.22	10.29	6.91
सितम्बर	10.85	7.21	10.17	7.01
अक्टूबर	10.46	7.05	9.67	6.86
नवम्बर	10.15	6.75	9.08	6.71
दिसम्बर	10.02	7.13	8.90	6.89

स्त्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 2001-02

7.5.1 भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह तथा ट्रेजरी बिल

यह रिजर्व बैंक द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक एवं अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं के साथ संयुक्त रूप से मिलकर स्थापित किया गया था। इसकी स्थापना मार्च 8, 1988 को कंपनी अधिनियम 1956 के अधीन की गयी थी एवं 25 अप्रैल 1988 से इसने व्यवसाय प्रारंभ कर दिया। इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य सक्रिय मुद्रा बाजार के विकास द्वारा मुद्रा बाजार के विभिन्न खण्डों को एकीकृत कर अल्पावधि के तरलता असंतुलन को दूर करना था। भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह की अंश पूंजी 200 करोड़ रुपये है जो रिजर्व बैंक, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं द्वारा अभिदत्त (subcribed) की गयी है। इसकी क्रियाओं में निम्नलिखित सम्मिलित हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

क) **ट्रेजरी बिल के सौदे** : जैसा कि ऊपर बताया गया है, ट्रेजरी बिल भारत सरकार की ओर से रिजर्व बैंक द्वारा जारी किए जाते हैं। भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह नियमित रूप से उनमें भाग लेता है। इसके माध्यम से ट्रेजरी बिलों की बिक्री की जाती है। यह ऐसे ट्रेजरी बिलों के लिए क्रय/विक्रय के मूल्य प्रस्तावित कर बाजार प्रदान करता है।

ख) **अल्प अवधि के वाणिज्यिक बिलों की पुनर्कटौती** : भारतीय मितीकारा एव वित्त गृह ऐसे वाणिज्यिक बिलों को तरलता प्रदान करता है जो वाणिज्यिक बैंकों या वित्तीय संस्थाओं द्वारा पहले से ही भुना लिए गए हैं। इसके लिए यह प्रति पखवाड़े बोली (Bid) की एवं पुनर्कटौती दरों की घोषणा करता है।

ग) **अंतर-बैंक माँग मुद्रा, सूचना मुद्रा एवं सावधि जमा बाजार में प्रतिभागिता** : रिजर्व बैंक ने भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह को अंतर-बैंक मांग बाजार में निधियों के ऋणदाता एवं ऋणी दोनों ही रूपों में प्रतिभागिता के लिए अनुमति दी है। यह निधियों को एक दिन से 14 दिनों की अवधि के लिए उधार ले या दे सकता है।

घ) **वाणिज्यिक प्रपत्र, जमा प्रामण-पत्र एवं सरकारी प्रतिभूतियों के सौदे** : भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह वाणिज्यिक प्रपत्र एवं जमा प्रमाण पत्रों के संबंध में बोली दर प्रस्तावित करता है। **बोली एक बट्टे की दर है** जिस पर यह बाजार से जमा प्रमाण-पत्र/वाणिज्यिक प्रपत्रों को बाजार से खरीदता है। यह सरकारी प्रतिभूति की नीलामी में भी प्रतिभागी होता है।

भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह ट्रेजरी बिल सहित मुद्रा बाजार प्रपत्रों में सौदा कर मुद्रा बाजार में तरलता प्रदान करता है। यह प्राथमिक (Primary) एवं सहायक (Secondary) दोनों ही बाजारों में ट्रेजरी बिल के सौदे करता है। वित्तीय वर्ष 2000-01 में इसके द्वारा बिलों के लिए किए गए सौदों को निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका-2

भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह के ट्रेजरी बिलों का पण्यावर्त (Turnover)

(रुपये करोड़ में)

क) प्राथमिक बाजार में पण्यावर्त	2410.98
i) नीलामियों की खरीद (सौंपे गए सौदों को मिलाकर)	2186.43
ii) परिपक्वताएँ	224.55
ख) सहायक बाजार में पण्यावर्त	22082.08
i) एकमुस्त खरीद (outright Purchase)	3946.52
ii) पुनर्खरीद (Repos)	18135.56
कुल पण्यावर्त (अ+ब)	24493.06

DIKSHANT IAS
Call us @ 7428092240

भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह ट्रेजरी बिलों के सभी नीलामियों में भाग लेता है। प्रत्येक ट्रेजरी बिल के लिए न्यूनतम बोली निर्धारित की जाती है। वर्ष 2000-01 में न्यूनतम वायदे (Commitment) का स्तर 18% निश्चित किया गया था जबकि गत वर्ष में यह 15% था। इस वर्ष अर्थात् 2000-01 में इसने (DFHI) 42.11% की सफलता प्राप्त की थी जो 18% के न्यूनतम निर्धारित वायदे से काफी ज्यादा थी। इसने इस वर्ष ट्रेजरी बिलों की हामीदारी (underwirt) की शुल्क के रूप में आय का अर्जन किया। जून 2000 से रिजर्व बैंक ने इस शुल्क के भुगतान पर रोक लगा दी है।

भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह (DFHI) के ट्रेजरी बिलों का सहायक बाजार में पण्यावर्त (Trunover - खरीद एवं बिक्री) में दोनों ही प्रकार के सौदे अर्थात् एकमुश्त खरीद एवं पुनर्खरीद सम्मिलित हैं। ट्रेजरी बिलों के पुनर्खरीद के क्रय/विक्रय सौदों में यह शर्त रहती है कि क्रेता/विक्रेता मितीकारा गृह से ट्रेजरी बिलों को पूर्व निर्धारित मूल्य पर आने वाले दिनों में बेचेगा या खरीदेगा। इसके लिए मितीकारा गृह दो प्रकार के मूल्य प्रदान करता है : एक बोली (Bid) के लिए एवं दूसरा विक्रय प्रस्ताव (Offer) के लिए। 30 नवंबर 2001 को ये दरें क्रमशः 6.9% एवं 6.85 प्रतिशत थी जो दोनों के बीच बहुत कम अंतर को दर्शाते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) माँग मुद्रा बाजार से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

2) ट्रेजरी बिल क्यों और किसके द्वारा जारी किए जाते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) भारत में ट्रेजरी बिलों के लिए सहायक बाजार को विकसित करने में भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह की भूमिका की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

7.5.2 वाणिज्यिक विनिमय प्रपत्र (Commercial Bill of Exchange)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

वाणिज्यिक विनिमय बिल वास्तविक व्यापारिक लेन-देनों की ज़रूरतों से उत्पन्न होते हैं। ये बिल वस्तु के विक्रेता द्वारा जहाँ वस्तुएँ साख पर बिक्री की जाती हैं, क्रेता के ऊपर लिखे जाते हैं। जब ये बिल माँग पर या क्रेता के समक्ष प्रस्तुत करने पर देय होते हैं तो ऐसे बिलों को माँग बिल कहा जाता है। वस्तुओं का क्रेता बिल का अदाकर्ता (Drawee) होता है। दूसरी ओर, ऐसे बिल जो एक विशेष अवधि के बाद देय होते हैं, जैसे 30, 60 या 90 दिन, मियादी बिल (Uasance Bill) कहलाते हैं। ऐसे बिलों के लिए अदाकर्ता की स्वीकृति आवश्यक है। अदाकर्ता बिल स्वीकार कर बिल का देय तिथि पर भुगतान करने की सहमति प्रदान करता है। अतः परिपक्वता तिथि पर बिल के भुगतान का भरोसा रहता है। अतएव ये बिल स्वभाव से स्वयंमेव चुकौती (Self-Liquidating) वाले होते हैं।

बिल का जारीकर्ता (Drawer अर्थात् वस्तुओं का विक्रेता) सामान्यतः बिल को वाणिज्यिक बैंक से भुनाता है। बिल भुनाने का तात्पर्य यह है कि बिल को बैंक के पक्ष में पृष्ठांकित (endorsed) किया जाता है। बैंक कटौती (Discount) अर्थात् बिल की अवधि के लिए ब्याज की धनराशि काटकर बिल के जारीकर्ता को शेष धनराशि का भुगतान कर देता है। अतः जारीकर्ता को तुरंत ही बिल का भुगतान प्राप्त हो जाता है। कटौती करने वाला बैंक भुनाने के बाद देय तिथि पर बिल के अदाकर्ता या स्वीकारकर्ता से बिल की धनराशि को वसूल कर लेता है। इसके पश्चात् बिल की देयता समाप्त हो जाती है।

वाणिज्यिक विनिमय बिल हस्तान्तरणीय (negotiable) प्रपत्र होते हैं अर्थात् उन्हें परिपक्वता की अवधि तक कितनी भी बार हस्तान्तरित किया जा सकता है। जब कभी

बिल को भुनाने वाला बैंक तरलता की कमी महसूस करता है तो वह बिल का हस्तान्तरण किसी अन्य बैंक/वित्तीय संस्था या रिजर्व बैंक के पक्ष में कर सकता है एवं पुनर्कटौती व्ययों के काटने के पश्चात् बिल का भुगतान प्राप्त कर सकता है। इस प्रक्रिया को वाणिज्यिक बिलों की पुनर्कटौती (re-discounting) कहा जाता है एवं इसे बिल की परिपक्वता की तिथि तक कई बार किया जा सकता है।

रिजर्व बैंक ने बिल पुनर्कटौती की एक योजना 1970 में प्रारंभ की थी। इस योजना के तहत रिजर्व बैंक या किसी वाणिज्यिक बैंक/वित्तीय संस्था/निवेश संस्था/पारस्परिक निधि द्वारा बिलों की पुनर्कटौती की जाती है। लेकिन इसमें महत्वपूर्ण पूर्व शर्तें ये हैं:

i) बिल वास्तविक व्यापारिक लेन-देनों के फलस्वरूप लिखा गया हो,

ii) क्रेता के बैंक द्वारा या तो अकेले या संयुक्त रूप से स्वीकार किया गया हो, एवं

iii) बिल की परिपक्वता की अवधि 90 दिन से अधिक नहीं होनी चाहिए।

इस प्रकार वाणिज्यिक विनिमय बिल एक ऐसा प्रपत्र (Instrument) है जिसके द्वारा बैंक/वित्तीय संस्थाएँ/पारस्परिक निधियाँ अपनी अतिरिक्त निधियों को कम अवधि के लिए जितना वे चाहें, रख सकती हैं। इस प्रकार वित्तीय प्रणाली में तरलता असंतुलनों को दूर किया जा सकता है या कम किया जा सकता है। रिजर्व बैंक ने पहले बहुत से कदम उठाए हैं लेकिन भारत में बिल आहरण (Drawing bills) की प्रक्रिया उतनी प्रचलित नहीं हो पायी है। इसका मुख्य कारण यह है कि स्वीकारकर्ता को पूर्व शर्त के रूप में देय तिथि पर भुगतान अवश्य करना पड़ता है। 31 मार्च 2001 को भारत में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा क्रय किए एवं भुनाए गए बिलों की मात्रा उनकी कुल संपत्तियों की मात्रा (50224 करोड़) का केवल 3.88% थी। लेकिन वाणिज्यिक बैंकों द्वारा पुनर्कटौती किए गए बिलों की विभिन्न वित्तीय संस्थाओं की अदत्त राशि 31 मार्च 2001 को 1013 करोड़ रुपये थी। इससे यह स्पष्ट है कि अन्य वित्तीय संस्थाओं के साथ पुनर्भुनाए गए बिलों की मात्रा का स्तर सीमित है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.6 जमा प्रमाण-पत्र

जमा प्रमाण-पत्र एक बैंक या वित्तीय संस्था के पास जमा की गयी धनराशि की रसीद है। यह सावधि जमा रसीद से दो प्रकार से भिन्न है। पहली बात तो यह है कि यह बड़ी धनराशि के लिए जारी की जाती है एवं दूसरे यह स्वतंत्र रूप से स्थांतरणीय है। रिजर्व बैंक ने जमा प्रमाण पत्र योजना की घोषणा मार्च 1989 में की थी। इस योजना की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

i) जमा प्रमाण पत्र अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों (क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को छोड़कर) एवं अखिल भारतीय विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं जैसे भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम, भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक विनिवेश बैंक एवं भारतीय निर्यात-आयात बैंक द्वारा जारी किए जा सकते हैं।

ii) जमा प्रमाण पत्र व्यक्तियों, संघों, कंपनियों एवं ट्रस्ट फण्डों को जारी किए जा सकते हैं।

iii) जमा प्रमाण पत्र प्रारंभिक 15 दिन की समयबंदी (lock-in-period) के बाद स्वतंत्र रूप से पृष्ठांकन (endorsement) एवं सुपुर्दगी द्वारा स्थांतरित किए जा सकते हैं। इसके बाद उन्हें उपरोक्त प्रतिभागियों या भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह को विक्रय किया जा सकता है।

iv) बैंकों द्वारा जारी किए गए प्रमाण-पत्रों की परिपक्वता अवधि 3 माह से 12 माह तक की सीमा में हो सकती है। लेकिन विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं द्वारा जारी किए गए जमा प्रमाण-पत्रों की सीमा 1 से 3 वर्ष की सीमा में हो सकती है।

v) जमा प्रमाण-पत्र अंकित मूल्य से बट्टे (Discount) पर जारी किए जाते हैं।

vi) वर्तमान में जमा प्रमाण-पत्रों के माध्यम से एक बैंक द्वारा प्राप्त की गयी धनराशि की कोई सीमा नहीं है। हालांकि प्रारंभ में ऐसी सीमा बैंकों की पखवाड़े के सकल औसत जमाओं से संबंधित की गयी थी।

vii) जमा प्रमाण पत्र न्यूनतम 5 लाख रुपये की धनराशि (25 लाख से घटाकर कम की गयी है) में जारी किए जा सकते हैं।

viii) एक निवेशक को जारी किए गए जमा प्रमाण पत्र का न्यूनतम आकार 5 लाख रुपये है एवं (अक्टूबर 1997 से ऐसा प्राविधान किया गया है कि) उसके बाद वे एक लाख के बहुविध (multiple) में जारी किए जा सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ix) 30 जून 2002 से बैंक एवं वित्तीय संस्थाएँ जमा प्रमाण पत्रों को डिमैट के रूप (dematerialised form) में ही जारी कर सकती हैं। अक्तूबर 2002 तक विद्यमान जमा प्रमाण पत्रों को डिमैट के रूप में परिवर्तित करना होगा।

जमा प्रमाण पत्र कंपनियों को अपनी अल्प अवधि की अतिरिक्त निधियों को निवेश करने का एक अच्छा एवं लोकप्रिय अवसर प्रदान करता है क्योंकि जमा प्रमाण पत्र में निवेश जोखिम मुक्त हैं एवं इन पर मिलने वाली ब्याज ट्रेजरी बिल एवं सावधि जमाओं से अधिक होती है। इसके अतिरिक्त वे काफी तरल होते हैं। जारीकर्ता बैंक के लिए जमा प्रमाण पत्र भारी मात्रा में निधियाँ जुटाने का एक दूसरा श्रोत है।

अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की जमा प्रमाण पत्र की अदत्त धनराशि 29 मार्च 1996 को समाप्त हुए पखवाड़े में 16316 करोड़ रुपये से घटकर 28 मार्च 1997 को समाप्त हुए पखवाड़े में 12134 करोड़ रुपये के स्तर पर पहुंच गयी थीं। निधियों की माँग के अभाव में एवं ब्याज दरों के सामान्य रूप से कम होने के कारण जमा प्रमाण पत्रों की बट्टा दरों (discount rates) की सीमा में काफी कमी आयी है। 29 मार्च 1996 को समाप्त हुए पखवाड़े में बट्टा दरें 12 प्रतिशत से 22.25 प्रतिशत के बीच थीं जो 28 मार्च 1997 को समाप्त हुए पखवाड़े में घटकर 7 प्रतिशत से लेकर 15.75 प्रतिशत हो गयीं एवं पुनः 12 सितंबर 1997 को समाप्त हुए पखवाड़े में ये दरें 7.30 प्रतिशत से लेकर 12.50 प्रतिशत की सीमा में रही हैं।

इसके बाद के वर्षों में जमा प्रमाण पत्रों की अदत्त जमा राशियों में निरंतर कमी आयी है। 5 मई 2000 को समाप्त होने वाले पखवाड़े में जमा प्रमाण पत्रों की शेष धनराशि कम होकर 14584 करोड़ हो गयी। उसके पश्चात् इनमें हल्का-सा उछाल आया एवं 20 अक्तूबर 2000 को समाप्त हुए पखवाड़े में जमा राशियाँ बढ़कर 1695 करोड़ रुपये हो गयीं। इसी अवधि में जमा प्रमाण पत्रों की प्रभावी ब्याज दरों में भी तेजी से कमी आयी और वे 8.25-24 प्रतिशत वाली सीमा से कम होकर 6.30% से 14% के स्तर तक पहुँच गयीं।

7.7 वाणिज्यिक-प्रपत्र (Commercial Paper)

वाणिज्यिक प्रपत्र अल्प अवधि का मियादी (usance) प्रतिज्ञा पत्र है जिसकी परिपक्वता अवधि निश्चित होती है एवं ऋण पात्रता की उच्च योग्यता रखने वाली कंपनियों द्वारा जारी किए जाते हैं। ये पृष्ठांकन (endorsement) एवं सुपुर्दगी (delivery) द्वारा स्थांतरणीय होते हैं। रिजर्व बैंक ने जनवरी 1990 में कंपनियों को अल्प अवधि के लिए वित्त प्राप्त करने के अतिरिक्त श्रोत के रूप में तथा बड़े निवेशकों को अपनी निधियाँ निवेश करने के लिए इस प्रपत्र के माध्यम से एक और अवसर प्रदान किया। वाणिज्यिक प्रपत्रों को जारी करने के लिए रिजर्व बैंक ने दिशा निर्देश जारी किए हैं। इन दिशा निर्देशों को अक्तूबर 2000 में संशोधित किया गया। इनकी निम्न विशेषताएँ हैं :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

i) **पात्रता :** वाणिज्यिक प्रपत्र कंपनियों के अतिरिक्त प्राथमिक व्यापारियों (Primary Dealers), सहायक व्यापारियों एवं अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं द्वारा जारी किए जा सकते हैं। कंपनियों के लिए पात्रता की निम्नलिखित शर्तें निर्धारित की गयी हैं:

   क) उनकी भौतिक शुद्ध संपत्ति (Tangible networth) का मूल्य 4 करोड़ रुपये होना चाहिए।

   ख) कंपनी के पास किसी बैंक या वित्तीय संस्था द्वारा स्वीकृत कार्यशील पूँजी की एक सीमा होनी चाहिए।

   ग) उधारकृत खाता (Borrowed Account) एक मानक परिसम्पत्ति (Asset) होना चाहिए।

ii) वाणिज्यिक पत्र के प्रपत्र में निम्लिखित बातें होनी चाहिए:

   क) परिपक्वता की न्यूनतम अवधि 15 दिन एवं अधिकतम अवधि एक वर्ष तक होनी चाहिए।

   ख) न्यूनतम धनराशि 5 लाख रुपये एवं उसके पश्चात् इसके गुणांक में होनी चाहिए।

   ग) साख एजेंसी (Credit Rating Information Services of India Ltd.-CRISIL) द्वारा निर्धारित न्यूनतम साख दर $पी_2$ होनी चाहिए या किसी अन्य स्वीकृत साख एजेंसी द्वारा इसके सामांतर साख दर होनी चाहिए।

iii) **वाणिज्यिक पत्रों के निवेशक :** वाणिज्यिक पत्र किसी एक बैंक, कंपनी, अनिगमित (un-incorporated) इकाइयों, अनिवासी भारतीयों एवं विदेशी वित्तीय संस्थाओं द्वारा धारित किए जा सकते हैं।

iv) **वाणिज्यिक पत्र जारी करने की विधि :** जारी करने एवं भुगतान करने के एजेंट के रूप में केवल अनुसूचित बैंक कार्य कर सकता है। वाणिज्यिक पत्र प्रतिज्ञा पत्र या डिमेट के रूप में जारी किए जा सकते हैं। 30 जून 2001 से यह अनिवार्य हो गया है कि वाणिज्यिक पत्रों के निवेश एवं नए जारी किए गए पत्र डिमैट (DEMAT) के रूप में ही होने चाहिए। 31 अक्तूबर 2001 तक सभी विद्यमान वाणिज्यिक प्रपत्रों को डिमैट के रूप में परिवर्तन करना आवश्यक था। वाणिज्यिक प्रपत्रों की हामीदारी (underwritten) नहीं की जा सकती है।

वाणिज्यिक पत्र अंकित मूल्य से बट्टे पर जारी किए जाते हैं। बट्टे की दर जारी करने वाली कम्पनी द्वारा स्वतंत्र रूप से निर्धारित की जाती है। वाणिज्यिक पत्र स्वतंत्र रूप से हस्तान्तरणीय होते हैं। जारी करने वाली कंपनी सभी व्ययों, डीलर्स की फीस, साख दर निर्धारण, एजेंसी की फीस एवं अन्य खर्चों को वहन करती है।

वाणिज्यिक पत्र एकल समर्थन (Stand alone) उत्पाद के रूप में जारी किए जाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जब कोई बैंक या वित्तीय संस्था वाणिज्यिक पत्र जारी करने वाली कंपनी की कार्यशील पूँजी की सीमा निर्धारित करती है तो उस स्थिति में कंपनी के उपलब्ध सभी वित्तीय श्रोतों जिसमें वाणिज्यिक प्रपत्र भी शामिल हैं, पर विचार किया जाएगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भारत में वाणिज्यिक पत्र

वाणिज्यिक पत्रों की सबसे कम लागत होने के कारण पात्र कंपनियों द्वारा वाणिज्यिक पत्रों को जारी करने की प्रक्रिया ने स्थायित्व प्राप्त कर लिया है। जनवरी 1999 एवं जुलाई 2001 के मध्य वाणिज्यिक पत्रों की अदत्त धनराशि 5000 करोड़ एवं 8000 करोड़ रुपये थी। इस अवधि में विशिष्ट प्रभावी बट्टा दर 8% से 12% की सीमा में थी एवं समय-समय पर यह घटती बढ़ती रही।

अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक वाणिज्यिक पत्रों के प्रमुख निवेशक रहे हैं एवं 23 मार्च 2001 को उनकी अदत्त धारिताएँ (Holdings) 6984 करोड़ रुपये थी ज़बकि 15 मार्च 2001 को कुल अदत्त धनराशि 6991 करोड़ रुपये थी।

बोध प्रश्न 3

1) रिजर्व बैंक द्वारा पुनर्कटौती योजना 1970 के तहत एक वाणिज्यिक बिल के पुनर्भुनाने की पूर्व शर्तों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) आप वाणिज्यिक पत्र से क्या समझते हैं? इस संबंध में रिजर्व बैंक द्वारा जारी किए गए दिशा-निर्देशों की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

7.8 सारांश

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

किसी देश की अर्थव्यवस्था में वित्तीय बाजार महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये बाजार दो प्रकार के होते हैं : पहला मुद्रा बाजार एव दूसरा पूँजी बाजार। मुद्रा बाजार में अल्पावधि की निधियों के सौदे जो एक वर्ष तक की अवधि के होते हैं, किए जाते हैं। वाणिज्यिक एवं सहकारी बैंक, भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह, वित्त एवं निवेश संस्थाएँ, रिजर्व बैंक, कंपनियाँ एवं पारस्परिक निधियाँ, मुद्रा बाजार के प्रतिभागी होते हैं। केंद्रीय बैंक के रूप में रिजर्व बैंक वित्तीय संस्थाओं के नियंत्रण के साथ-साथ अन्य कार्य भी करता है। यह अंतरिम समायोजना सुविधा एवं चलनिधि समायोजना सुविधा के द्वारा बैंकों को पुनर्वित्त सुविधा प्रदान करता है। माँग मुद्रा बाजार एवं अल्प सूचना पर देय मुद्रा बाजार मुद्रा बाजार के दो महत्वपूर्ण घटक हैं।

पहले अन्य बहुत सी गैर-बैंकिंग इकाइयाँ जैसे वित्तीय संस्थाएँ एवं चयनित कंपनियों को प्रत्यक्ष रूप से मुद्रा बाजार में उधार निधियाँ प्रदान करने की अनुमति थी। लेकिन बाजार में असंतलुन को कम करने के उद्देश्य से रिजर्व बैंक ने माँग मुद्रा बाजार में गैर-बैंकिंग संस्थाओं की प्रतिभागिता को कम करने के लिए कदम उठाए हैं। ट्रेजरी बिल, वाणिज्यिक विनिमय बिल, जमा प्रमाण पत्र, वाणिज्यिक पत्र, मुद्रा बाजार में अल्पावधि उधार लेने के महत्वपूर्ण प्रपत्र हैं।

7.9 शब्दावली

अतिरिक्त समर्थित सुविधा (Additional Collatrolised Facility) : यह सुविधा समर्थित साख सुविधा के अतिरिक्त रिजर्व बैंक द्वारा बैंक दर से 2% अधिक दर पर प्रदान की जाती है।

माँग मुद्रा बाजार : यह बहुत कम अवधि का बाजार होता है। सामान्य रूप से एक दिन या कुछ दिन का। बैंक इस बाजार में अपनी अतिरिक्त अल्पावधि की निधियों को अन्य बैंकों को उधार देते हैं। अन्य संस्थाएँ भी उधारदाता के रूप में प्रतिभागी होती हैं।

जमा प्रमाण-पत्र : यह एक रसीद होती है जो बैंक या वित्तीय संस्थाओं द्वारा उनके पास की गयी जमाओं के लिए जारी की जाती है। यह स्वतंत्र रूप से स्थांतरणीय प्रपत्र है।

समर्थित ऋण सुविधा : इस योजना के अंतर्गत रिजर्व बैंक वाणिज्यिक बैंकों को उनके एक वर्ष में एक पखवाड़े की औसत अदत्त जमाओं का 25% निधियाँ उपलब्ध कराता है। यह सुविधा दो सप्ताह के लिए बैंक दर पर स्वीकृत की जाती है।

वाणिज्यिक पत्र : यह एक अल्प अवधि का ऋण प्रपत्र है जो साख पात्रता वाली कंपनियों एवं वित्तीय संस्थाओं द्वारा जारी किया जाता है। इसकी परिपक्वता सीमा 15 दिन से एक वर्ष की अवधि की होती है। यह एक समझौता परक प्रपत्र है।

तरलता समायोजन सुविधा : वर्तमान में रिजर्व बैंक पुनर्खरीद एवं विपरीत पुनर्खरीद नीलामी द्वारा तरलता समायोजन सुविधा के अंतर्गत तरलता का प्रबंध करता है। यह पुनर्खरीद द्वारा तरलता को नियोजित करता है एवं विपरीत पुनर्खरीद द्वारा तरलता को मुक्त करता है।

मुद्रा बाजार प्रपत्र : ऐसे प्रपत्र जिनके द्वारा मुद्रा बाजार में अल्प अवधि के लिए निधियों के लेन-देन होते हैं उन्हें मुद्रा बाजार प्रपत्र कहा जाता है। जैसे जमा प्रमाण पत्र, वाणिज्यिक पत्र, विनिमय बिल आदि।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पुनर्वित्त सुविधा : रिजर्व बैंक एवं अन्य अखिल भारतीय संस्थाएँ बैंकों को उनके द्वारा स्वीकृत ऋणों के आधार पर पुनः ऋण प्रदान करती हैं। ऐसे ऋणों को पुनर्वित्त कहा जाता है।

पुनर्खरीद नीलामी : इसके अंतर्गत किसी प्रतिभूति को पुनर्खरीद का अधिकार है। पुनर्खरीद नीलामी में उधारकर्ता उधार ली गयी धनराशि का भुगतान करने के बाद अपनी प्रतिभूति वापस लेने का अधिकार रखता है। पुनर्खरीद नीलामी में रिजर्व बैंक प्रतिभूतियों की बिक्री करता है एवं इस प्रकार से तरलता का संकुचन करता है। ऐसा उस स्थिति में किया जाता है जब तरलता का आधिक्य होता है।

ट्रेजरी बिल : ये भारत सरकार द्वारा अल्प अवधि के लिए उधार लेने के प्रपत्र हैं जो भारत सरकार की ओर से रिजर्व बैंक द्वारा जारी किए जाते हैं। वर्तमान में ये बिल नीलामी द्वारा 91 दिन तथा 365 दिनों के लिए जारी किए जाते हैं।

परिवर्तनशील विपरीत पुनर्खरीद नीलामी (Variable Reverse Repo Auctions): इसके अंतर्गत भारतीय रिजर्व बैंक नीलामी में प्रतिभूतियों की खरीदारी द्वारा वित्तीय व्यवस्था में कोषों को निकालता है।

7.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

L.M. Bhole (3rd Edition 2002) : *"Financial Institutions and Markets"*, Tata McGraw Hill, Delhi.

P.N. Varshney (4th Edition 2002) : *"Financial System in India"*, Sultan Chand & Sons, Delhi.

Govt. of India : *Economic Survey* 2000-2001, 2001-2002.

Reserve Bank of India : Annual Reports 2000, 2001.

Report of the Working Group on Money Market (Chairman : N. Vaghul), 1987.

Report of the Committee on Banking Sector Reforms (Chairman : M. Narasimhan), 1998.

7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) मुद्रा बाजार एक ऐसा बाजार है जहाँ अल्प अवधि की निधियों जिनकी अवधि सीमा एक दिन से एक वर्ष तक की होती है के लेन-देन होते हैं। इस बाजार में मुख्य प्रतिभागी हैं : वाणिज्यिक एवं सहकारी बैंक, भारतीय मितीकारा एवं वित्त गृह, रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, वित्तीय एवं निवेश संस्थाएँ जैसे - जीवन बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया, सामान्य बीमा निगम आदि।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) उपभाग 7.3.2 का अवलोकन करें।

3) i) मुद्रा बाजार एक वर्ष तक की अवधि के लिए अल्पावधि निधियों का बाजार है जबकि पूँजी बाजार में दीर्घावधि की निधियों के सौदे होते हैं।

   ii) पुनर्खरीद कम अवधि के लिए किसी प्रतिभूति के आधार पर ऋण लेने की पद्धति है जबकि विपरीत पुनर्खरीद उधार देने की एक ऐसी पद्धति है जिसमें ऋणदाता इस प्रकार का आश्वासन लेता है कि एक निश्चित मूल्य पर भुगतान के बाद ऋणकर्ता से प्रतिभूतियाँ खरीद लेगा।

बोध प्रश्न 2

1) माँग एवं अल्प सूचना पर मुद्रा की माँग वाले बाजार को माँग मुद्रा बाजार कहा जाता है।

2) ट्रेजरी बिल सरकार की प्राप्तियों एवं व्ययों में समय अंतराल के कारण असंतुलन को कम करने के लिए जारी किए जाते हैं। ट्रेजरी बिल रिजर्व बैंक द्वारा जारी किए जाते हैं।

3) उपभाग 7.5.1 का अवलोकन करें।

बोध प्रश्न 3

1) i) बिल वास्तविक व्यापारिक लेन-देनों के फलस्वरूप होना चाहिए।
   ii) यह क्रेता के बैंक द्वारा अकेले या संयुक्त रूप से उसके साथ स्वीकृत होना चाहिए।
   iii) परिपक्वता अवधि 90 दिनों से अधिक नहीं होनी चाहिए।

2) जमा प्रमाण-पत्र किसी बैंक या वित्तीय संस्था के पास जमा की गयी धनराशि की रसीद हैं। वे सावधि जमाओं से दो रूपों में भिन्न हैं : (क) जमा प्रमाण-पत्र बड़ी धनराशि के लिए जारी किए जाते हैं, (ख) ये स्वतंत्र रूप से स्थांतरणीय होते हैं।

3) भाग 7.7 का अवलोकन करें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 8 पूँजी बाजार (I) : नए निर्गमों का बाजार

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 प्राथमिक बाजार एवं आनुषंगिक बाजार (Primary and Secondary Market)
8.3 प्रतिभूतियों के नए निर्गमों की विपणन पद्धति
  8.3.1 सार्वजनिक निर्गम (Public Issue)
  8.3.2 अधिकार शेयर्स (Rights Issue)
  8.3.3 वैयक्तिक विनियोजन (Private Placement)
8.4 नए निर्गमों के प्रवेश की शर्तें
8.5 अधिशुल्क निर्धारण (Fixation of Premium)
  8.5.1 माँग आधारित मूल्य धारण (Book Building Process)
8.6 प्राथमिक पूँजी बाजार में सुधार
8.7 भारत में नए निर्गमों की वर्तमान प्रवृत्ति
8.8 सारांश
8.9 शब्दावली
8.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- पूँजी बाजार एवं इसके खंडों की अवधारणा को जान पाएँगे,
- प्राथमिक बाजार से पूँजी एकत्रित करने के विभिन्न साधनों का विवरण दे सकेंगे,
- प्राथमिक पूँजी बाजार में किए गए सुधारों का वर्णन कर सकेंगे, तथा
- भारत में नए निर्गमों के बाजार की वर्तमान प्रवृत्तियों को बता सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

हम यह जानते हैं कि वित्तीय बाजारों को वृहद रूप से मुद्रा बाजार एवं पूँजी बाजार के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। हमने गत इकाई में मुद्रा बाजार एवं इसके विभिन्न प्रपत्रों के विषय में जानकारी प्राप्त की। इस इकाई में हम पूँजी बाजार के बारे में चर्चा करेंगे।

औद्योगिक प्रगति के लिए पूँजी बाजार का विकास आवश्यक है जिससे उद्यमियों को दीर्घावधि के लिए वित्त उपलब्ध हो सके। पूँजी बाजार एक वृहद शब्द है। इसमें दीर्घावधि निधियों के सभी लेन-देन आते हैं। विकास बैंक, वाणिज्यिक बैंक, वित्तीय

संस्थाएँ एवं स्टाक ऐक्सचेंज इसके मुख्य घटक हैं। भारतीय विनिमय एवं प्रतिभूति बोर्ड (Securities and Exchange Board of India -- SEBI) पूंजी बाजार का नियंत्रक है। पूँजी बाजार एक संगठित बाजार है जिसके माध्यम से अनेक बचतकर्त्ताओं से प्रभावपूर्ण ढंग एवं कुशलता के साथ निधियाँ संग्रहीत की जाती हैं। ऐसी निधियाँ सार्वजनिक या निजी क्षेत्र के व्यवसायिक कार्यों के लिए उन इकाइयों को हस्तांतरित कर दी जाती हैं जिन्हें इनकी आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में पूँजी बाजार ऐसे दो पक्षों को मिलाने में सहायक है जिनको निधियों की आवश्यकता है (उद्योग एवं व्यवसाय) एवं जो निधियों की आपूर्ति करते हैं (निवेशक)। अतएव पूँजी बाजार बचत आधिक्य क्षेत्र (घरेलू) एवं बचत की कमी क्षेत्र (उद्योग) के बीच संपर्क कड़ी है।

पूँजी बाजार में हम ज्यादातर सामान्य अंश, अधिमान अंश (Preference Shares) बाण्डों एवं ऋण पत्रों (Debentures) जैसी प्रतिभूतियों के लेन-देन करते हैं। ये प्रतिभूतियाँ कंपनियों तथा अर्ध-सरकारी या सरकारी संगठनों द्वारा जारी की जाती हैं।

8.2 प्राथमिक बाजार एवं आनुषंगिक बाजार

प्रतिभूति बाजार को दो खंडों में बाँटा गया है—प्राथमिक बाजार एवं आनुषंगिक बाजार। दोनों के बीच मुख्य अंतर यह है कि पहले में नए निर्गमों के लेन देनों का व्यवसाय होता है जबकि दूसरे में विद्यमान प्रतिभूतियों के लेन-देन होते हैं। इस प्रकार प्राथमिक बाजार निवेश योग्य निधियों को बचतकर्त्ताओं से कंपनियों को स्थांतरण करने में सहायक होते हैं। कंपनियों को उत्पादक कार्यों के लिए निधियों की आवश्कयता होती है। आनुषंगिक बाजार में नयी प्रतिभूतियाँ नहीं होती हैं। वस्तुतः विद्यमान प्रतिभूतियाँ स्वामित्व परिवर्तन करती हैं। एक प्रकार के व्यक्तियों का समूह इन प्रतिभूतियों में निवेश करता है जबकि दूसरा समूह विनिवेश करता है। प्राथमिक बाजार को नए निर्गमों का बाजार भी कहा जाता है। इस बाजार का देश की अर्थव्यवस्था में व्यापक महत्व है क्योंकि इसके माध्यम से अर्थव्यवस्था में निष्क्रिय मौद्रिक स्रोतों का बेहतर उपयोग होता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उपरोक्त दोनों बाजार एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं अपितु एक दूसरे पर अंतर-निर्भर होते हैं। नए निर्गमों के बाजार की क्रियाएँ एवं नए निगमों की प्रतिभूतियों में निवेशकों की भागीदारी बहुत कुछ मात्रा में आनुषंगिक बाजार में विद्यमान दशाओं पर निर्भर करती है। यदि आनुषंगिक बाजार बहुत ज्यादा सक्रिय एवं तेजी पर है तो प्राथमिक बाजार में नए निर्गमों को बड़ी संख्या में निवेशकों से धनराशि संग्रहण में सहायता मिलेगी अन्यथा इसके विपरीत स्थिति हो सकती है। इस इकाई में हम प्रतिभूति बाजार में नए निर्गमों के विपणन की कार्य प्रणाली के बारे में अध्ययन करेंगे।

8.3 प्रतिभूतियों के नए निर्गमों की विपणन पद्धति

एक कंपनी प्राथमिक बाजार से तीन प्रकार से पूँजी जुटा सकती है :

i) सार्वजनिक निर्गम
ii) अधिकार शेयर्स (अंश)
iii) वैयक्तिक विनियोजन

8.3.1 सार्वजनिक निर्गम

प्रतिभूतियाँ निर्गम करने का सबसे महत्वपूर्ण तरीका सार्वजनिक रूप से आम जनता के लिए विवरण पत्रिका (Prospectus) जारी करना है। अगर किसी कंपनी द्वारा शेयर्स पहली बार जारी किए जा रहे हैं तो इसे जनता में शेयरों का प्रारंभिक निवेद या प्रस्तुति (Initial Public Offer) कहा जाएगा। सार्वजनिक निर्गम जारी करने की प्रक्रिया निम्नलिखित है।

शेयर पूँजी अभिदान (Subscribe) करने के लिए विवरण पत्रिका के माध्यम से प्रस्ताव आमंत्रित किए जाते हैं। कंपनी द्वारा निर्धारित प्रारूप पर आवेदन पत्र धनराशि के साथ आमंत्रित किये जाते हैं। अभिदान की सूची (Subcription List) (अथवा शेयर निर्गम) 3 से 7 दिन की अवधि के लिए खोला जाता है। उस निर्धारित अवधि में ही ग्राहक शेयर्स के लिए आवेदन कर सकते हैं।

जब तक कि विवरण पत्रिका में उल्लिखित न्यूनतम अभिदान राशि संग्रहीत नहीं होती, कोई भी आवंटन नहीं किया जा सकता। न्यूनतम अभिदान का तात्पर्य शेयर्स की संख्या से है जो अभिदत्त की जानी चाहिए। सेबी के दिशा निर्देशों के अनुसार सार्वजनिक निर्गम (Public Issue) का 90% न्यूनतम अभिदान (Minimum Subcription) के रूप में निर्धारित किया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सामान्य रूप से अभिदान राशि दो किश्तों में संग्रहीत की जाती है। एक आवेदन पत्र पर एवं दूसरी किश्त आवंटन पर। यदि आवंटन के समय ही सारी राशि एकत्रित नहीं की जाती है तो शेष धनराशि एक या दो किश्तों में माँगी जाती है जिन्हें माँग मुद्रा (Call money) कहा जाता है। कंपनी द्वारा जो आवंटन पत्र भेजा जाता है, उसे शेयर प्रमाण पत्र के लिए परिवर्तित किया जा सकता है। यदि आवंटनधारी माँग पर देय धनराशि का भुगतान नहीं कर पाता है तो ऐसे शेयर्स जब्त हो जाते हैं। उस स्थिति में आवंटनधारी को किसी प्रकार का धन वापस नही किया जाता है।

सार्वजनिक निर्गम आश्वस्तिदाताओं द्वारा पृष्ठांकित (Under written) किए जाते रहे हैं। पर वर्तमान में यह आवश्यक नहीं है। आश्वस्तिदाता शेयर्स जारी करने वाली कंपनी को गैर-अभिदत्त शेयर्स की खरीदारी का वचन देता है। इस प्रक्रिया को शेयर्स को आश्वस्तिदाता को सौंपना कहा जाता है जिसके लिए उन्हें कमीशन प्रदान किया जाता है। भारत में आवस्तिदाता एजेंसियों को निम्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है।

एकल आश्वस्ति और सामूहिक आश्वस्ति, एकल आश्वस्ति में उप-आश्वस्ति। **एकल आश्वस्ति** में एक आश्वस्तिदाता शेयर्स जारी करने वाली कंपनी से समझौता करता है कि वह अकेला ही आश्वस्ति करेगा। **सामूहिक आश्वस्ति** में एक से अधिक बैंक आश्वस्ति दे सकते हैं क्योंकि ऐसी स्थिति में निवेश का आकार बड़ा हो सकता है। तीसरी स्थिति अर्थात् **एकल आश्वस्ति में उप-आश्वस्ति** की प्रक्रिया में उप-आश्वस्तिदाता नियुक्त किए जाते हैं जिससे प्रतिभूतियों की बिक्री जल्दी हो सकती है एवं निहित जोखिम का विविधीकरण हो जाता है। आश्वस्ति में दो प्रकार के समझौते होते हैं:

i) जारी करने वाली कंपनी एवं आश्वस्तिदाताओं के बीच समझौता

ii) आश्वस्तिदाता एवं उप-आश्वस्तिदाताओं के बीच समझौता

8.3.2 अधिकार शेयर्स

अधिकार शेयर्स का तात्पर्य है कि कंपनी द्वारा प्राथमिक बाजार के माध्यम से विद्यमान शेयर्स धारकों को प्रतिभूतियों के क्रय करने का अधिकार प्रदान करना। इस प्रक्रिया में कंपनी वर्तमान शेयर धारकों को आनुपातिक आधार पर नए शेयर्स खरीदने के लिए विशेष अधिकार प्रदान करती है। अधिकतर शेयर्स जारी करने वाली कंपनी मिश्रित आवेदन पत्र के साथ प्रस्ताव पत्र ले जाती है। इस आवेदन पत्र में चार भाग होते हैं, जैसे 'ए', 'बी', 'सी' एवं 'डी'। 'ए' भाग प्रस्ताव की स्वीकृति के लिए होता है। 'बी' भाग के द्वारा शेयरधारक अपने अधिकार किसी अन्य व्यक्ति को स्थांतरण कर सकता है। 'सी' भाग उस व्यक्ति द्वारा भरा जाता है जिसके पक्ष में अधिकार स्थांतरित किया गया है। भाग 'डी' में शेयर्स के विभाजन के लिए आवेदन किया जा सकता है। शेयरधारक को मिश्रित आवेदन पत्र निर्धारित अवधि, जो सामान्यतः 30 दिन की होती है, में कपंनी को भेज देना चाहिए। ऐसे शेयर्स जिनके लिए कोई आवेदन पत्र प्राप्त नहीं होता है, सामान्य जनता को जारी किए जा सकते हैं। कभी-कभी एक विद्यमान कंपनी "अधिकार शेयर एवं सार्वजनिक निर्गम" एक साथ जारी कर देती है।

अधिकार शेयर्स की महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1) विद्यमान शेयरधारकों को अधिकार के आधार पर दिए गए शेयर्स की संख्या का निर्धारण शेयर निर्गम करने वाली कंपनी द्वारा किया जाता है। विद्यमान शेयर धारकों को शेयर अधिकार की पात्रता उनके वर्तमान शेयर्स की संख्या पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए प्रत्येक 2 या 3 शेयर्स के लिए शेयरधारक को एक अधिकार शेयर प्रदान किया जा सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) एक अधिकार शेयर का निर्गम मूल्य निर्धारण कंपनी अपने विवेक से करती है।

3) अधिकार स्थांतरणीय होते हैं। अधिकार धारक अपने अधिकार शेयर्स को किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में स्थांतरित कर सकता है। इस प्रकार उस व्यक्ति को कंपनी के पास अपने नाम में शेयर जारी करने के आवेदन का अधिकार मिल जाता है।

4) अधिकारों का प्रयोग केवल एक निश्चित अवधि में ही किया जा सकता है जो सामान्यत 30 दिन होती है। यदि निश्चित अवधि में अधिकार का प्रयोग नहीं किया गया तो वह अधिकार समाप्त हो जाएगा।

8.3.3 वैयक्तिक विनियोजन (Private Placement)

सार्वजनिक शेयर्स का निर्गम एक खर्चीली प्रक्रिया है क्योंकि इसमें प्रेस द्वारा विज्ञापन, दलालों की फीस, प्रेस सम्मेलन आदि के आयोजन में काफी व्यय हो जाते हैं। इसलिए कुछ कंपनियाँ वैयक्तिक विनियोजन के आधार पर बाण्ड एवं शेयर्स जारी कर निधियाँ जुटा लेती हैं जो एक सस्ती प्रक्रिया है।

इस पद्धति में प्रतिभूतियाँ कुछ चयनित निवेशकों जैसे बैंक या वित्तीय संस्थाओं को जारी की जाती हैं। यह प्रक्रिया उस समय अपनायी जाती है, जब निर्गम का आकार बहुत बड़ा नहीं होता है एवं कंपनी ऐसे निर्गम पर बहुत ज्यादा खर्च करना नहीं चाहती

हो। हाल ही में वैयक्तिक विनियोजन बाजार का काफी विस्तार हुआ है। गत कुछ वर्षों में भारत में वैयक्तिक विनियोजन की विकास दर सार्वजनिक निर्गम एवं अधिकार शेयर्स दोनों ही से ज्यादा रही है क्योंकि इसके निम्नलिखित लाभ हैं:

i) **पहुँचः** कोई भी कंपनी, चाहे वह पब्लिक लिमिटेड कंपनी हो या प्राईवेट लिमिटेड, चाहे वह सूचीगत है या गैर सूचीगत, सरलता से वैयक्तिक विनियोजन बाजार में भाग ले सकती है।

ii) **लोचः** निर्गम की शर्तों में काफी लचीलापन होता है। वैयक्तिक विनियोजन के फलस्वरूप एक कंपनी प्रतिभूतियों की बिक्री किसी एक या कुछ निवेशकों को कर सकती है। इस व्यवस्था में किसी औपचारिक विवरण पत्रिका या आश्वस्ति आदि की आवश्यकता नहीं होती है। सामान्य रूप से निर्गम की शर्तें कंपनी (प्रतिभूति जारीकर्त्ता) एवं निवेशक के बीच आपसी समझौते के आधार पर निर्धारित की जाती हैं।

जब गैर-परिवर्तनीय ऋण पत्र निजी रूप में जारी किए जाते हैं तो निर्गम को अधिक आकर्षित बनाने के लिए संस्थागत निवेशकों को छूट प्रदान की जाती है।

iii) **गतिः** विभिन्न औपचारिकताओं के साथ एक सार्वजनिक निर्गम को पूरा करने के लिए 6 माह या इससे अधिक समय की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत वैयक्तिक विनियोजन में कम समय की आवश्यकता होती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

iv) **कम निर्गम लागतः** सार्वजनिक निर्गम में सांविधिक एवं गैर-सांविधिक व्यय होते हैं, जैसे आश्वस्ति, दलाली आदि। ऐसे व्ययों का कुल योग कभी-कभी निर्गम मूल्य का 10% तक हो जाता है। लेकिन वैयक्तिक विनियोजन करने वाली कंपनियों के लिए यह लागत बहुत कम होती है।

बोध प्रश्न 1

1) एक कंपनी किन-किन तरीकों से पूँजी जुटा सकती है?

.....

.....

.....

2) वैयक्तिक विनियोजन क्या है? इसके कौन-कौन से लाभ हैं?

.....

.....

.....

3) कौन-सा प्रलेख प्रस्तावित सार्वजनिक निर्गम के विवरण उपलब्ध कराता है?

.....

.....

.....

4) एक निर्गम के लिए आश्वस्ति क्या होती है?

.....

.....

.....

8.4 नए निर्गमों के प्रवेश की शर्तें

नये निर्गमों का स्वतंत्र मूल्य निर्धारण का अनुभव जो 1992 में प्रारंभ किया गया था, उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ क्योंकि बाजार में उच्च प्रीमियम दर पर निर्गम करने वाली कंपनियों की भीड़ लग गयी। अप्रैल 1996 में सेबी ने नए निर्गमों हेतु आने वाली कंपनियों के लिए कठोर मानदण्ड निर्धारित किए। इन मानदण्डों के अनुसार केवल वही कंपनियाँ शेयर मार्केट में आ सकेंगी जो गत 3 वर्ष से नियमित लाभांश भुगतान करती रही हों। इस प्रावधान को 1999 में संशोधित कर दिया गया। इसके स्थान पर यह रखा गया है कि ऐसी कंपनी 3 वर्षों से प्रत्येक वर्ष में लाभांश भुगतान करने में समर्थ रही हो। दूसरी व्यवस्था यह है कि उत्पादनकर्ता कंपनियों के परियोजना का मूल्यांकन उस अनुसूचित बैंक या वित्तीय संस्था द्वारा किया गया हो जो परियोजना लागत का 10% तक ऋण भी प्रदान कर रही हो। इस प्रकार लाभ अर्जन करने वाली एवं लाभांश भुगतान करने वाली विद्यमान कंपनियाँ एवं बैंक तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा परियोजना मूल्यांकन करने वाली नयी कंपनियाँ ही नए शेयर बाजार में प्रवेश कर सकती हैं। यह कदम इसलिए उठाया गया है कि प्राथमिक बाजार में निर्गम किए गए शेयर्स की गुणवत्ता में सुधार हो सके। इस संबंध में सेबी के विस्तृत दिशा-निर्देशों का अध्ययन आप इकाई 10 में करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.5 अधिशुल्क निर्धारण (Fixation of Premium)

कंपनी अपनी प्रतिभूतियाँ सम मूल्यपर (At par), अधिशुल्क पर या बट्टे (Discount) पर निर्गम कर सकती हैं। जब शेयर का मूल्य प्रतिभूति के अंकित मूल्य के समान होता है तो इसे सम मूल्य कहा जाता है। यदि मूल्य अंकित मूल्य से ज्यादा है तो इसे अधिशुल्क पर निर्गम कहा जाता है। इसके विपरीत अंकित से कम मूल्य पर निर्गम को बट्टे पर निर्गम कहा जाता है। निवेशक से अंकित मूल्य से अधिक प्राप्त किया गया मूल्य अधिशुल्क कहलाता है। उदाहरण के लिए यदि शेयर का अंकित मूल्य 10 रुपये है और वह 15 रुपये के मूल्य के लिए जारी किया जाता है तो अतरिक्त 5 रुपये के मूल्य को अधिशुल्क कहा जाएगा।

मई 1992 तक कंपनियों को पूंजी निर्गम नियंत्रक से पूंजी निधि नियंत्रण अधिनियम के अंतर्गत अनुमति लेना अनिवार्य था। ऐसी स्थिति में पूंजी निर्गम नियंत्रक कंपनी के कार्यों के बारे में बहुत से घटकों को ध्यान में रखते हुए अधिशुल्क का निर्धारण करता था।

मई 1992 में उपरोक्त अधिनियम निरस्त कर दिया गया एवं नए निर्गमों एवं बाजार के नियंत्रण के अधिकार सेबी को दे दिए गए। सेबी ने बाद में कंपनियों को स्वयं ही

अधिशुल्क निर्धारण करने की अनुमति प्रदान कर दी। लेकिन सेबी ने इस संबंध में निर्देश जारी किए जिसके अंतर्गत कंपनियों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया एवं प्रत्येक श्रेणी में एक ऐसी कपंनी, जो निश्चित वर्षों में लगातार लाभ अर्जन की शर्त को पूरा करती हो, को अधिशुल्क वसूलने की अनुमति प्रदान की गयी। शेष कंपनियाँ केवल सम मूल्य पर ही शेयर्स जारी कर सकती हैं। इससे बाजार में भारी संख्या में नए निर्गम आए तथा कंपनियों ने काफी मात्रा में अधिशुल्क वसूल किए। इन निर्देशों को आप विस्तार से इकाई 10 में अध्ययन करेंगे जहाँ पूंजी बाजार की नियंत्रण रूपरेखा पर चर्चा की गयी है।

8.5.1 माँग आधारित मूल्य धारण (Book Building Process)

सेबी ने माँग आधारित मूल्य धारण प्रक्रिया को अक्टूबर 1995 में प्रारंभ किया था। इस प्रक्रिया में कम्पनियों द्वारा नए निर्गमों पर अधिशुल्क निर्धारण करने के लिए मानदण्ड तैयार किए थे। यह निर्गमों के मूल्य निर्धारण की पद्धति है जिसमें मूल्य का निर्धारण माँग की प्रतिसूचना के आधार पर किया जाता है। ऐसा मूल्य निर्धारण निवेशकों की यथार्थ कालिक प्रतिसूचना (real time feedback) के आधार पर किया जाता है। यह प्रक्रिया इस प्रकार है:

- एक विवरण पत्रिका का प्रारूप जिसमें शेयर्स का मूल्य एवं संस्था के अतिरिक्त सभी सूचनाएँ होती हैं, कंपनी द्वारा सेबी को प्रस्तुत किया जाता है।
- निर्गम के लिए एक अग्रणी मर्चेन्ट बैंक को पुस्तपाल के रूप में नियुक्त किया जाता है।
- पुस्तपाल विवरण पत्रिका की प्रतियाँ संस्थागत निवेशक एवं आश्वस्तिदाताओं को भेजता है एवं उनसे प्रतिभूति के अभिदान के प्रस्ताव आमंत्रित करता है।
- पुस्तपाल संस्थागत निवेशकों एवं आश्वस्तिदाताओं से प्राप्त प्रस्तावों का, जिसमें प्रतिभूति का मूल्य जिसे देने के लिए वे तैयार हैं, एवं शेयर्स की संस्था जो खरीदना चाहते हैं का रिकार्ड तैयार करता है।
- उपरोक्त रूप में प्राप्त किए गए प्रस्तावों के आधार पर कंपनी एवं पुस्तपाल प्रतिभूति का मूल्य निर्धारित करते हैं। इस प्रकार से जो मूल्य निर्धारित किया जाता है, वह दोनों अर्थात् वैयक्तिक विनियोजन एवं सार्वजनिक निर्गम के लिए मान्य होता है।
- उसके बाद आश्वस्ति समझौता तैयार किया जाता है एवं विवरण पत्रिका कंपनियों के पंजीयक के यहाँ प्रस्तुत की जाती है।
- सार्वजनिक निर्गम के एक दिन पूर्व संस्थागत निवेशकों को धनराशि के साथ जितने शेयर्स उनको आवंटित होने प्रस्तावित हैं, के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत करना होता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रारंभ मे माँग आधारित मूल्य धारण प्रक्रिया कंपनियों के लिए वैकल्पिक थी लेकिन बाद में धीरे-धीरे इसको आवश्यक बना दिया गया है।

वित्तीय वर्ष 2000-01 में उन कंपनियों के लिए माँग आधारित मूल्य धारण की प्रक्रिया को अनिवार्य बना दिया गया जिनकी लाभ प्रदता एवं शुद्ध मूल्य का गत वर्षों में कार्य निष्पादन सेबी द्वारा निर्धारित मानदण्डों के अनुसार नहीं है।

इसके साथ ही कुल प्रस्तावों का 60% 'पात्र संस्थागत क्रेता' जिनमें वित्तीय संस्थाएँ, बैंक, पारस्परिक निधियाँ, विदेशी संस्थागत निवेशक, सेबी के साथ रजिस्टर्ड उद्यम पूंजी निधियाँ सम्मिलित हैं, को आवंटित करना होगा। इन शर्तों को न मानना निर्गम की असफलता माना जाएगा।

माँग आधारित मूल्यान धारण का मार्ग प्रारंभिक सार्वजनिक प्रस्तावों के लिए, जहाँ निर्गम का आकार कंपनी के निर्गम पूर्व शुद्ध मूल्य का 5 गुना है, आवश्यक है। यह उन सूचीगत कंपनियों के लिए भी ज़रूरी है जिनसे सार्वजनिक निर्गम का आकार पूर्व निर्गम शुद्ध मूल्य का 5 गुना या ज्यादा हो। इन सभी मामलों में 60% प्रस्ताव पात्र संस्थागत क्रेताओं को आवंटित किए जाने चाहिए।

बोध प्रश्न 2

1) आप अधिशुल्क से क्या समझते हैं? अधिशुल्क कौन वसूल कर सकता है?

.....

.....

.....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) नए निर्गमों के प्रवेश मानदण्ड से आप क्या समझते हैं? संक्षिप्त में चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

3) माँग आधारित मूल्यान धारण प्रक्रिया क्या है?

.....

.....

.....

8.6 प्राथमिक पूँजी बाजार में सुधार

गत कुछ वर्षों में सेबी द्वारा नए निर्गमों के बाजार से संबंधित बहुत से सुधार किए हैं। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण इस प्रकार हैं:

i) **जनता को न्यूनतम प्रस्ताव :** सेबी के दिशा निर्देशों (प्रकटीकरण एवं निवेशक संरक्षण) के अनुसार निर्गम के बाद की पूँजी में कम से कम 25% प्रस्ताव जनता को होने चाहिए। बाद में सभी क्षेत्र की कंपनियों के लिए यह अनुपात धीरे-धीरे घटाकर 10% कर दिया गया है। इसके साथ ही सेबी ने न्यूनतम प्रस्ताव का

आकार 100 करोड़ रखा है एवं जनता के लिए न्यूनतम शेयर्स की संख्या का प्रस्ताव 20 लाख शेयर्स रखा है। अगर कंपनी इन शर्तों को पूरा नहीं करती है तो उन्हें जनता को न्यूनतम प्रस्ताव 25% रखने होंगे।

ii) **निश्चित अवरुद्धता अवधि (Block in period):** प्रारंभिक सार्वजनिक प्रस्तावों के निवेश में निश्चित समय सीमा के प्रावधानों को युक्तिसंगत बनाया गया है। प्रवर्तकों के 20 प्रतिशत न्यूनतम अंशदान के लिए न्यूनतम समय सीमा 3 वर्ष रहेगी। शेष पूँजी जो प्रवर्तकों या अन्य द्वारा प्रारंभिक सार्वजनिक प्रस्ताव के पूर्व रखी गयी है, की न्यूनतम समय सीमा प्रारंभिक सार्वजनिक प्रस्ताव की आवंटन तिथि से एक वर्ष होगी।

सूचीगत कंपनी द्वारा जारी किए गए किसी भी व्यक्ति को जारी किए गए अधिमान शेयर की धारण सीमा उनके आवंटन तिथि से एक वर्ष की होगी।

iii) **शेयर्स का आवंटनः** अगर निर्गम माँग आधारित मूल्यान धारण के आधार पर जारी किया गया है तो उस स्थिति में शेयर्स के अंतिम आवंटन की समय सीमा 30 दिन से घटाकर 15 दिन कर दी गयी है।

iv) मर्चेन्ट बैंकों को सेबी की नियामक रूपरेखा में लाया गया है एवं उनके लिए आचार संहिता जारी की गयी है।

v) कंपनियों के लिए सार्वजनिक निर्गमों को जारी किए गए विवरण पत्रिका में, सभी महत्वपूर्ण तथ्य एवं प्रकल्पों से संबंधित विशिष्ट जोखिमों को प्रकट करना आवश्यक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

vi) यदि कोई व्यक्ति शेयर्स का निश्चित आवंटन ले रहा है तो उसे किसी प्रकार का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष बट्टा या कमीशन का भुगतान नहीं किया जा सकता।

vii) विक्रय प्रस्ताव के संबंध में न्यूनतम 90% अभिदान की आवश्यकता अब लागू नहीं होगी।

viii) निर्गम के आश्वस्तिदाताओं को वैकल्पिक कर दिया गया है पर शर्त यह है कि यदि किसी निर्गम में आश्वस्ति नहीं थी एवं जनता से कम से कम 90% अभिदान प्राप्त नहीं हुआ है तो संपूर्ण धनराशि को निवेशकों को वापस करना होगा।

ix) सेबी ने सार्वजनिक निर्गमों के विज्ञापन के लिए आचार संहिता प्रारंभ की है जिससे उचित एवं सही प्रकटीकरण सुनिश्चित हो सके।

8.7 भारत में नए निर्गमों की वर्तमान प्रवृत्ति

गत दशक में भारत के नए निर्गम का बाजार तेजी एवं मंदी दोनों ही दौरों से गुजरा है। 1992-93 में नए सार्वजनिक निर्गमों की संख्या 528 थी (धनराशि रुपए 6060.83 करोड़ थी) जो 1993-94 में बढ़कर 770 हो गयी (धनराशि रुपए 12544 करोड़) एवं उसके पश्चात् 1994-95 एवं 1995-96 में क्रमशः यह संख्या 1343 एवं 1428 हो गई थी एवं धनराशियाँ क्रमशः 13311 करोड़ रुपए एवं 10981.72 करोड़ रुपए थी।

गत कुछ वर्षों में प्राथमिक बाजार से संग्रह किए गए स्रोतों को तालिका 8.1 में दर्शाया गया है। इस तालिका से निम्नलिखित प्रवृत्ति सामने आती है:

i) हालांकि निर्गमों की संख्या एवं उनके द्वारा संग्रहित धनराशि की मात्रा 1998-99 में 367 (धनराशि 59074 करोड़) से 2000-01 में बढ़कर 737 (धनराशि 73921 करोड़) हो गई लेकिन अधिकांश भाग वैयक्तिक विनियोजन द्वारा अर्जित किया गया। इस श्रेणी में सार्वजनिक क्षेत्र का भाग पर्याप्त एवं प्रमुख रहा है। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय साख एवं निवेश निगम इस श्रेणी के सबसे बड़े संग्रहकर्त्ता हैं। इसके बाद राज्य स्तरीय उपक्रमों का दूसरा स्थान था। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि शेयर्स/ ऋण पत्र, बाण्ड आदि का वैयक्तिक विनियोजन प्रचलित हुआ है क्योंकि शेयर्स के प्रति लोगों के विपरीत विचार हैं। इसके साथ ही इनको कम लागत का माध्यम माना गया है। बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं के वैयक्तिक विनियोजन के माध्यम से ऋण प्रपत्रों का अभिदान करने की बढ़ती हुयी मात्रा भी वैयक्तिक विनियोजन के विकास में सहायक रही है।

ii) विवरण पत्रिका एवं अधिकार के माध्यम से नए निर्गमों की संख्या 1998-99 में घटकर 51 हो गयी जो 1999-2000 में बढ़कर 83 और 2000-01 में 150 हो गयी। लेकिन उनकी धनराशि 9365 करोड़ रुपये से कम होकर 6421 करोड़ हो गयी थी। इन आँकड़ों में सार्वजनिक निर्गम जो विवरण पत्रिका एवं अधिकार शेयर्स के आधार पर जारी किए गए हैं, दोनों ही सम्मिलित हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

iii) गत तीन वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम एवं सरकारी कंपनियाँ सार्वजनिक निर्गम बाजार से बाहर रही हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं द्वारा संग्रहित स्रोतों की मात्रा में तीव्र गति से कमी आयी है।

iv) 145 गैर-सरकारी पब्लिक लिमिटेड कंपनियों के निर्गमों में से 134 निर्गम शेयर्स के थे एवं शेष ऋण के निर्गम थे। लेकिन स्रोतों के संग्रहण के मामले में शेयर्स प्रपत्र का अंश केवल 53.9% था। वर्ष 2000-01 में ज्यादातर निर्गमों का आकार 10 करोड़ या इससे कम था जबकि गत वर्ष में ज्यादातर निर्गम 10 करोड़ या इससे अधिक धनराशि के थे। इसके फलस्वरूप निजी क्षेत्र की कंपनियों के निर्गमों की औसत राशि 2000-01 में 43 करोड़ थी जबकि 1999-2000 एवं 1998-1999 में यह राशि क्रमशः 65 करोड़ एवं 104 करोड़ रुपए थी।

v) शेयर्स निर्गम द्वारा उपरोक्त रूप में संग्रहीत की गयी धनराशि में अधिमूल्य की धनराशि भी सम्मिलित है। कुल संग्रहीत शेयर्स की धनराशि में अधिमूल्य के अंशदान में भी कमी आयी है। 2000-01 में शेयर मूल्य की धनराशि 47.5% थी जबकि 1999-2000 एवं 1998-99 में यह धनराशि क्रमशः 78.8% एवं 51.7% थी। अधिमूल्य में इस प्रकार की वृद्धि सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र द्वारा जारी किए गए सफल प्रारंभिक सार्वजनिक प्रस्तावों के परिणाम स्वरूप थी।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारत में फुटकर निवेशकों के लिए सार्वजनिक निर्गमों का बाजार बहुत ज्यादा आकर्षित नहीं है क्योंकि एक तो आर्थिक विकास की गति में कमी आयी है और दूसरे द्वितीयक बाजार में भी शेयर्स के मूल्यों में गिरावट

हुयी है। कंपनियों की रुचि ऋण प्रपत्रों के माध्यम से वैयक्तिक विनियोजन में बढ़ी है। अप्रैल-दिसंबर 2001 की अवधि में कुल संग्रहित स्रोतों में प्रारंभिक सार्वजनिक प्रस्तावों का अंश केवल 5.5% था जबकि गत वर्ष इसी अवधि के दौरान यह 56.7% था। इस धनराशि का लगभग 70% बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं द्वारा संग्रहित किया गया है। सूचना प्रौद्योगिकी कंपनियों द्वारा एक प्रतिशत से भी कम धनराशि संग्रहित की गयी थी। फिर भी पंजाब नेशनल बैंक ने सफलता पूर्वक प्रारंभिक सार्वजनिक प्रस्ताव का आयोजन किया जो 4.5 गुना अत्याभिदत्त (Over subscribed) हुआ। इसमें 10 रुपये के शेयर पर 21 रुपये का प्रीमियम भी था। यह इस बात को दर्शाता है कि प्रारंभिक सार्वजनिक प्रस्तावों में निवेशकों की रुचि बहाल हुई है विशेष रूप से बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं के पक्ष में है।

तालिका 8.1

भारत में प्राथमिक बाजार में स्रोतों का संग्रहण

(धनराशि करोड़ रुपयों में)

प्रतिभूति एवं निर्गम का प्रकार	1997-98		1998-99		1999-2000		2000-01	
	संख्या	धनराशि	संख्या	धनराशि	संख्या	धनराशि	संख्या	धनराशि
क. विवरण पत्रिका एवं अधिकार शेयर्स			51	9365.1	83	7704.3	150	6421.1
1. गैर-सरकारी पब्लिक लिमिटेड कंपनी	102	3138.3	48	5013.1	79	5153.3	145	4948.9
क) सामान्य शेयर्स	89	1162.4	33	2562.7	69	2752.5	134	2666.5
ख) अधिमान शेयर्स	1	4.3	3	59.7	-	-	2	142.2
ग) ऋण-पत्र	12	1971.6	12	2390.7	10	2400.8	9	2140.2
2. बैंक एवं वित्तीय संस्थाएँ	-	-	3	4352.0	4	2551.0	5	1472.2
वैयक्तिक विनियोजन	-	-	316	49679	578	61259	587	67500.2
i) निजी क्षेत्र	-	-	180	16997.7	367	19403.5	387	24398.8
ii) सार्वजनिक क्षेत्र	-	-	136	32681.3	211	41855.3	200	43101.2
कुल (क+ख)			367	59044	661	68963.3	737	73921.3

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्रोत : रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया की वार्षिक रिपोर्ट (2000-01)

बोध प्रश्न 3

1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

i) प्रवर्तक के न्यूनतम 20% वितरण में निश्चित अवरुद्धता अवधि ..... लागू है।

ii) सेबी के दिशा निर्देश के अनुसार निर्गम के बाद पूँजी का न्यूनतम ..... प्रस्तावित होना चाहिए।

iii) एक बिक्री के प्रस्ताव में न्यूनतम अभिदान ..... की शर्त लागू नहीं है।

8.8 सारांश

वित्तीय बाजारों को बृहद रूप से मुद्रा बाजार एवं पूँजी बाजार में वर्गीकृत किया जाता है। पूँजी बाजार में कंपनी, अर्ध-सरकारी संगठन, सरकारी संगठन एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा दीर्घावधि निधियों जैसे सामान्य शेयर्स, अधिमान शेयर्स, बाण्ड, ऋण पत्र आदि जारी किए जाते हैं तथा उनके लेन-देन होते हैं।

प्रतिभूति बाजार को पुनः दो खंडों में बांटा जाता है—प्राथमिक बाजार एवं सहायक बाजार। पहली स्थिति अर्थात् प्राथमिक बाजार में निर्गमकर्ता पहली बार बाजार में निर्गम जारी करता है अथवा प्रत्यक्ष रूप से जनता से पूँजी का संग्रह करता है। दूसरी स्थिति अर्थात् द्वितीयक अथवा सहायक बाजार में विद्यमान प्रतिभूतियों के लेन-देन होते हैं। कोई भी कंपनी प्राथमिक बाजार से तीन प्रकार से पूंजी का संग्रह कर सकती है, जैसे—सार्वजनिक निर्गम, अधिकार निर्गम, एवं वैयक्तिक विनियोजन। कंपनी अपनी प्रतिभूतियों को सम मूल्य पर, अधिमूल्य पर या बट्टे पर जारी कर सकती है। अप्रैल 1996 से सेबी ने कंपनियों के लिए नए निर्गम बाजार में प्रवेश के लिए कठोर मानदण्ड तैयार किए हैं। एक कंपनी द्वारा अधिमूल्य की राशि का निर्धारण करने के लिए सेबी ने एक नयी व्यवस्था लागू की है जिसे मूल्यान धारण के नाम से जाना जाता है। गत कुछ वर्षों में सेबी ने नए निर्गमों के बाजार में पर्याप्त सुधार किए हैं। इन सुधारों में जनता को न्यूनतम प्रस्ताव, प्रवर्तक के 20% न्यूनतम अंशदान में समय सीमा की पाबंदी एवं शेयर्स के अंतिम आवंटन की समय सीमा 30 दिन से घटाकर 15 दिन आदि सम्मिलित हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भारत में नए निर्गम बाजार की प्रवृत्ति यह दर्शाती है कि लघु निवेशकों की रुचि बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं के प्राथमिक निर्गमों में विशेष रूप से बढ़ी है।

8.9 शब्दावली

बाण्ड : यह एक ऋण प्रतिभूति है जो एक कंपनी, वित्तीय संस्था या सरकार द्वारा जारी की जाती है। इसमें प्रतिफल के रूप में ब्याज का निश्चित एवं नियमित भुगतान होता है।

तेजी (Boom) : प्रतिभूति बाजार में बढ़ती हुयी माँग के फलस्वरूप एक ऐसी स्थिति जहाँ बाजार में लेन देनों की मात्रा बढ़ रही हो एवं प्रतिभूतियों के मूल्य भी बढ़ रहे हों।

पुनः क्रय (Buy Back) : कंपनी एवं निवेशक के बीच एक ऐसा समझौता जिसमें कंपनी भविष्य में प्रतिभूतियों को एक निश्चित मूल्य पर पुनः खरीदने का वायदा करती है।

लाभांश/ब्याज दर (Coupon Rate) : यह वह ब्याज दर है जो निर्गमकर्त्ता बाण्ड धारक को बाण्ड के मूलधन/प्रदत्त मूल्य (Paid-up value) पर प्रदान करती है। यह बाण्ड के जारी करने के समय ही निर्धारित की जाती है।

डीप डिसकाउंट बाण्ड (Deep Discount Bond) : यह बाण्ड प्रारंभ में ही अंकित मूल्य से बट्टा पर जारी किया जाता है एवं परिपक्वता की तिथि पर अंकित मूल्य का भुगतान किया जाता है। इन्हें "जीरो कूपन बाण्ड" के नाम से भी जाना जाता है।

श्रेष्ठ प्रतिभूति (Gilts) : भारत में सरकार द्वारा सार्वजनिक व्ययों के लिए निश्चित ब्याज दर पर जारी की गयी प्रतिभूतियाँ जहाँ इनकी नीलामी भी होती है।

भारतीय प्रतिभूति एव विनिमय बोर्ड (Securities and Exchange Board of India - SEBI): भारत सरकार ने इसकी स्थापना अप्रैल 1988 में की थी जिसका मुख्य उद्देश्य प्रतिभूति बाजार का नियंत्रण एवं स्वस्थ विकास करना एवं निवेशकों को संरक्षण प्रदान करना है।

विभाजन (Split): बड़े मूल्य वर्ग के शेयर्स का छोटे मूल्य वर्ग के शेयर्स में उप-विभाजन। इसका तात्पर्य धारित राशि (Holdings) का उप-विभाजन भी है।

स्टॉक क्रेता (Stag): नए निर्गमों के शेयर्स के लिए एक ऐसा आवेदन पत्र जब निवेशक इस आशा के साथ आवेदन करता है कि एक बार द्वितीयक बाजार में शेयर का क्रय विक्रय प्रारंभ होने पर वह आवंटन पर शेयर की बिक्री कर देगा। एक सटोरिया (Speculator) वह व्यक्ति है जो शेयर्स का क्रय-विक्रय जल्दी से ज्यादा लाभ कमाने के लिए करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आश्वस्तिदान (Under writing): एक व्यक्ति या संस्था जो प्रतिभूति निर्गम के अंश को या पूरी धनराशि को बाद में एक निश्चित मूल्य पर अभिदत्त करने की गारंटी करता/करती है।

उतार-चढ़ाव (Volatility): एक निश्चित अवधि में शेयर्स के मूल्यों में उतार-चढ़ाव का मापदण्ड।

8.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Verma J.C. (1997) : *Venture Capital Financing in India,* Response Books, Sage Publication Pvt. Ltd., India.

Marilu Hurt Mc. Carty (1998) : *Money & Banking Financial Institutions and Economic Policy* (2nd Edition), Longman Financial Services Publishing, USA (Chapter 4) pp. 80-86.

Economic Survey (1999-2000) Chapter 4, pp. 59-73

Report on Currency and Finance, 1991-92 chapter 9, Capital Market. pp. 294-307.

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) कंपनी सार्वजनिक निर्गम, अधिकार निर्गम, एवं वैयक्तिक विनियोजन के माध्यम से पूँजी संग्रह कर सकती है।

2) जब शेयर्स कुछ चयनित निवेशकों को जारी किए जाते हैं, तो इसे वैयक्तिक विनियोजन कहा जाता है। सरल पहुँच, लचीलापन एवं न्यूनतम लागत इसके मुख्य लाभ हैं।

3) विवरण पत्रिका।

4) एक निर्गम की आश्वस्ति का तात्पर्य है कि एक संस्था या बैंक कंपनी को वचन देता है अर्थात् आश्वस्त करता है कि वह गैर-अभिदत्त शेयर्स को निर्धारित मूल्य पर खरीदेगा।

बोध प्रश्न 2

1) शेयर्स के अंकित मूल्य एवं निर्गम मूल्य के अंतर को अधिशुल्क प्रीमियम कहा जाता है। कंपनी सेबी के मानदण्डों के अनुसार अधिशुल्क ले सकती है।

2) भाग 8.4 का अवलोकन करें।

3) उपभाग 8.5.1 का अवलोकन करें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

1) i) 3 वर्ष

ii) 25 प्रतिशत

iii) 90 प्रतिशत

इकाई 9 पूँजी बाजार (II) आनुषंगिक बाजार (Secondary Market

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 भारत में स्टॉक एक्सचेंज
9.3 व्यापार प्रणाली
  9.3.1 परंपरागत व्यापार प्रणाली
  9.3.2 ऑन-लाइन व्यापार प्रणाली
9.4 बिकी हुई प्रतिभूतियों के लिए भुगतान पद्धति (Settlement Procedure for Traded Securities)
9.5 हस्तांतरण प्रणाली
9.6 प्रतिभूतियों का अमूर्तकरण (Dematerialisation of Securities)
9.7 नेशनल स्टॉक एक्सचेंज
9.8 भारत का 'ओवर द काउंटर एक्सचेंज'
9.9 व्युत्पन्न पत्रकों का व्यापार
9.10 सारांश
9.11 शब्दावली
9.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें
9.13 बोध प्रश्नो के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- भारत में स्टॉक एक्सचेंजों की व्याख्या कर सकेंगे,
- स्टॉक एक्सचेंजों में व्यापार, भुगतान और अंतरण प्रणाली का वर्गीकरण कर सकेंगे,
- प्रतिभूतियों के अमूर्तकरण का विश्लेषण कर सकेंगे,
- नेशनल स्टॉक एक्सचेंज और भारत के ओवर दि काउंटर एक्सचेंज की कार्यप्रणाली का विवरण दे सकेंगे, और
- भारत में व्युत्पन्न पत्रक व्यापार व्यवस्था के उद्धरण दे सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

हमने इकाई 8 में देखा है कि पूँजी बाजार का सरोकार आम तौर पर सामान्य शेयर्स, अधिमान शेयर्स, बोन्ड्स और ऋण पत्रों जैसी प्रतिभूतियों से होता है। हम यह भी जानते हैं कि प्रतिभूति बाजार दो हिस्सें में विभाजित है: प्राथमिक बाजार और आनुषंगिक बाजार।

प्रतिभूतियों का आनुषंगिक बाजार पूँजी बाजार का महत्वपूर्ण अवयव है। यही वह बाजार है जहाँ शेयरों, बांडों, ऋण पत्रों तथा अन्य प्रतिभूतियों का लेन-देन होता है। एक बार इन प्रतिभूतियों के लिए जनता द्वारा अभिदान होने के बाद इनका निर्गम हो जाता है तो बाद में इनके सारे क्रय-विक्रय जनता के बीच ही होते हैं। इस प्रकार की प्रतिभूतियों के बाजार को ही स्टॉक एक्सचेंज कहते हैं।

स्टॉक मार्केट इन प्रतिभूतियों को तरलता प्रदान करते हैं। इस प्रकार बदले में एक सक्रिय आनुषंगिक बाजार निवेशकों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करते हैं कि वे प्राथमिक बाजार में प्रतिभूतियों का अभिदान करें। इसलिए प्राथमिक बाजार का विकास काफी हद तक जीवंत आनुषंगिक बाजार पर निर्भर होता है।

9.2 भारत में स्टॉक एक्सचेंज

वह बाजार जहाँ प्रतिभूतियों का सौदा होता है, उसे स्टॉक एक्सचेंज कहते हैं। अभी देश में 23 स्टॉक एक्सचेंज हैं। बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज (बीएसई) भारत का सबसे पुराना और प्रमुख स्टॉक एक्सचेंज हैं। पिछले दशक के दौरान देशभर में फैली अपनी व्यापक शाखाओं के कारण नेशनल स्टॉक एक्सचेंज (एन एस ई) देश का प्रमुख स्टॉक एक्सचेंज हो गया है। एक अन्य नया देशव्यापी एक्सचेंज है 'भारत का अवर दि काउंटर एक्सचेंज (आई सी ई आई)'।

DIKSHANT IAS
Call us @ 7428092240

भारत में स्टॉक एक्सचेंज या तो मुनाफा न कमाने वाले स्वैच्छिक संगठनों के रूप में या पब्लिक लिमिटेड कंपनियों के रूप में संगठित हैं जो शेयरों और गारंटियों द्वारा सीमित हैं। स्टॉक एक्सचेंज को केंद्र सरकार के पास पंजीकृत होना चाहिए और इन्हें सिक्योरिटीज कान्ट्रेक्ट्स (रेगुलेशन) एक्ट, 1956 (एस सी आर ए) की सीमा में काम करना होता है। यह एक्ट संगठन, प्रबंधन, सदस्यता और स्टॉक एक्सचेंजों के कामकाज को संचारित करता है। इसके अलावा स्टॉक एक्सचेंज अपने खुद के नियमों और उपनियमों से संचालित होता है। भारतीय विनिमय एवं प्रतिभूति बोर्ड (सेबी) स्टॉक एक्सचेंजों और इनमें भाग लेने वालों के काम काज पर निगरानी रखता है। मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज का प्रबंधन एक प्रबंध मंडल के जरिए होता है जिसमें निर्वाचित और नामजद सदस्य होते हैं। एक्सचेंज के मुख्य कार्यकारी का काम कार्यकारी निदेशक करता है।

9.3 व्यापार प्रणाली

स्टॉक एक्सचेंज में प्रतिभूतियों का निपटान परंपरागत तौर पर स्टॉक एक्सचेंज के व्यापार पटल पर किया जाता है। इस परंपरागत प्रणाली के स्थान पर अब आम तौर पर कम्प्यूटरीकृत 'ऑनलाइन व्यापार प्रणाली' का इस्तेमाल हो रहा है। हम पहले व्यापार की परंपरागत प्रणाली के बारे में और फिर नयी 'ऑनलाइन प्रणाली' के बारे में चर्चा करेंगे।

9.3.1 परंपरागत व्यापार प्रणाली

स्टॉक एक्सचेंज में केवल सूचीबद्ध प्रतिभूतियों के ही कारोबार की अनुमति दी जाती

है। 'प्रतिभूतियों की लिस्टिंग' का अर्थ यह है कि संबद्ध प्रतिभूति को उन प्रतिभूतियों की सूची में शामिल कर लिया गया है जिसका लेन-देन स्टॉक एक्सचेंज में होना है। इसलिए सार्वजनिक निर्गम के समय कंपनियाँ घोषणा करती हैं कि संबंद्ध प्रतिभूति या तो एक अथवा अनेक स्टॉक एक्सचेंजों में सूचीबद्ध है अथवा इस उद्देश्य के लिए आवेदन किया गया है। सूचीबद्ध प्रतिभूतियाँ दो वर्गों में होती हैं:

1) **नकद सूची :** इसमें तुरंत हस्तांतरण की व्यवस्था होती है, और

2) **अग्रिम सूची :** इसमें अग्रिम व्यापार सुविधा होती है।

किसी भी प्रतिभूति को स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध किया जा सकता है बशर्ते इसे जारी करने वाली कंपनी निर्धारित शर्तों को पूरा करती हो।

स्टॉक एक्सचेंजों में लेन-देन का काम दलालों के जरिए होता है। आजकल दलालों का नियमन भी भारतीय विनिमय एवं प्रतिभूति बोर्ड (सेबी) द्वारा होता है। अगर कोई व्यक्ति किसी कंपनी के शेयर/बांड खरीदना चाहता है तो वह अपना क्रयादेश (order) स्टॉक एक्सचेंज में पंजीकृत दलाल के जरिए देता है। दलाल का अधिकृत कर्मचारी ग्राहक के आदेश को स्टॉक एसक्चेंज के ट्रेडिंग फ्लोर तक पहुँचाता है और इसके लिए वह किसी अन्य दलाल या उसके सहायक (jobber) 'जॉबर' के साथ लेनदेन करता है। जॉबर वह व्यक्ति होता है जो दो तरह के मूल्य बनाता है 'लेवाली दाम' और 'बिकवाली दाम'। वह लेनदेन को अंतिम रूप दिए जाने के बाद इसे बहियों में दर्ज कर लेता है। इसके बाद अनुबंध पत्र तैयार किए जाते हैं और इन्हें ग्राहक को उसके द्वारा किए गए लेनेदन की जानकारी देते हुए भेज दिया जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.3.2 ऑन-लाइन व्यापार प्रणाली

ऑन लाइन व्यापार प्रणाली के शुरू होने से महत्वपूर्ण क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। इसने परंपरागत प्रणाली का स्थान ले लिया है। इस प्रणाली की शुरुआत बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज ने की जिसे 'बाम्बे स्टॉक एक्सचेंज ऑन लाइन ट्रेडिंग' (बी ओ एल टी) के नाम से जाना जाता है।

ऑन लाइन व्यापार प्रणाली के अंतर्गत ट्रेडिंग फ्लोर पर की जाने वाली सौदेबाजी को खत्म कर दिया गया है। दलाल लोग अपने कंप्यूटरों के जरिए लेन-देन का काम करते हैं। इनके कंप्यूटर बी एस ए टी (वेरी स्मॉल एपरचर टर्मीनल्स) के जरिए स्टॉक एक्सचेंज के मुख्य कंप्यूटर से जुड़े होते हैं। वी एस ए टीज ने कई केंद्रों से काम शुरू कर दिया है। इस सुविधा को उन अन्य शहरों तक भी विस्तारित किया गया है जहाँ पहले से स्टॉक एक्सचेंज मौजूद हैं। बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज तथा अन्य स्टॉक एक्सचेंजों के बीच एक आशय पत्र (मेमोरेंडम ऑफ अंडरस्टेंडिंग) पर हस्ताक्षर किए जाते हैं जिससे बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज को उनके इलाकों में अपने टर्मिनल स्थापित करने की छूट मिलती है।

ऑन लाइन ट्रेडिंग की कार्यपद्धति बहुत सरल है। जैसे ही दलाल को अपने ग्राहक से कोई आदेश प्राप्त होता है, वह सारा ब्यौरा कंप्यूटर में डाल देता है अर्थात् कंपनी का नाम, खरीदे/बेचे जाने वाले शेयरों की संख्या, अंतिम मूल्य अथवा वह मूल्य जिस पर लेन देन होना है और वह समय सीमा जिसके अंतर्गत इसे पूरा किया जाना है। कंप्यूटर

का स्क्रीन संबद्ध प्रतिभूति के संदर्भ में मौजूदा विवरण को पूरी तरह प्रदर्शित करता है। अगर उस समय की स्थिति लेन देन में मददगार नहीं होती है तो कंप्यूटर उक्त ऑर्डर को रखे रहता है और बीच-बीच में उस समय की स्थिति से तब तक मिलान करता रहता है जब तक ग्राहक के अनुकूल भाव न हो जाय। इसका अर्थ यह है कि जैसे ही वांछित मूल्य पर बिक्री के लिए वांछित शेयर उपलब्ध होते हैं, सौदा कर लिया जाता है और कंप्यूटर के स्क्रीन पर यह जानकारी आ जाती है कि लेन देन का काम पूरा हो गया। इसके बाद दलाल अनुबंध पत्र जारी करता है।

ऑन लाइन व्यापार प्रणाली के कई लाभ हैं। इससे प्रतिभूति बाजार में पारदर्शिता आती है क्योंकि इसमें ग्राहक खुद ही स्क्रीन पर बाजार मूल्य देख सकता है। इसने प्रतिभूति बाजार को व्यापक और गंभीर बना दिया है। यह विभिन्न केंद्रों में फैले निवेशकों की अपेक्षाकृत ज्यादा संख्या को सेवाएँ दे पाता है और ज्यादा से ज्यादा प्रतिभूतियों को अपने अंतर्गत लेता है। यह विभिन्न केंद्रों/बाजारों में प्रतिभूतियों की कीमतों के अंतर को भी कम करता है। यह अत्यंत सुविधाजनक और कार्यकुशल है।

अन्य स्टॉक एक्सचेंजों को इस बात की अनुमति दी गयी है कि वे कंप्यूटरीकृत स्क्रीन पर आधारित व्यापार प्रणाली अपने यहाँ शुरू करें। वे इसे कुछ शर्तों के अधीन रहते हुए देश भर में फैला सकते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) स्टॉक एक्सचेंज से आप क्या समझते हैं? इन पर किनका नियंत्रण होता है?

.....

.....

.....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) किसी स्टॉक एक्सचेंज में परंपरागत व्यापार प्रणाली को संक्षेप में बताइए।

.....

.....

.....

3) 'ऑन लाइन व्यापार प्रणाली' से आप क्या समझते हैं? इसके क्या लाभ हैं?

.....

.....

.....

9.4 बिकी हुई प्रतिभूतियों के लिए भुगतान पद्धति (Settlement Procedure for Traded Securities)

भुगतान की दृष्टि से प्रतिभूतियों को दो समूहों में बाँटा गया है :

1) **उल्लिखित प्रतिभूतियों** में बड़े विकास की ओर उन्मुख कंपनियों के ट्रेडेड शेयर्स शामिल हैं। केवल सीमित शेयरों की संख्या इस समूह के अंतर्गत आती है लेकिन वे भारतीय स्टॉक मार्केट के पूंजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

2) **अनुल्लिखित प्रतिभूतियों** में वे प्रतिभूतियाँ शामिल हैं जो उल्लिखित नहीं हैं।

उल्लिखित प्रतिभूतियों के लेन देन के निपटान के दो तरीके हैं:

1) **आगे ले जाने की प्रणाली :** इस प्रणाली के अंतर्गत लेनदेन का निपटारा प्रत्येक निपटारे की अवधि के अंत में किया जाता है जो आम तौर पर शुक्रवार से शुरू होकर बाद वाले सप्ताह के बृहस्पतिवार को समाप्त होता है और इस प्रकार यह दो सप्ताह का होता है। शुक्रवार को निपटारे की अवधि की समाप्ति पर सदस्य यह फैसला करते हैं कि लेनदेन का काम सम्पन्न हो गया या इसे अभी आगे बढ़ाना है। लेनदेन के काम को आगे बढ़ाने को 'बदला' कहते हैं।

   उल्लिखित प्रतिभूतियों के मामले में 'बदला' की अनुमति नहीं दी जाती। क्लियरिंग हाऊस रुपए-पैसे वाले हिस्से को देखता है और प्रतिभूतियों के वास्तविक हस्तांतरण की देखभाल का काम खुद सदस्यों द्वारा किया जाता है।

   बदला प्रणाली अथवा आगे बढ़ाने की प्रणाली 13 दिसम्बर 1993 को समाप्त कर दी गयी थी। अक्तूबर 1997 में सेबी ने संशोधित 'कैरी फारवर्ड सिस्टम' की शुरुआत की। अंततः सेबी ने 2 जुलाई 2001 को 'बदला' पर प्रतिबंध लगा दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @ 7428092240

2) **रोलिंग सेटिलमेंट प्रणाली:** जनवरी 1998 में सेबी ने स्टॉक एक्सचेंजों में स्वैच्छिक आधार पर उन प्रतिभूतियों के लिए रोलिंग सेटिलमेंट प्रणाली की शुरुआत की जो अमूर्त व्यापार के योग्य थीं। जनवरी 2000 में 10 पावती पत्रों के लिए अनिवार्य रोलिंग सेटिलमेंट की शुरुआत हुई। मई 2000 तक इस तरह के पावती पत्रों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ाकर 163 कर दी गयी और दो जुलाई 2001 से यह बढ़कर 251 हो गयी। 31 दिसंबर 2001 तक रोलिंग सेटिलमेंट का विस्तार सभी स्टॉक एक्सचेंजों में शेष पावती पत्रों के लिए कर दिया गया।

इस प्रकार रोलिंग सेटिलमेंट प्रणाली ने बदला प्रणाली का स्थान ले लिया। अब सभी पावती पत्रों की खरीद-फरोख्त रोलिंग सेटिलमेंट तरीके से होती है। शुरू में इसे टी + फाइव आधार पर किया जाता था। लेकिन 1 अप्रैल 2002 से निपटान चक्र सभी प्रतिभूतियों के लिए घटाकर टी + थ्री आधार पर कर दिया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रतिभूतियों का भुगतान और इसकी डिलिवरी लेनदेन वाली तिथि के तीन दिनों के अंदर सम्पन्न हो जाना चाहिए। इस प्रकार रोलिंग सेटिलमेंट प्रणाली स्टॉक मार्केट के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास है। इससे प्रतिभूतियों के बाजार की क्षमता और विश्वसनीयता में वृद्धि होगी।

सदस्यों द्वारा भुगतान और डिलीवरी का काम स्टॉक एक्सचेंज के क्लियरिंग हाउस के जरिए किया जाता है। स्टॉक एक्सचेंज द्वारा तय किए गए 'भुगतान जमा दिवस' के दिन वे चेक/ड्राफ्ट और प्रतिभूतियों का सर्टिफिकेट जमा करते हैं। इनकी जाँच करने के लिए क्लियरिंग हाउस इन सदस्यों को भुगतान प्राप्ति दिवस के दिन अर्थात् अगले बुधवार को सदस्यों को भुगतान करता है और प्रतिभूतियों के प्रमाण पत्र देता है।

स्टॉक एक्सचेंज में प्रतिभूतियों का व्यापार करने वाले दलालों की न्यूनतम अपेक्षाएँ भी पूरी करनी होती हैं। उन्हें खरीद-फरोख्त के प्रत्येक अनुबंध के लिए हर रोज़ नकद रूप में अंश राशि जमा करनी पड़ती है। आम तौर पर रोज़ाना की अंश राशि की दर पाँच प्रतिशत से पच्चीस प्रतिशत के बीच बदलती रहती है। इसकी गणना सदस्यों द्वारा की गई कुल खरीद-फरोख्त के आधार पर की जाती है। उन्हें स्टॉक एक्सचेंजों द्वारा लागू की गयी अन्य राशियों को भी जमा करना होता है।

9.5 हस्तांतरण प्रणाली

खरीददार को अंश पत्रों के प्रमाण पत्र प्रदान किए जाने के लेनदेन की प्रक्रिया पूरी हो जाने पर खरीददार के लिए ज़रूरी होता है कि वह शेयर सर्टिफिकेटों का हस्तांतरण अपने नाम पर कराए। इस कार्य के लिए हस्तांतरित करने वाले व्यक्ति को निर्धारित हस्तांतरण पत्रक पर हस्ताक्षर करना होता है। यह पूरी तरह स्टाम्प पेपर पर तिथि और गवाह के हस्ताक्षर के साथ होना चाहिए। इसके बाद इस पर उस व्यक्ति का हस्ताक्षर होना चाहिए जिसके नाम से इसे हस्तांतरित किया गया है और शेयर प्रमाणपत्रों के साथ इसे जारी करने वाली कंपनी (अथवा इसके उन रजिस्ट्रारों के पास जो अंशधारियों के रजिस्टर और हस्तांतरण का काम देखते हैं) को भेजा जाता है। कंपनी हस्तांतरण करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर का उसके नमूना हस्ताक्षरों (जो शेयरों के लिए आवेदन करने के समय लिया गया था) से मिलान करती है तथा अन्य ब्यौरों पर ध्यान देती है। अगर हर चीज़ ठीकठाक पायी गयी तो इन शेयरों को इच्छुक व्यक्ति के नाम पर हस्तांतरित कर दिया जाता है और शेयर सर्टिफिकेट के पीछे इस आशय का पृष्ठांकन कर दिया जाता है। सदस्यों के रजिस्टर में आवश्यक प्रविष्टियाँ भी कर दी जाती हैं। इसके बाद शेयर प्रमाणपत्रों को वापस उसे भेज दिया जाता है जिसके नाम इनका हस्तांतरण हुआ है। हस्तांतरण के इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए कंपनी को दो माह का समय दिया जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उपरोक्त तरीका शेयरों के हस्तांतरण का परंपरागत या दस्तूरी तरीका है। 'निक्षेपगार' की स्थापना के बाद अब अधिकांश शेयरों को कागज पत्रों के रूप में नहीं बल्कि अमूर्त रूप में रखा जाता है। जैसा नीचे बताया गया है, इस रूप में शेयरों का हस्तांतरण बहुत आसान हो गया है।

9.6 प्रतिभूतियों का अमूर्तकरण (Dematerialisation of Securities)

भारतीय पूँजी बाजार में जो महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं, उनमें प्रतिभूतियों के अमूर्तकरण की शुरुआत अत्यंत महत्वपूर्ण है। अमूर्तकरण का मतलब यह है कि प्रतिभूतियाँ अब अपने मूर्त रूप में अर्थात् शेयर/बांड सर्टिफिकेट के रूप में नहीं होतीं। बल्कि इस तरह की प्रतिभूतियों के रखने का ब्यौरा निक्षेपागार नामक संस्था के रजिस्टर में दर्ज कर दिया जाता है। जब भी कोई अंशधारी अपने शेयरों को किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित करता है तो वह निक्षेपागार को सूचित कर देता है और रजिस्टर में इस लेनदेन को दर्ज करने संबंधी ज़रूरी प्रविष्टियाँ कर दी जाती हैं। इस प्रकार हस्तांतरण की प्रक्रिया सुविधापूर्वक सम्पन्न हो जाती है। इस प्रक्रिया में शेयरों के भौतिक हस्तांतरण से जुड़े विभिन्न नुकसानों से बचाव हो जाता है।

जुलाई 1996 में निक्षेपागार, अधिनियम, 1996 के बनने तथा सेबी (डिपाजिटरी एंड पार्टिसिपेंट) रेगुलेशंस 1996 की अधिसूचना जारी होने से स्वामित्व के ब्यौरों को रजिस्टर में दर्ज करने के काम को एक कानूनी मान्यता मिल गयी है। डिपाजिटरी एक्ट, 1996 प्रतिभूतियों को अमूर्त करने की इजाजत देती है और इलेक्ट्रॉनिक रजिस्टर के जरिए प्रतिभूतियों के हस्तांतरण की सुविधा प्रदान करती है। इससे निपटान का जोखिम कम हो जाता है और अनेक ढाँचागत अवरोध दूर हो जाते हैं। अमूर्त प्रतिभूतियाँ प्रतिमोच्य होंगी अर्थात् उनकी कोई खास संख्या या विशिष्ट पहचान नहीं होगी।

निक्षेपागार अधिनियम सेबी को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह न्यासियों और भागीदारों का पंजीकरण कर सके तथा किसी न्यासी के उपनियमों में संशोधन कर सके। सेबी (निक्षेपागार एवं भागीदार) विनिमयन, 1996 की अधिसूचना के बाद राष्ट्रीय प्रतिभूति निक्षेपागार लिमिटेड (एन एस डी एल) की स्थापना की गयी। आई डी बी आई, यू टी आई और एन एस ई द्वारा प्रायोजित एन एस डी एल ने अक्तूबर 1996 से अपना काम शुरू किया। एन एस डी एल में अत्यंत उच्च कोटि की टेक्नॉलाजी और पेशेवर प्रबंधन है तथा इसने भारतीय पूंजी बाजार को ध्यान में रखते हुए प्रतिभूतियों के मामले में अंतर्राष्ट्रीय मानकों और चलन की शुरुआत की है। देश में प्रथम निक्षेपागार की स्थापना एक महत्वपूर्ण घटना है जिससे उम्मीद की जा रही है कि विकसित बाजारों के चलन के अनुरूप व्यापार और निपटान प्रणाली को उन्नत किया जाएगा। अमूर्तकरण के साथ लाने जाने तथा हस्तांतरण की त्रुटियों से उत्पन्न सभी समस्याएँ समाप्त हो जाती हैं और साथ ही मामूली बहानों की आड़ में हस्तांतरण से इंकार करने वाली कंपनियों के मनमाने अधिकारों पर भी अंकुश लग जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्टॉक मार्केटस में सूचीबद्ध लगभग 80 प्रतिशत पावती पत्रों को अक्तूबर 2001 तक अमूर्त कर दिया गया। अमूर्तकरण के लिए निवेशकों को किसी भी भागीदार के पास एक खाता खोलना होता है और शेयर प्रमाण पत्रों को कंपनी को वापस करना होता है। कंपनी इन्हें नष्ट कर देती है और निक्षेपागार द्वारा खाते की प्रविष्टियाँ इलेक्ट्रॉनिक ढंग से की जाती हैं।

9.7 नेशनल स्टॉक एक्सचेंज (NSE)

नेशनल स्टॉक एक्सचेंज (एन एस ई) की स्थापना स्टॉक ट्रेडिंग को राष्ट्रव्यापी सुविधा देने के लिए 1992 में की गयी। इसके प्रायोजक प्रमुख वित्तीय संस्थान जैसे आई डी बी आई, आई एफ सी आई, आई सी आई सी आई, एल आई सी , जी आई सी, सेबी केपिटल मार्केट्स लिमिटेड, स्टॉक होल्डिंग कार्पोरेशन ऑफ इंडिया और इन्फ्रास्ट्रक्चर लिजिंग एंड फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड हैं। यह पूरी तरह स्वचालित स्क्रीन आधार व्यापार प्रणाली प्रदान करता है।

एन एस ई के दो भाग हैं:

1) **थोक ऋण बाजार :** इस भाग में वित्तीय सेवाओं में लगे बैंकों की शाखाओं तथा कारपोरेट संस्थाओं सहित अन्य संस्थाएँ बड़े पैमाने पर लेनदेन में लग सकती हैं। इनका काम सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों के बांड पत्रों, हुंडियों, सरकारी प्रतिभूतियों,

यू टी आई की इकाइयों, व्यापारिक दस्तावेजों, जमा राशियों के प्रमाण पत्रों, चालू दर के बांडों आदि जैसे ऋण पत्रों से निपटना है। इसके सदस्य खुद अपनी ओर से और साथ ही अपने ग्राहकों की ओर से व्यापार कर सकते हैं।

2) **पूँजी बाजारः** इसके अंतर्गत परिवर्तनीय अथवा अपरिवर्तनीय ऋण पत्रों में सामान्य और फुटकर व्यापार किया जाता है और यह इक्विटीज से भी सरोकार रखता है। देशव्यापी निवेश आधार वाली मध्यम और बड़ी कंपनियों की प्रतिभूतियों को अन्य स्टॉक एक्सचेंजों में खरीदी-बेची जाने वाली प्रतिभूतियों के साथ रखा जाता है।

नेशनल स्टॉक एक्सचेंज के पास पूरी तरह स्वचालित स्क्रीन आधारित व्यापार प्रणाली है। यह 'वेरी स्माल अर्थ-बेस्ड एपरचर टर्मिनल' (बी एस ए टी) या टेलीफोन लाइनों के जरिए जुड़ी हुई है। एन ए सी का प्रत्येक सदस्य, देश के किसी भी हिस्से में अपने ऑफिस में लगे कंप्यूटर की मदद से अन्य सदस्यों के साथ व्यापार कर सकता है। वी एस ए टी का इस्तेमाल करने वाले सदस्यों का कंप्यूटरों के बीच सेटेलाइट के माध्यम से संबंध कायम किया गया है। इस कंप्यूटर नेटवर्क के जरिए किसी खास शेयर और कंपनी के बारे में सभी सदस्य बाजार से संबंधित सारी सूचनाएँ प्राप्त कर सकते हैं।

किसी भी तरह का लेनदेन करने के लिए व्यापार का इच्छुक सदस्य अपने कंप्यूटर में आदेश से संबंधित आँकड़े डालेगा और खरीद या बिक्री के लिए अपनी शर्तें बता देगा। मिसाल के तौर पर यह स्पष्ट कर सकता है कि मूल्य की सीमा क्या होनी चाहिए अथवा यह कह सकता है कि उसका ऑर्डर बाजार में उपलब्ध सर्वोत्तम मूल्य से मेल खाता हो या उसके द्वारा बताए गए मूल्य से बेहतर मूल्य पर हो। वह इस बात को भी स्पष्ट कर देगा कि कितने समय तक उसका ऑर्डर वैध रहेगा। एन एस ई की कंप्यूटर प्रणाली उस ऑर्डर के साथ सारी बातों का मेल बैठाएगी अर्थात् यह देखेगी कि एक निश्चित मूल्य पर किसी खास प्रतिभूति की खरीद का ऑर्डर ऐसे ऑर्डर से मेल खाता है या नहीं जो उसी प्रतिभूति को उसी मूल्य पर बेच रहा हो, आदि। इस प्रणाली में व्यापार करने वाले सदस्य के बारे में दूसरे सदस्य को कुछ भी नही बताया जाता।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) अविराम निपटान व्यवस्था (रोलिंग सेटेलमेंट सिस्टम) से आप क्या समझते हैं? इसके क्या लाभ हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) प्रतिभूतियों का अमूर्तकरण क्या है? इसके क्या लाभ हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) नेशनल स्टॉक एक्सचेज की क्या विशिष्टताएँ हैं?

.....

.....

.....

.....

9.8 भारत का 'ओवर द काउंटर एक्सचेंज' (ओ टी सी ई आई)

ओ टी सी ई आई भी पूरी तरह कम्प्यूटरीकृ , ापार पटल रहित, स्क्रीन आधारित और पूर्ण स्वचालित स्टॉक एक्सचेंज है। इसकी स्थापना 1990 में कंपनी अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत 8 वित्तीय संस्थानों द्वारा एक कंपनी के रूप में की गयी थी। इस संस्था का मुख्य लक्ष्य बाजार से आसान और सस्ते दर पर पूँजी जुटाकर उद्यमियों को अपनी परियोजनाएँ करने में मदद पहुँचाना था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428002240

अगर किसी कंपनी की प्रतिभूति का ओ टी सी ई आई में लेनदेन होना है तो इसे किसी प्रायोजक द्वारा प्रायोजित किया जाना चाहिए। कोई वित्तीय संस्थान, म्युचुअल फंड, अनुसूचित बैंक, इसके सहायक बैंक और सेबी द्वारा स्वीकृत मर्चेन्ट बैंकर इसके प्रायोजक हो सकते हैं। ये काफी महत्वपूर्ण इकाई हैं। ऐसी छोटी और मध्यम आकार की कंपनियाँ, जो अन्य स्टॉक एक्सचेंजों की लिस्टिंग ज़रूरतों को पूरा करने में (अर्थात् 3 करोड़ रुपए की न्यूनतम पूंजी आवश्यकता) असमर्थ हों उन्हें ओ टी सी ई आई का कोई भी प्रायोजक प्रायोजित कर सकता है बशर्ते इन्होंने 3 लाख रुपए और इससे अधिक की पूँजी का निर्गम किया हो।

प्रायोजक सदस्य से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह पावती पत्र अर्थात् वह मूल्य जिस पर वे प्रायोजित कंपनी की प्रतिभूति को खरीदने और बेचने के तैयार हों, को कम से कम 18 महीनों के लिए दोतरफा 'कोट' करेगा। इसके अतिरिक्त कोई और भी बाजार निर्माता हो सकता है जो पावती पत्र के लिए दोतरफा कोट करे। मुख्य लक्ष्य प्रतिभूति में निवेशकों का विश्वास पैदा करना तथा दोनों मूल्यों के बीच अंतर को और कम करना है।

प्रतिभूतियों में व्यापार सदस्यों और डीलरों की देशभर में फैली व्यवस्था के जरिए किया जाता है। कोई भी फर्म या कंपनी सेंट्रल ओ टी सी ई आई कंप्यूटर व्यवस्था से जुड़ी ओ टी सी ई आई काउंटर के लिए डीलर का काम कर सकती है। वे कंपनियों के लिए बाजार निर्माता का भी काम कर सकती हैं। कोई भी ऑर्डर देने से पहले निवेशक किसी भी प्रतिभूति के लिए डीलर के कम्प्यूटर स्क्रीन पर मूल्य तालिका देख सकते हैं। आदेश देने और मेल खाने के बाद कम्प्यूटरों द्वारा इसकी पुष्टि से संबंधित पर्ची

जारी होती है जिसमें लेनदेन का पूरा ब्यौरा दिया जाता है। ओ टी सी ई आई सूचीबद्ध प्रतिभूतियों के लिए टी+5 रोलिंग सेटिलमेंट सिस्टम तथा अनुमति प्राप्त प्रतिभूतियों के लिए साप्ताहिक सेटिलमेंट सिस्टम का पालन करता है।

ओ टी सी ई आई कंपनियों को उनकी प्रतिभूतियों के लिए देशव्यापी व्यापार की सुविधा प्रदान करता है और नए तथा छोटे उद्यमियों को अपनी कंपनियों के लिए कोष जुटाने के लिए प्रोत्साहन देता है। निवेशकों के लिए इस तरह के सौदों में पूर्ण पारदर्शिता होती है, लेनदेन की प्रक्रिया तेजी से सम्पन्न होती है और प्रायोजकों द्वारा दिए गए दोतरफा 'भावों' के जरिए तरलता प्रदान की जाती है।

इसके अलावा उन प्रतिभूतियों को ओ टी सी ई आई के साथ लेनदेन की अनुमति दी जाती है, जो ओ टी सी ई आई में दर्ज है (और जिनका किसी अन्य स्टॉक एक्सचेंज में लेनदेन नहीं हो सकता), जिनका अन्य स्टॉक एक्सचेंजों में नाम चढ़ा है तथा जो यू टी आई और पारस्परिक निधियों की यूनिटों से जुड़ी हैं। इन्हें 'स्वीकृत प्रतिभूतियाँ' कहा जाता है।

9.9 व्युत्पन्न पत्रकों का व्यापार

हाल के वर्षों (2000-01) के दौरान भारतीय स्टॉक मार्केट में एक महत्वपूर्ण विकास यह हुआ है कि इसने स्टॉक एक्सचेंजों में सामान्य व्युत्पन्न पत्रकों के व्यापार की शुरुआत की है। जिन व्युत्पन्न पत्रक उत्पादों को लेनदेन की अनुमति दी गयी है, उनमें अंश पूँजी निर्देशांक (इक्विटी इंडेक्स) तथा निजी स्टॉक्स दोनों पर 'ईप्सा' (options) तथा 'वायदे' शामिल हैं। इस प्रकार भारतीय स्टॉक मार्केट में चार व्युत्पन्न पत्रक उत्पाद उपलब्ध हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

समान व्युत्पन्न पत्रकों में व्यापार की शुरुआत एल.सी. गुप्ता कमेटी की सिफारिशों पर हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य अंश पूँजी धारकों को बाजार के जोखिम से बचाने की सुविधा प्रदान करना था। इसके अलावा अन्तरपणन लेनदेन के जरिए यह अंश पूँजी बाजार की तरलता और क्षमता को भी बढ़ाएगा।

व्युत्पन्न पत्रक शब्द से संकेत मिलता है कि इसका अपना कोई स्वतंत्र मूल्य नहीं है। इसका मूल्य किसी अन्य परिसंपत्ति से ग्रहण किया गया है खास तौर से किसी वित्तीय परिसंपत्ति से।

व्युत्पन्न पत्रकों को मोटे तौर पर 'ईप्सा' और 'वायदो' के रूप में वर्गीकृत करते हैं। भावी अनुबंध एक समझौता है जिसका सरोकार किसी खास प्रतिभूति की निश्चित संख्या को खरीदना या बेचना है ताकि भविष्य में एक निश्चित तिथि और निश्चित मूल्य पर उसका हस्तांतरण कर दिया जाए। इसमें किसी भावी तिथि में खरीद या बिक्री निश्चित है। भविष्य में किस मूल्य पर इस प्रतिभूति का लेनदेन होगा, वह भावी अनुबंध पर हस्ताक्षर के समय तय किया जाता है। नेशनल स्टॉक एक्सचेंज और बाम्बे स्टॉक एक्सचेंज में एक माह, दो माह और तीन माह की अवधि के लिए भावी अनुबंधों की अनुमति दी जाती है और इनकी वैधता संबद्ध महीने के अंतिम शुक्रवार को समाप्त हो जाती है। दोनों पक्षों से अपेक्षा की जाती है कि वे अनुबंध की शर्तों को पूरा करेंगे।

ईप्सित (आप्संस) अनुबंध ऐसे अनुबंध हैं जो किसी प्रतिभूतिधारी को यह अधिकार प्रदान करते हैं (लेकिन दायित्व नहीं) कि वह प्रतिभूतियों को पूर्व निर्धारित मूल्य पर किसी खास अवधि के अंदर या इसकी समाप्ति पर खरीद या बेच सके। अवधि समाप्ति की तिथि वह होगी जिस दिन ईप्सा अनुबंध पूरा होता है। खरीदने के अधिकार को 'क्रय ईप्सा' कहते हैं और बेचने के अधिकर को 'विक्रय ईप्सा'। जिस मूल्य पर किसी ईप्सा का प्रयोग किया जाता है, उसे प्रयोग मूल्य कहते हैं।

जो व्यक्ति इसे खरीदता है (अर्थात् बिक्री का अधिकार या खरीद का अधिकार) उसे ईप्सा का खरीददार कहते हैं। जो पक्ष ईप्सा खरीददार को यह अवसर प्रदान करता है उसे 'ईप्सादायी' कहते हैं। ईप्सा खरीददार को (जिसे ईप्साधारा भी कहते हैं) सारे अधिकार हासिल करने के लिए ईप्सादायी राइटर को ईप्सा अधिशुल्क का भुगतान करना होता है। यह अधिशुल्क के खरीददार के लिए एक बारगी भुगतान है।

ईप्सा के खरीददार के लिए ऐसा कोई बंधन नहीं है कि वह अभ्यास मूल्य पर ही खरीदे या बेचे। वैसा तभी करेगा अगर इससे उसे लाभ मिलता है। अन्यथा वह चाहेगा कि उसका ईप्साधिकार रद्द हो जाए। (अर्थात् वह बेचने या खरीदने के अपने अधिकर का इस्तेमाल नहीं करेगा।) इस तरह के मामलों में वह बस उस अधिशुल्क से वंचित रह जाएगा जो ईप्सा अनुबंध पर हस्ताक्षर के समय उसने दिया था। मिसाल के तौर पर क ने ख से ग कंपनी के एक शेयर के लिए ईप्सा खरीदी। उसे उसने 100 रुपए का प्रीमियम, 4500 रुपए के अभ्यास मूल्य पर खरीदा जिसकी मियाद एक महीने है। उस समय का बाजार मूल्य 4200 रुपए है। अगर एक महीने के बाद शेयर का मूल्य 4800 रुपए तक जाता है तो अगर खरीददार अपनी ईप्सा का इस्तेमाल करे तो उसे 200 रुपए (रुपया 4800-4500-100) का मुनाफा होगा। बिक्रेता 200 रुपए का नुकसान उठाएगा। इस प्रकार क्रय ईप्सा खरीदने वाले की जोखिम 100 रुपए तक सीमित रह गयी जो उसके द्वारा दी गई अधिशुल्क की राशि के बराबर है, जबकि उसे प्राप्त होने वाला लाभ असीमित है। (अर्थात् अनुबंध की मियाद पूरी होने के समय जो मूल्य है उस पर निर्भर करता है)। ईप्सादायी का जोखिम असीमित है जबकि उसका लाभ प्राप्त प्रीमियम की राशि तक सीमित रह गया है। प्रीमियम की राशि में बाजार की स्थितियों के हिसाब से उतार चढ़ाव आता रहता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428002240

भारत में व्युत्पन्न पत्रकों के व्यापार को नेशनल स्टॉक एक्सचेंज और बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज में इंडेक्स फ्यूचर्स एंड आप्संस तथा निजी फयूचर्स एंड आप्संस दोनों में छूट मिल गयी है। इस उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला इंडेक्स 'निफ्टी' और 'सेंसक्स' हैं। निफ्टी नेशनल स्टॉक एक्सचेंज में लेनदेन किए गए 50 शेयर मूल्यों का इंडेक्स है जबकि सेंसेक्स बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज में लेनदेन किए गए 30 शेयर मूल्यों का इंडेक्स है।

नेशनल स्टॉक एक्सचेंज में चार व्युत्पन्न पत्रकों के लेनदेन का कुल व्यापार 8700 करोड़ रुपए था जो नवंबर 2001 में बढ़कर 12919 करोड़ रुपए हो गया।

बोध प्रश्न 3

1) ओ टी सी आई क्या है? इसके क्या लक्ष्य हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) व्युत्पन्न पत्रकों से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) आप्सन और खरीद-फरोख्त करने के लिए अपनायी जाने वाली पद्धति की प्रक्रिया को बताएँ।

.....

.....

.....

.....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.10 सारांश

आनुवंशिक बाजार वह बाजार है जो शेयरों, बांडों ऋण पत्रों तथा अन्य प्रतिभूतियों के व्यापार में संलग्न है। इन प्रतिभूतियों के चलन, सदस्यता और निर्गम को स्टॉक मार्केट भी कहते हैं। प्राथमिक बाजार की प्रगति और विकास बहुत हद तक आनुवंशिक बाजार की प्रगति और विकास पर निर्भर है।

वह बाजार जहाँ प्रतिभूतियों की खरीद-फरोख्त होती है उसे स्टॉक एक्सचेंज कहते हैं। अभी भारत में 23 स्टॉक एक्सचेंज हैं। स्टॉक एक्सचेंजों में दो तरह की व्यापार प्रणाली हैं:

1) परंपरागत व्यापार प्रणाली, और

2) ऑन लाइन व्यापार प्रणाली

निर्धारित प्रतिभूतियों में खरीद-फरोख्त का काम दो सप्ताह की प्रत्येक निपटान अवधि के अंत में किया जाता है। अनिर्धारित प्रतिभूतियों के मामले में केवल मुद्रा वाला अंश क्लियरिंग हाउस की देखरेख में होता है। प्रतिभूतियों की वास्तविक डिलीवरी स्वयं सदस्यों द्वारा की जाती है। कैरी फारवर्ड सिस्टम (बदला) के स्थान पर जनवरी 1998 से रोलिंग सेटलमेंट सिस्टम शुरू कर दिया गया है।

शेयरों के हस्तांतरण के क्षेत्र में कई सुधार किए गए हैं। इनमें शामिल हैं: प्रतिभूतियों के अमूर्तकरण की शुरुआत, 1992 में नेशनल स्टॉक एक्सचेंज की स्थापना, कंपनी अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत 'ओवर द काउंटर एक्सचेंज ऑफ इंडिया' (ओ टी सी ई आई) की स्थापना, स्टॉक एक्सचेंजों में समान व्युत्पन्न पत्रकों में व्यापार की शुरुआत आदि-आदि।

भारत में नेशनल स्टॉक एक्सचेंज और बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज में सूचकाश्रित वायदों और ईप्साधिकरों तथा निजी फ्यूचर्स एंड आप्संस में व्युत्पन्न पत्रकों के व्यापार की छूट दे दी गयी है।

9.11 शब्दावली

बांड्स : बांड एक प्रतिभूति है जो किसी कंपनी, वित्तीय संस्थान या सरकार द्वारा जारी की जाती है जिसमें निश्चित दरों पर ब्याज के नियमित भुगतान का प्रस्ताव होता है।

व्यापार उत्कर्ष (तेजी) : बाजार की वह स्थिति जिससे मूल्य वृद्धि और प्रतिभूतियों की बढ़ती माँग के कारण व्यापार में हुई वृद्धि का पता चलता है।

दलाल : दलाल वह है जो संगठित प्रतिभूति बाजार में विभिन्न कार्य करता है। वह स्टॉक एक्सचेंज में खरीद-फरोख्त की व्यवस्था करता है। दलाल इस सारे काम के बदले एक कमीशन लेता है जिसे दलाली कहते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पुनः क्रय/वापस खरीद : कंपनी और इसके निवेशकों के बीच का समझौता जिसमें एक निश्चित मूल्य पर प्रतिभूतियों को वापस लेने का प्राविधान है।

क्रय ईप्सा (Call Option) : निर्धारित दर से अधिक पर खरीदने के अधिकर को कॉल आप्सन कहते हैं।

पूँजी बाजार : यह मूलतः प्रतिभूतियों तथा ऋण योग्य कोष के लिए दीर्घकालीन बाजार है।

ऋण पत्र : बांड और ऋण पत्र में बुनियादी तौर पर कोई फर्क नहीं है। आम तौर पर 'ऋण पत्र' शब्द का इस्तेमाल निजी क्षेत्र के व्यावसायिक, व्यापारिक और औद्योगिक ऋणों के संदर्भ में किया जाता है। 'बांड' शब्द का इस्तेमाल आम तौर पर केंद्र सरकार सहित सार्वजनिक क्षेत्र के लिए किए गए ऋण के संदर्भ में किया जाता है।

गहन बट्टा बांड (डीप डिस्काउंट बांड्स): यह बांड प्रारंभ में ही अंकित मूल्य के बट्टा पर जारी किया जाता है एवं परिपक्वता की तिथि पर अंकित मूल्य का भुगतान किया जाता है। इन्हें 'जीरो कूपन बांड' के नाम से भी जाना जाता है।

व्युत्पन्न पत्रक (Derivatives): व्युत्पन्न पत्रक ऐसे उत्पाद हैं जिनका खुद का कोई स्वतंत्र मूल्य नहीं है। इनका मूल्य इसमें निहित किसी अन्य परिसंपत्ति के मूल्य से निकलता है। मिसाल के तौर पर व्यक्तिगत शेयर व्युत्पन्न पत्रक के मामले में इसका मूल्य संबद्ध शेयर के मूल्य पर निर्भर करता है।

अंश पत्र : यह मुनाफे का वह हिस्सा है जिसका अंशधारियों को भुगतान किया जाता है।

भावी अनुबंध : यह किसी खास प्रतिभूति की निश्चित संख्या को खरीदने/बेचने से संबंधित समझौता है जिसका भविष्य में किसी निश्चित मूल्य पर एक निश्चित तिथि को हस्तातंरण होता है।

सूचीबद्ध प्रतिभूतियाँ : ये ऐसी प्रतिभूतियाँ हैं जो किसी स्टॉक एक्सचेंज की स्वीकृत सूची में स्थान पाती हैं। इन प्रतिभूतियों को 'कोटेड' प्रतिभूतियाँ भी कहते हैं।

ईप्सा (Options) : आप्सन एक अनुबंध है जो किसी धारक को यह अधिकार देता है कि वह एक निश्चित अवधि के अंदर अथवा अवधि की समाप्ति पर प्रतिभूतियों को पूर्व निर्धारित मूल्य पर खरीद या बेच सके।

ओवर द काउंटर निगोसिएशन : कभी-कभी का लेनदेन खरीददारों अथवा विक्रेताओं की ओर से काम करने वाले संबद्ध दलालों के बीच प्रत्यक्ष अंतक्रिया से होता है। लेनदेन की इस पद्धति को प्रतिभूतियों में 'ओवर द काउंटर' सौदा कहते हैं। इस तरह की लेनदेन की पद्धति में स्टॉक एक्सचेंज की कोई भूमिका नहीं होती।

पुट आप्सन : उपरोक्त तरीके से बेचने के अधिकार को पुट आप्सन कहते हैं।

भारतीय विनिमय एवं प्रतिभूति बोर्ड (सेबी) : इसकी स्थापना भारत सरकार ने अप्रैल 1988 में की। इसका उद्देश्य प्रतिभूति बाजार के स्वस्थ और व्यवस्थित विकास को बढ़ावा देना तथा निवेशकों के संरक्षण को सुनिश्चित करना है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उप-विभाजन : बड़े मूल्य वर्ग के शेयरों का छोटे मूल्य वर्ग के शेयरों में उप-विभाजन। इसका अर्थ सब डिवीजन ऑफ होल्डिंग भी है।

स्टॉक एक्सचेंज : यह एक मान्यता प्राप्त संगठन है जो केवल 'सूचीबद्ध' प्रतिभूतियों के लेनदेन की देखभाल करता है।

उतार-चढ़ाव : एक निश्चित अवधि के दौरान किसी प्रतिभूति के मूल्य में उतार-चढ़ाव।

9.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

आरबंच, आर.डी., (1983) : *फाइनेंशियल मार्केट्स एंड इंस्टीट्यूसंस,* मैकमिलन पब्लिशिंग कंपनी, न्यूयार्क

भोले, एल.एम. (1999) : *फाइनेंशियल इंस्टीट्यूसंस एंड मार्केट,* टाटा मैकग्रा पब्लिशिंग कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली।

गुप्ता, एस.बी. (1995) : *मानिटरी इकॉनामिक्स-इंस्टीट्यूसंस, थ्योरी एंड पॉलिसी,* एस. चांद एंड कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली।

खान, एम.वाई. (1985) : *इंडियन फाइनेंशियल सिस्टम : थ्योरी एंड प्रेक्टिस,* विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली।

वार्ष्णेय, पी.एन. और मित्तल, डी.के., (2002 संस्करण) : *इंडियन फाइनेंशियल सिस्टम*, सुल्तान चंद एंड संस, नई दिल्ली।

9.13 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) स्टॉक एक्सचेंज का आशय उस बाजार से है जहाँ प्रतिभूतियों का सौदा होता है। भारतीय विनिमय एवं प्रतिभूति बोर्ड (सेबी) स्टॉक एक्सचेंजों को नियंत्रित और संचालित करता है।

2) दलालों के जरिए स्टॉक एक्सचेंजों के ट्रेडिंग फ्लोर पर प्रतिभूतियों का लेनदेन स्टॉक एक्सचेंजों की परम्परागत प्रणाली है।

3) दलालों द्वारा कंप्यूटरों के जरिए (जो स्टॉक एक्सचेंजों के मुख्य कम्प्यूटर से भी एस ए टी के जरिए जुड़े होते हैं) प्रतिभूतियों के लेनदेन के काम को 'ऑन लाइन ट्रेडिंग सिस्टम' कहते हैं। ऑन लाइन ट्रेडिंग सिस्टम के निम्न लाभ हैं :

   क) प्रतिभूतियों के बाजार को और पारदर्शी बना दिया जाता है,

   ख) अत्यंत सुविधाजनक, तेज और कार्यकुशल,

   ग) ग्राहकों/डीलरों की बड़ी संख्या तक आसान पहुँच।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) रोलिंग सेटेलमेंट सिस्टम से तात्पर्य डीमाट ट्रेडिंग की योग्य प्रतिभूतियों के लिए स्टॉक एक्सचेंजों में स्वैच्छिक आधार पर लेनदेन करने की पद्धति से है। इस प्रणाली के लाभ इस प्रकार हैं :

   क) भुगतान में और प्रतिभूतियों की डिलीवरी में तेजी,

   ख) प्रतिभूतियों के बाजार में क्षमता और ईमानदारी में वृद्धि।

2) प्रतिभूतियों के अमूर्तकरण का अर्थ प्रतिभूतियों को केवल अंकित तौर पर रखना न कि भौतिक तौर पर अर्थात शेयर बांड सर्टिफिकेट के तौर पर। इसके लाभ इस प्रकार हैं :

   क) एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में खोने की समस्या से बचाव,

   ख) हस्तांतरण से इनकार करने वाली कंपनियों के मनमाने अधिकार से छुटकारा,

   ग) डिलीवरी की समस्या का समाधान।

3) देखें भाग 9.7

बोध प्रश्न 3

1) ओ टी सी ई आई अर्थात ओवर दि काउंटर एक्सचेंज ऑफ इंडिया कम्प्यूटरीकृत, स्क्रीन आधारित, स्वचालित स्टॉक एक्सचेंज है जिसे कंपनी अधिनियम की धारा

25 के अधीन स्थापित किया गया है। इसका उद्देश्य किसी वित्तीय संस्थान के जरिए प्रायोजित कर बाजार से आसान और सस्ते दर पर कोष जुटा कर उद्यमियों को अपनी परियोजनाएँ स्थापित करने में मदद पहुँचाना है।

2) व्युत्पन्न पत्रकों से तात्पर्य उन उत्पादों से है जिनका खुद का कोई स्वतंत्र मूल्य नहीं है। इसका मूल्य इसमें निहित किसी अन्य परिसंपत्ति के मूल्य से प्राप्त किया जाता है।

3) देखें भाग 9.9।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 10 पूँजी बाजारों का नियामक ढाँचा

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 सेबी के कार्य
10.3 सेबी अधिनियम, 1992 के अंतर्गत सेबी के अधिकार
10.4 प्रतिभूति अनुबंध (नियमन) अधिनियम, 1956 के अंतर्गत सेबी के अधिकार
10.5 सेबी का संगठनात्मक ढाँचा
10.6 प्रकटीकरण (Disclosure) तथा निवेशकों के संरक्षण के लिए दिशा-निर्देश
10.7 नये निर्गमों का स्वतंत्र मूल्य निर्धारण
10.8 नये निर्गमों के लिए प्रवेश के नियम
10.9 प्राथमिक/मुख्य पूँजी बाजार में सुधार
10.10 आनुषंगिक पूँजी बाजार में सुधार
10.11 अंतरंगी कारोबार (इनसाइडर ट्रेडिंग) का नियमन
10.12 प्रतिभूति निक्षेपागरों (डिपॉजिटरीज) और भागीदारों का नियमन
10.13 उल्लेखनीय अंशपूंजी का अधिग्रहण और कंपनी को हस्तगत करना
10.14 सारांश
10.15 शब्दावली
10.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें
10.17 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- भारत में पूँजी बाजार को संचालित करने वाले विनियमन संबंधी ढाँचे से स्वयं को परिचित कर सकेंगे,
- आप बता सकेंगे कि व्यवस्थित करने वाले प्राधिकरण के रूप में सेबी के पास कौन-से कानूनी अधिकार हैं,
- यह बता सकेंगे कि नये निर्गमों के स्वतंत्र मूल्य निर्धारण तथा नये निर्गमों की प्रविष्टि के लिए कौन-सी शर्तें हैं,
- प्राथमिक और गौण पूँजी बाजार में शुरू किए गए सुधारों पर विचार कर सकेंगे, तथा
- अंतरंगी कारोबार को नियमित करने के उपायों को संक्षेप में बता सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

हमने इकाई 8 और 9 में उन सुधारों की जानकारी प्राप्त की है जिन्हें पूँजी बाजार के दोनों क्षेत्रों अर्थात् प्राथमिक बाजार और आनुषंगिक बाजार में शुरू किया गया है।

अर्थव्यवस्था में पूँजी बाजार की भूमिका तथा इसके महत्व को आमतौर पर तथा अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण के संदर्भ में खासतौर पर सुधारों की ढुलमुल प्रकृति को ध्यान में रखते हुए पूँजी बाजार को; व्यवस्थित करना बहुत ज़रूरी है। दोनों क्षेत्र तथा इनसे संबद्ध विभिन्न भागीदार फिलहाल भारतीय विनिमय एवं प्रतिभूति बोर्ड (सेबी) जैसे एक प्राधिकरण की देखरेख में कार्य करते हैं। 12 अप्रैल 1988 को भारत सरकार के एक प्रस्ताव के तहत सेबी अस्तित्व में आया। बाद में भारतीय विनिमय एवं प्रतिभूति बोर्ड अधिनियम, 1992 के रूप में कानून बनने के बाद इसे वैधानिक तौर पर मान्यता मिली।

सेबी का गठन एक निगमित संस्था के रूप में हुआ। इसके एक अध्यक्ष हैं। भारत सरकार तथा भारत के रिजर्व बैंक के दो-दो अधिकारी इसके सदस्य हैं। इनके अलावा इसमें भारत सरकार द्वारा नियुक्त दो अन्य सदस्य भी हैं।

10.2 सेबी के कार्य

प्रतिभूतियों के बाजार का नियमन करने हेतु विनियमकारी प्राधिकरण के रूप में सेबी का निर्माण किया गया है। इसे निम्न जिम्मेदारियाँ सौंपी गई हैं :

1) प्रतिभूतियों में निवेशकों के हितों की रक्षा करना,

2) प्रतिभूति बाजार के विकास को बढ़ावा देना, और

3) प्रतिभूति बाजार का नियमन करना,

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस प्रकार सेबी न केवल नियामक का बल्कि प्रतिभूति बाजार को प्रोत्साहन देने का भी काम करती है। अधिनियम की धारा 11 (2) में बताया गया है कि सेबी की गतिविधियाँ निम्न होंगी :

क) स्टॉक एक्सचेंजों तथा अन्य प्रतिभूति बाजारों में कारोबार को व्यवस्थित करना,

ख) स्टॉक के दलालों, उप-दलालों, शेयर हस्तांतरित करने वाले एजेंटों, किसी निर्गम के बैंकरों, न्याय पत्रों के न्यासियों, किसी निर्गम के रजिस्ट्रारों, मर्चेंट बैंकरों, हामीदारों, पत्रागार प्रबंधकों, निवेश सलाहकारों तथा ऐसे अन्य बिचौलियों के, जो किसी भी रूप में प्रतिभूति बाजारों से संबद्ध हों, कामों को दर्ज करना तथा व्यवस्थिता करना।

ग) न्यासीधारियों, भागीदारों, प्रतिभूतियों को परिरक्षकों, विदेशी संस्थागत निवेशकों, ऋण निर्धारक एजेंसियों तथा किसी अन्य बिचौलियों के कार्य को दर्ज करना और व्यवस्थित करना।

घ) उद्यम पूँजी कोषों तथा अन्योन्य निधियों सहित सामूहिक निवेश योजनाओं के कार्य को दर्ज करना और व्यवस्थिता करना।

च) स्व-विनियमकारी संगठनों को प्रोत्साहन देना और व्यवस्थित करना।

छ) प्रतिभूति बाजारों से संबद्ध धोखाधड़ी तथा जालसाजी भरे कामों पर रोक लगाना।

ज) निवेशकों की शिक्षा तथा प्रतिभूति बाजारों के बिचौलियों कें प्रशिक्षण को प्रोत्साहित करना।

झ) प्रतिभूतियों में अंतरंगी कारोबार (इनसाइडर ट्रेडिंग) पर रोक लगाना।

ट) शेयरों के उल्लेखनीय अभिग्रहण तथा कंपनियों के अधीनीकरण (टेकओवर) को व्यवस्थित करना।

ठ) कंपनियों से सूचनाएँ प्राप्त करना, उपक्रमों का निरीक्षण करना, स्टॉक एक्सचेन्जों, पारस्परिक निधियों तथा प्रतिभूति बाजारों से जुड़े व्यक्तियों और बिचौलियों एवं प्रतिभूति बाजार में काम कर रहे स्व-विनियमकारी संगठनों का ऑडिट और निरीक्षण करना।

ड) इस तरह के कार्यों को सम्पन्न करना और उन अधिकारों को लागू करना जो उसे सिक्योरिटीज कांट्रैक्ट्स (रेगुलेशन) एक्ट 1956 के प्रावधानों के अंतर्गत प्राप्त हैं अथवा केंद्र सरकार द्वारा दिए गए हैं।

ढ) धारा 11 के उद्देश्यों को लागू करने के लिए फीस तथा अन्य शुल्क लगाना।

त) उपरोक्त उद्देश्यों के लिए शोध करना।

थ) अपने कार्यों को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए, जिस सूचना को वह आवश्यक समझे, को प्राप्त करने के लिए इस तरह की किसी भी एजेंसी की सेवा ले सकती है जिसका उल्लेख बोर्ड ने किया हो।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

द) अन्य निर्धारित कार्यों को सम्पन्न करना।

10.3 सेबी अधिनियम, 1992 को अंतर्गत सेबी के अधिकार

भारतीय विनिमय एवं प्रतिभूति बोर्ड को सेबी अधिनियम के अंतर्गत निम्नांकित अधिकार प्रदान किए गए हैं :

i) बिचौलियों को पंजीकरण प्रमाणपत्र देने का अधिकार

कानून की धारा 12 में प्रतिभूति बाजार से संबद्ध विभिन्न बिचौलियों के लिए अनिवार्य पंजीकरण का प्रावधान है। इसलिए इन सभी बिचौलियों के लिए ज़रूरी है कि वे प्रतिभूतियों की खरीद, बिक्री या इससे संबद्ध कोई भी काम तभी करें जब सेबी द्वारा उन्हें पंजीकरण प्रमाणपत्र प्राप्त हो गया हो। यह नियम इन सब पर लागू होता है— स्टॉक के दलाल, उप-दलाल, शेयरों का हस्तांतरण करने वाले एजेंट, किसी निर्गम के बैंकर, न्यासपत्र के न्यासी, किसी निर्गम के रजिस्ट्रार, मर्चेंट बैंकर, हामीदार, पत्रागार प्रबंधक मैनेजर, निवेश सलाहकार, डिपॉजिटरी भागीदार, प्रतिभूतियों के अभिरक्षक, विदेशी संस्थागत निवेशक, ऋण निर्धारक एजेंसी तथा इस तरह की अन्य कोई एजेंसी।

सेबी को इस बात का भी अधिकार है कि वह किसी के पंजीकरण प्रमाण पत्र को स्थगित अथवा रद्द कर दे। लेकिन इससे पहले संबद्ध पक्ष को अपनी बात कहने का उचित अवसर दिया जाना चाहिए।

ii) **उद्यम पूँजी कोषों और सामूहिक निवेश योजनाओं का पंजीकरण**

इस कानून के अनुसार कोई उद्यम पूँजी कोष तथा अन्योन्य निधि कोष (Mutual Funds) सहित सामूहिक निवेश योजना चलाने अथवा प्रायोजित करने के लिए सेबी से पंजीकरण प्रमाणपत्र प्राप्त करना जरूरी है।

iii) **बिचौलियों को निर्देश जारी करने का अधिकार**

यह कानून सेबी को इस बात का अधिकार देता है कि वह किसी व्यक्ति को या उपरोक्त (1) में उल्लिखित व्यक्ति समूह को या प्रतिभूति बाजार से संबद्ध किसी को भी निर्देश जारी करे बशर्ते सेबी इस बात से संतुष्ट हो कि इन निर्देशों को जारी करना जरूरी है :

क) निवेशकों के हित में अथवा प्रतिभूति बाजार को व्यवस्थित विकास के लिए, या

ख) ऊपर उल्लिखित बिचौलियों/व्यक्तियों के ऐसे किसी काम को रोकने के लिए जो निवेशकों अथवा प्रतिभूति बाजार के हितों के विरूद्ध हों, अथवा

ग) ऐसे किसी बिचौलिये या व्यक्ति से उचित प्रबंधन पाने के लिए।

iv) **कंपनियों को निर्देश जारी करने का अधिकार**

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

निवेशकों के संरक्षण के लिए बोर्ड पूँजी निर्गम, प्रतिभूतियों के हस्तांतरण तथा अन्य प्रासंगिक मामलों का अलग उल्लेख कर सकता है जिसे कंपनियों के सामने उद्घाटित कर दिया जाएगा और यह भी तय होगा कि इसके लिए कौन-सा तरीका अपनाया जाए।

v) **दण्ड देने का अधिकार**

कानून के अधीन विभिन्न गड़बड़ियों या अपराधों की जाँच करने और फिर दण्ड निर्धारित करने के लिए सेबी अपने किसी अधिकारी को न्याय अधिकारी (एडजुडिकेटिंग ऑफिसर) नियुक्त कर सकता है। पूँजी बाजार के बिचौलियों तथा अन्य भागीदारों को निर्धारित विविधनियमों के उल्लंघन के लिए उन पर आर्थिक दण्ड लगाया जा सकता है। न्याय अधिकारी के फैसलों के खिलाफ अपील पर सुनवाई के लिए एक 'एपिलेट ट्रिव्यूनल' भी स्थापित किया जा सकता है।

vi) **अनियमितताओं की जाँच का अधिकार**

सेबी को अनियमितताओं की जाँच का अधिकार है और इस उद्देश्य के लिए वह प्रतिभूति बाजार से संबद्ध व्यक्तियों सहित सभी तरह के बिचौलियों को हाजिर होने के लिए सम्मन तामील कर सकता है या उनसे उनके दस्तावेजों की माँग कर सकता है। सेबी को यह अधिकार भी है कि वह निवेशकों को सुरक्षा प्रदान करने अथवा प्रतिभूति बाजार के व्यवस्थित विकास को ध्यान में रखते हुए उपरोक्त व्यक्तियों को निर्देश जारी करे।

10.4 प्रतिभूति अनुबंध (नियमन) अधिनियम, 1956 के अंतर्गत सेबी के अधिकार

प्रतिभूति अनुबंध (नियमन) अधिनियम, 1956 के तहत सरकार के पास जो निम्नांकित अधिकार हैं, उनका इस्तेमाल सेबी भी कर सकता है ताकि निवेशकों के हितों की और भी कारगर सुरक्षा सुनिश्चित हो सके और एक कार्यकुशल तथा सुव्यवस्थित स्टॉक मार्केट बन सके:

i) **स्टॉक एक्सचेजों को मान्यता**
किसी भी स्टॉक एक्सचेंज को सेबी मान्यता दे सकता है, बशर्ते वह इस बात से संतुष्ट हो कि :

क) स्टॉक एक्सचेंज के नियम एवं उपनियम उन शर्तों के अनुरूप हैं जिन्हें साफ सुधरे ढंग से काम सुनिश्चित करने तथा निवेशकों की रक्षा करने के लिए निर्धारित किया गया है, और

ख) स्टॉक एक्सचेंज ऐसी अन्य शर्तों का पालन करने को तैयार हैं जो कानून के उद्देश्यों को पूरा करने की दृष्टि से सरकार द्वारा लागू की जा सकती हैं। मान्यता देने के लिए कुछ ऐसी शर्तें भी लगायी जा सकती हैं जिनका संबंध सदस्यों की योग्यताओं, अनुबंध करने के तरीके, सरकार का प्रतिनिधित्व और हिसाब-किताब के रख-रखाव से है। ऐसे किसी स्टॉक एक्सचेंज को, जो मान्यता प्राप्त नहीं है, काम करने की अनुमति नहीं होगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रत्येक मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज समय-समय पर सेबी को अपने कामकाज का विवरण भेजेगा। सेबी को यह अधिकार भी है कि वह स्टॉक एक्सचेंज के शासी निकाय (गवर्निंग बॉडी) या इसके किसी भी सदस्य के कामकाज की जाँच के लिए एक या एक से अधिक व्यक्ति नियुक्त करे।

सेबी को अधिकार है कि व्यवसाय के हित को देखते हुए या जनहित में वह किसी स्टॉक एक्सचेंज को दी गयी मान्यता वापस ले ले। यह किसी स्टॉक एक्सचेंज के शासी निकाय का स्थान ले सकता है और किसी व्यक्ति/ व्यक्तियों को नियुक्त कर सकता है जिनके पास शासी निकाय के सारे अधिकार हों और जो इसके सारे कार्यों को सम्पन्न करें। इसे किसी तरह की आपात स्थिति में मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज को सात दिन की अवधि तक कामकाज स्थगित रखने का निर्देश देने का अधिकार है। इस अवधि को बढ़ाया जा सकता है।

सेबी को यह भी अधिकार है कि वह स्टॉक एक्सचेंज के उपनियमों को स्वीकृति दे या इस तरह के उपनियम बनाए। कोई भी स्टॉक एक्सचेंज सेबी की पूर्व अनुमति से कारोबार के लिए अतिरिक्त 'ट्रेडिंग फ्लोर' स्थापित कर सकता है। केंद्र सरकार/सेबी को अधिकार है कि वह किसी विनिर्दिष्ट प्रतिभूति की बिक्री या खरीद पर, सिवाय उसके जिसे केंद्र सरकार की अनुमति प्राप्त है, प्रतिबंध लगा सकता है, ताकि किसी राज्य/क्षेत्र में उस प्रतिभूति/प्रतिभूतियों पर अवांछनीय सट्टेबाजी को रोका जा सके।

ii) **प्रतिभूतियों का सूचीकरण**

किसी मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज में जब किसी व्यक्ति के आवेदन पर प्रतिभूतियों को सूचीबद्ध किया जाता है तो उस व्यक्ति से यह अपेक्षा होती है कि वह संबद्ध स्टॉक एक्सचेज के साथ संपन्न सूचीबद्ध संबंधी समझौते की शर्तों का पालन करेगा।

कोई भी स्टॉक एक्सचेंज अपने उपनियमों में निहित अधिकारों के अनुरूप किसी सार्वजनिक कंपनी की प्रतिभूतियों को सूचीबद्ध करने से इनकार कर सकता है। ऐसी हालत में कंपनी केंद्र सरकार के पास अपील कर सकती है जिसका निर्णय अंतिम होगा।

10.5 सेबी का संगठनात्मक ढाँचा

अपने अधिकारों के इस्तेमाल तथा कार्यों के संचालन के लिए सेबी ने निम्नांकित विभागों की स्थापना की है:

i) **प्राथमिक बाजार विभाग**

यह विभाग प्राथमिक बाजार, पंजीकरण, मर्चेंट बैंकरों के नियमन और मॉनिटरिंग, संविभाग, प्रबंध सेवाओं, निवेश सलाहकारों, ऋण पत्र-न्यासियों आदि से संबद्ध सभी नीति विषयक मामलों और विनियामक मुद्दों की देखभाल करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ii) **निर्गम प्रबंधन एवं अंतर्मध्यस्थता विभाग**

यह विभाग विवरण पत्र, सार्वजनिक और अधिकार शेयर्स के लिए प्रस्ताव पत्रों की जाँच करता है, नियमों के निर्माण के लिए प्राथमिक बाजार नीति से समन्वय स्थापित करता है, दिशा-निर्देश संबंधी टिप्पणियाँ और स्पष्टीकरण जारी करता है, आदि।

iii) **आनुषंगिक बाजार विभाग (नीति संचालन और विनिमय प्रशासन, नये निवेश उत्पाद, इनसाइडर ट्रेडिंग)**

यह विभाग गौण बाजारों और नये निवेश उत्पादों, स्टॉक एक्सचेंजों के पंजीकरण और निगरानी से संबद्ध सभी नीतियों तथा विनियामक मुद्दों के लिए जिम्मेदार है।

iv) **संस्थागत निवेश विभाग (पारस्परिक निधियों और विदेशी संस्थागत निवेश)**

यह विभाग विदेशी संस्थागत निवेशकों के लिए नीति, पंजीकरण, विनियमन और निगरानी, घरेलू म्यूचुअल फंड्स, शेयरों के उल्लेखनीय अधिग्रहण की नीति और नियमन के लिए जिम्मेदार है।

बोध प्रश्न 1

1) दी सिक्योरिटीज़ एंड एक्सचेंज बोर्ड ऑफ इंडिया (सेबी) अधिनियम 1992 की व्यवस्था के अनुसार सेबी के तीन महत्वपूर्ण विनियामक कार्यों तथा तीन संवर्धक कार्यों का उल्लेख करें।

.....

.....

.....

.....

2) उन बिचौलियों का बतायें जिनका सेबी द्वारा सेबी अधिनियम 1992 के अधीन संचालन होता है।

.....

.....

.....

3) बिचौलियों और कंपनियों को निर्देश जारी करने के लिए सेबी के पास कौन-से अधिकार हैं?

.....

.....

.....

4) सेबी द्वारा स्टॉक एक्सचेंजों को मान्यता देने से संबंधित प्रावधानों की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

10.6 प्रकटीकरण (Disclosure) तथा निवेशकों के संरक्षण के लिए दिशा-निर्देश

भारतीय प्रतिभूति एवं विनियमय बोर्ड ने पूँजी निर्गम (नियंत्रण) अधिनियम, 1947 के रद्द हो जाने के बाद जून 1992 में इन दिशा-निर्देशों को जारी किया। ये दिशा-निर्देश बाद के सभी निर्गमों पर लागू होते हैं। इन दिशा-निर्देशों में सेबी ने कंपनियों की कुछ श्रेणियों को इस बात की अनुमति दी है कि वे शेयर्स के निर्गमों पर खुद ही प्रीमियम तय करें। इसके अलावा इन दिशा-निर्देशों में जारी करने वाली कंपनियों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने प्रस्ताव पत्रों में इच्छुक निवेशकों के समक्ष सभी तथ्यों और विवरणों को प्रकट कर दें और साथ ही शेयर्स के निर्गम से संबंधित अन्य नियम भी निर्धारित करें जिनका हम आगे अध्ययन करेंगे।

10.7 नये निर्गमों का स्वतंत्र मूल्य निर्धारण

इन दिशा-निर्देशों ने सार्वजनिक निर्गम शुरू करने वाली कंपनियों को निम्न तीन श्रेणियों में बाँटा है।

i) नयी कंपनियाँ

ii) पहले से मौजूद निजी/ घनिष्ठ स्वामित्व वाली कंपनियाँ

iii) पहले से मौजूद सूचीबद्ध कंपनियाँ

प्रत्येक श्रेणी में, कुछ शर्तें पूरी करने वाली कंपनियों को इस बात की छूट दी गयी है कि वे स्वतंत्र रूप से अधिशुल्क तय करें। शेष को केवल सममूल्य पर शेयर जारी करने की अनुमति दी गयी है।

i) **नयी कंपनियों के प्रथम निर्गम**

नई कंपनी उसे कहेंगे जिसने अपने व्यावसायिक कार्य के 12 महीने पूरे नहीं किए हैं और जिसके अंकेक्षित परिणाम उपलब्ध नहीं हैं। अगर कोई नयी कंपनी ऐसे उद्यमियों द्वारा स्थापित की जाती है जिनका कोई पिछला अनुभव नहीं है तो यह जनता को केवल सममूल्य पर ही पूँजी निर्गम करेगी।

लेकिन अगर लगातार पाँच वर्षों तक मुनाफे में चलने वाली किसी कंपनी द्वारा किसी नयी कंपनी की स्थापना की जाती है तो यह अपने निर्गमों का मूल्य निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र होगी बशर्ते प्रवर्तनकारी कंपनी नयी कंपनी की 50 प्रतिशत अंश पूँजी का योगदान करती है। निर्गम मूल्य को समान रूप से सभी नये निवेशकों पर लागू किया जाएगा और विवरण पुस्तिका में निर्गम मूल्य का औचित्य दर्ज होगा। अगर एक से अधिक कंपनी किसी नयी कंपनी को प्रोत्साहन देती है तो उनमें से प्रत्येक को लाभकारिता के मानदंड को पूरा करना होगा अर्थात् पिछले सात वर्षों में से पाँच वर्षों में मुनाफा होना ही चाहिए - खासतौर से अंतिम दो वर्षों में।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ii) **मौजूदा घनिष्ठ स्वामित्व वाली ऐसी कंपनियों का प्रथम निर्गम जो सूचीबद्ध न हों**

ऐसी कंपनियों को जिनका निरंतर लाभकारिता का तीन वर्ष का रिकार्ड हो, इस बात की अनुमति दी जाती है कि वे स्वतंत्र रूप से निर्गमों का मूल्य निर्धारित कर सकें और स्टॉक एक्सचेजों में प्रतिभूतियों को दर्ज कर सकें। तीन वर्षों के काम के रिकार्ड का अर्थ पहले के पाँच वर्षों में से तीन में मुनाफा और निर्गम जारी होने से पूर्व के अर्थात अंतिम दो वर्षों में अवश्य मुनाफा हो। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के मामले में निरंतर लाभकारिता का रिकार्ड महज दो वर्षों का होना चाहिए।

अगर किसी कंपनी का निरंतर लाभकारिता का तीन वर्ष का रिकार्ड नहीं है तो वह केवल सममूल्य के लिए अतिरिक्त पूँजी जुटाने के उद्देश्य से जनता को पूँजी का निर्गम कर सकती है बशर्ते कुल निर्गमित पूँजी का कम-से कम 20 प्रतिशत जनता को प्रस्तावित हो।

अगर किसी कपंनी के पास तीन वर्ष के काम का अनुभव नहीं है लेकिन उसे पाँच वर्षों की निरंतर लाभकारिता के रिकार्ड वाली कोई अन्य कंपनी/कंपनियाँ संवर्द्धन देती हैं तो उसे अपने शेयर का मूल्य निर्धारित करने की स्वतंत्रता होगी बशर्ते संवर्धक कंपनी/कंपनियाँ निश्चित अवरुद्ध अवधि के अधीन कुल निर्गमित पूँजी का 50 प्रतिशत योगदान करती हों।

मूल्यों का निर्धारण निर्गमकर्ता तथा निर्गम के लीड प्रबंधकों द्वारा किया जाएगा। यह विशिष्ट प्रकटीकरण आवश्यकताओं के अधीन होगा जिनमें निम्न बातें शामिल होंगी :

क) पिछली अंकेक्षित स्थिति विवरण (ऑडिटेड बैलेन्स शीट) के अनुसार कंपनी के कुल परिसंपत्ति मूल्य का उद्घाटन, और

ख) निर्गम मूल्य का औचित्य।

iii) **पहले से मौजूद सूचीबद्ध कंपनियों द्वारा सार्वजनिक निर्गम**

इन कंपनियों को इस बात की अनुमति दी जाती है कि वे अपने आगामी निर्गमों का स्वतंत्र रूप से मूल्य निर्धारण करके और पूँजी जुटा सकें। निर्गम मूल्य का निर्धारण निर्गम के प्रमुख प्रबंधकों के साथ सलाह मशविरा करके निर्गमकर्ता द्वारा किया जाएगा। विवरण पुस्तिका अथवा प्रस्ताव - दस्तावेज में कंपनी का कुल परिसंपत्ति मूल्य दर्ज होना चाहिए और निर्गम के मूल्य का औचित्य भी दर्ज होना चाहिए। इसमें पिछले दो वर्षों के दौरान शेयर्स के उच्च और निम्न मूल्यों का भी उल्लेख होना चाहिए।

10.8 नये निर्गमों के लिए प्रवेश के नियम

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्राथमिक बाजार में प्रवेश करने वाले निर्गम प्रपत्रों की गुणवत्ता में सुधार के उद्देश्य से सेबी ने निर्गमकर्ता कंपनियों के लिए प्रवेश संबंधी नियम निर्धारित करके अत्यंत कारगर विनियमकारी कदमों की शुरुआत की है। 16 अप्रैल 1996 को सेबी द्वारा जारी दिशा-निर्देशों में, जिन्हें बाद में संशोधित किया गया, निम्नांकित बातें शामिल हैं:

i) कोई भी कंपनी जो किसी भी स्टॉक एक्सचेंज में अपनी प्रतिभूतियों को सूचीबद्ध कराना चाहती है, जनता को अंश पूँजी अथवा अंश पूँजी में परिवर्तित होने वाले बांडों का प्रथम प्रस्ताव नहीं करेगी जब तक कि वह प्रस्ताव से एकदम पहले के तीन वर्षों में लाभांश का भुगतान लगातार नहीं करती रही हो। दूसरे शब्दों में उसने, पिछले वर्षों में से प्रत्येक में लाभांश की घोषणा की हो।

ii) अगर कोई कंपनी निर्माण में लगी कंपनी है और उपरोक्त (i) को संतुष्ट नहीं करती है तो यह पहली बार कोई प्रस्ताव तभी पेश कर सकती है जब :

क) किसी अनुसूचित बैंक अथवा किसी सार्वजनिक वित्तीय संस्थान ने परियोजना का यह मूल्यांकन किया हो कि इसे सार्वजनिक निर्गम के जरिए वित्त-व्यवस्था करनी है, और

ख) बैंक/सार्वजनिक वित्तीय संस्थान परियोजना लागत की 10 प्रतिशत राशि के बराबर ऋण अंश पूँजी के जरिए परियोजना के लिए आंशिक तौर पर वित्त व्यवस्था कर रहा हो। यह शर्त सेवा क्षेत्र पर भी लागू होती है।

iii) पहले से मौजूद कोई कंपनी जिसकी प्रतिभूतियाँ किसी भी स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध हैं, उसे सार्वजनिक निर्गम से पूर्व उपरोक्त शर्तों में से (अर्थात् ऊपर

उल्लिखित (i) या (ii) में से) किसी एक को पूरा करना होगा, अगर जनता को प्रस्ताव के बाद उसका शुद्ध मूल्य इस तरह के प्रस्ताव से पूर्व के शुद्ध मूल्य से पाँच गुना अधिक हो जाता है।

iv) प्रवेश संबंधी उपरोक्त नियम सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों पर लागू नहीं होंगे। अगर वे प्रीमियम पर पूँजी का निर्गम चाहते हैं तो दूसरों के लिए तीन वर्षों के मुकाबले इनके लिए दो वर्षों का लाभकारिता का रिकार्ड पर्याप्त होगा। निजी क्षेत्र के नये बैंकों को सममूल्य पर निर्गमों की इजाजत होगी।

जून 2000 में सेबी ने आई पी ओज (IPOs) के लिए प्रवेश नियमों को और भी कड़ा कर दिया जो इस प्रकार हैं :

क) पाँच गुना आकार तक के आई पी ओ के लिए निर्गम पूर्व शुद्ध मूल्य की तभी अनुमति दी जाएगी यदि उस कंपनी की लाभकारिता और शुद्ध मूल्य का रिकार्ड ऊपर बताए अनुसार होगा।

ख) यदि किसी कंपनी के काम का ऐसा रिकार्ड नहीं है अथवा निर्गम पूर्व शुद्ध मूल्य से पाँच गुना अधिक निर्गम आकार नहीं है तो उन्हें आई पी ओ की अनुमति केवल खाता निर्माण विधि रूट के जरिए ही दी जाएगी और 60 प्रतिशत निर्गम योग्य संस्थागत कर्जदारों को ही आवंटित किये जायेंगे।

v) उपरोक्त प्रविष्टि नियम उन खरीदे/बेचे गए सौदों पर भी लागू नहीं होंगे जो ओ टी सी ई आई में सूचीबद्ध हैं बशर्ते इन्होंने 16 अप्रैल 1996 को अथवा इससे पूर्व ओ टी सी ई आई में पंजीकृत करा लिया हो।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मार्च 1999 में सेबी ने प्रवेश संबंधी नियम (उपरोक्त सं. (ii) में ढील दी। इसने तीन वर्ष में लाभांश के वास्तविक भुगतान की शर्त को बदल कर कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 205 के रूप में 'लाभांश के भुगतान की क्षमता' कर दिया। ऐसे मामलों में उन कंपनियों के लिए, जो लाभांश भुगतान की क्षमता पर आधारित प्रारंभिक सार्वजनिक निर्गम के साथ सामने आना चाहती हैं, एक अतिरिक्त शर्त भी निर्धारित की है, अर्थात् उनके पास पिछले पाँच वर्षों में से तीन वर्षों में पूर्व निर्गम न्यूनतम शुद्ध मूल्य कम से कम एक करोड़ की होनी चाहिए - साथ ही न्यूनतम शुद्ध मूल्य एकदम पूर्ववर्ती दो वर्षों की ज़रूरतों को पूरी करने का होना चाहिए।

10.9 प्राथमिक/मुख्य पूँजी बाजार में सुधार

सेबी के वैधानिक हैसियत प्राप्त करने और इसके अधिकारों में वृद्धि के बाद भारतीय विनिमय एवं प्रतिभूति बोर्ड ने पूँजी बाजार में सुधार करने तथा निवेशकों के हितों को संरक्षण देने के उद्देश्य से अनेक विनियामक उपाय शुरू किए हैं। इस खंड में हम प्राथमिक नये निर्गम बाजार में सेबी द्वारा अपनाए गए विभिन्न नियामक उपायों को बताना चाहेंगे।

i) बिचौलियों के लिए विनियम

प्राथमिक और आनुषंगिक बाजार के सभी बिचौलियों को पहली बार सेबी के नियामक

दायरे में लाया गया है। सेबी ने बिचौलियों के लिए नियमों और विनियमों को जारी किया है जिसके अंतर्गत मर्चेण्ट बैंकर्स, दलाल और उपदलाल, विभाग प्रबंधक, हामीदार, रजिस्ट्रार, शेयर हस्तांतरित करने वाले एजेंट आदि आते हैं। अन्य बातों को अतिरिक्त इन नियमों और विनियमों से सेबी के साथ इनके पंजीकरण, पूँजी पर्याप्तता शर्तें, दायित्व और जिम्मेदारियाँ, सेबी द्वारा निरीक्षण की पद्धति और भुगतान में विफल रहने वाले (डिफाल्टर) बिचौलियों के खिलाफ की जाने वाली कार्रवाई निर्धारित होती है। इन्हें उस आचार संहिता का पालन करना होता है जो इनके लिए बनायी गयी है।

मर्चेण्ट बैंकर्स की विविध श्रेणियों को समाप्त कर इन्हें एक ही श्रेणी में रख दिया गया है। इसके अलावा केवल कारपोरेट को ही मर्चेण्ट बैंकर के रूप में काम करने की इजाजत दी गयी है। मर्चेण्ट बैंकर्स को केवल निर्गम प्रबंध संबंधी क्रियाकलापों की इजाजत है और उन्हें कोष आधारित गतिविधियों में शामिल होने, जमाराशियों को स्वीकार करने, लीजिंग और हुण्डियाँ भुनाने तथा बट्टा करने की मनाही है। उन्हें अपना व्यवसाय करने के लिए सेबी से एक प्रमाण पत्र लेना ज़रूरी होता है। यदि सेबी चाहे तो उनका पंजीकरण रद्द या निलंबित किया जा सकता है। सेबी द्वारा निर्गम रजिस्ट्रार और शेयर हस्तांतरित करने वाले एजेंटों, स्टॉक दलालों और उप-दलालों, विभाग प्रबंधकों आदि के लिए अलग-अलग नियम और विनियम तय किए गए हैं। इस प्रकार ये सभी बिचौलिये सेबी के विनियामक देख रेख में हैं। सेबी को अधिकार प्राप्त है कि इनके काम में अगर कोई गड़बड़ी/अनियमितता दिखायी दे तो इनके खिलाफ कार्रवाई करे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ii) **प्रस्ताव दस्तावेजों में प्रकटीकरण**

कोई भी निवेशक तथ्यों को भलीभँति जान कर निवेश करने का निर्णय ले सके, इसके लिए सेबी ने निर्गम जारी करने वाले कंपनियों को विस्तृत दिशा निर्देश दिए हैं कि वह अपनी विवरण पुस्तिका/प्रस्ताव दस्तावेजों में सभी तथ्यों को प्रकट करे। इन कंपनियों से अपेक्षा की जाती है कि शेयर जारी करते समय वे सभी भौतिक तथ्यों को प्रकट करें और परियोजना से जुड़े जोखिमों के बारे में साफ-साफ बताएं। विद्यमान कंपनियों के मामले में यह भी अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी विवरण पुस्तिका/प्रस्ताव दस्तावेजों में पिछले पाँच वर्षों के कंपनी के वित्तीय कार्यों तथा साथ में प्रीमियम एवं संभावित जोखिम और इस संभावित जोखिम के प्रति प्रबंधकों के दृष्टिकोण को भी प्रकाशित करें।

हालांकि सार्वजनिक निर्गम प्रस्ताव दस्तावेज की अब सेबी द्वारा जाँच नहीं की जाती है, पर विवरण पुस्तिका/प्रस्ताव दस्तावेज का मसौदा सेबी को दिया जाता है और इसे सार्वजनिक दस्तावेज माना जाता है। मर्चेंट बैंकर्स से अपेक्षा की जाती है कि वे इनकी प्रतियाँ उन स्टॉक-एक्सचेंजों में जमा करें जहाँ शेयरों के सूचीकरण का प्रस्ताव है। ये प्रतियाँ जनता को भी उपलब्ध होनी चाहिए। इस प्रकार अंतिम रूप दिए जाने से पूर्व विवरण पुस्तिका/प्रस्ताव दस्तावेज सभी संबद्ध लोगों को जाँच के लिए उपलब्ध हो जाता है। निर्गम के प्रमुख प्रबंधक से अपेक्षा की जाती है कि वह प्रस्ताव दस्तावेज में किए गए प्रकटीकरण के संदर्भ में उचित प्रमाण पत्र प्रदान करें। इस तरह का प्रमाण पत्र प्रमुख प्रबंधक के मामले में बेहतर जवाबदेही और पादर्शिता के तौर पर खुद ही प्रस्ताव दस्तावेज का हिस्सा होगा।

iii) **विज्ञापन संहिता**

सेबी ने सार्वजनिक निर्गमों के बारे में विज्ञापन के लिए एक संहिता जारी की है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उक्त विज्ञापन सही और स्पष्ट है तथा इसमें गलत या गुमराह करने वाली कोई बात न हो। 'निर्गमकारी कंपनी विज्ञापन संहिता का कड़ाई से पालन कर रही है' - यह सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी प्रमुख प्रबंधक की है।

iv) **हामीदारिता (अंडरराइटिंग)**

नये निर्गमों की हामीदारी 1994 से आदेशात्मक नहीं है। यदि निर्गम हामीदारित है तो प्रमुख प्रबंधकों को हामीदारों के शुद्ध मूल्य तथा बकाया वायदों के बारे में खुद को संतुष्ट करना चाहिए और इसे सेबी को बताना चाहिए।

यदि निर्गम हामीदारित नहीं है और कंपनी जनता को प्रस्तावित राशि का 90 प्रतिशत जुटाने में अक्षम रहती है या अगर निर्गम हामीदारित है और कंपनी जनता से अभिदत्त के रूप में तथा हामीदारों द्वारा स्वीकार की गयी जिम्मेदारी के रूप में निर्गम के बंद होने के 60 दिनों के अंदर निर्गमित राशि का 90 प्रतिशत प्राप्त करने में अक्षम है तो कंपनी कुल अभिदान राशि वापस कर देगी। न्यूनतम अभिदान की शर्त सार्वजनिक निर्गमों और अधिकार निर्गमों दोनों पर लागू होगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

v) **प्रतिभूतियों का आवंटन**

प्रतिभूतियों के आवंटन के सिलसिले में निम्नांकित नियम बनाये गये हैं :

क) सूचीबद्ध करने के उद्देश्य से जनता को जारी की जाने वाली प्रतिभूतियों का न्यूनतम प्रतिशत 60 से घटा कर 25 प्रतिशत कर दिया गया।

ख) शेयर्स के यथानुपात आवंटन की आवश्यकता शुरू करने के लिए आवंटन पद्धति में संशोधन किया गया।

ग) प्रारंभिक और जारी रहने वाली सूचीबद्धता की ज़रूरत के रूप में यह निर्धारित किया गया कि प्रति एक लाख ताजा पूँजी निर्गम के लिए पाँच शेयर होल्डर और प्रति एक लाख बिक्री प्रस्ताव के लिए दस शेयर होल्डर हों।

घ) आवंटन से व्यक्तियों को मिलने वाले किसी भी तरह के प्रत्यक्ष या परोक्ष कमीशन या डिसकाउंट पर रोक लगा दी गयी।

च) विद्यमान बाजार मूल्य से मेल न खाने वाले मूल्यों पर शेयरों के पूर्वाधिकार आवंटन की प्रथा पर रोक लगा दी गयी और इस सिलसिले में सेबी द्वारा नये दिशा-निर्देश जारी किए गए। अधिमान्य आधार पर शेयरों का निर्गम उस मूल्य पर किया जा सकता है जो निम्नांकित के उच्चतर मूल्य से कम न हो :

संबद्ध तिथि से पहले के छह महीनों के दौरान स्टॉक एक्सचेंज में दर्ज संबद्ध शेयरों के अंतिम मूल्यों की साप्ताहिक उच्च और निम्न राशि का औसत

या

संबद्ध तिथि से पहले के दो सप्ताहों के दौरान शेयर के अंतिम मूल्यों की साप्ताहिक उच्च और निम्न राशि का औसत।

छ) आवंटन प्रक्रिया की देखरेख के लिए सेबी प्रतिनिधियों को नियुक्त करने की प्रणाली शुरू की गयी ताकि अत्याभिदत्य (ओवरसब्सक्राइब्ड) सार्वजनिक शेयरों के आवंटन में होने वाली गड़बड़ियों को कम क़िया जा सके।

ज) सार्वजनिक क्षेत्र के बांड अब सेबी के नियामक अधिकार में हैं।

बोध प्रश्न 2

1) रिक्त स्थानों को भरें :

i) नये निर्गमों के स्वतंत्र मूल्य निर्धारण के सिलसिले में सेबी द्वारा जारी किये गये दिशा-निर्देशों के अंतर्गत सार्वजनिक निर्गमों के लिए कंपनियों को ..... श्रणियों में बांटा गया है।

ii) विद्यमान निजी कंपनियाँ, जिनकी निरंतर लाभकारिता का ..... वर्ष का रिकार्ड है, उन्हें शेयर के स्वतंत्र मूल्य निर्धारण की तथा स्टॉक एक्सचेंजों में प्रतिभूतियों को सूचीबद्ध कराने की अनुमति है।

2) बताएँ कि निम्न कथन सही हैं या गलत :

i) प्राथमिक और आनुषंगिक बाजारों में सभी बिचौलियों को सेबी के विनियमों के अधीन ला दिया गया है। (सही/गलत)

ii) प्रस्ताव दस्तावेज में किए गए प्रकटीकरण के बारे में प्रमुख प्रबंधकों को कोई प्रमाण पत्र देने की ज़रूरत नहीं होती। (सही/गलत)

iii) सूचीबद्ध करने के उद्देश्य से जनता को जारी की जाने वाली प्रतिभूतियों का न्यूनतम प्रतिशत 60 से घटा कर 25 दिया गया है। (सही/गलत)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

10.10 आनुषंगिक पूँजी बाजार में सुधार

भारतीय विनिमय एवं प्रतिभूति बोर्ड ने आनुषंगिक बाजार के कामकाज को व्यवस्थित करने के लिए अनेक उपाय अपनाये हैं। इन उपायों का उद्देश्य बाजार की क्षमता को बढ़ाना, स्टॉक मार्केट के लेनदेन को और अधिक पारदर्शी बनाना, व्यापार के अनुचित तरीकों पर रोक लगाना और पूँजी बाजार को अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों के स्तर तक ले जाना है।

i) स्टॉक एक्सचेंजों को व्यवस्थिता करना

जैसा कि हमने पहले ही देखा है, भारत सरकार ने स्टॉक एक्सचेंजों को व्यवस्थित करने के लिए सेबी को अधिकार प्रदान किए हैं। सेबी ने स्टॉक एक्सचेंजों को निर्देश दिया कि वे अपने शासी निकायों को व्यापक बनायें और अपनी पंचाट, डीफाल्ट तथा अनुशासन समितियों के ढाँचे में परिवर्तन लायें। शासी निकायों में निर्वाचित स्टॉक ब्रोकर निदेशकों तथा सेबी/सरकार द्वारा नामजद सदस्यों की

समान संख्या होनी चाहिए। स्टॉक ब्रोकर निदेशकों के प्रतिनिधियों की संख्या अनुशासन समिति में 40 तक सीमित होनी चाहिए।

ii) **दलालों के लिए पूँजी पर्याप्तता की शर्तें**

सेबी ने दलालों के लिए पूँजी पर्याप्तता की शर्तें निर्धारित की हैं जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि दलालों की ऐसी फर्में उनकी देनदारी स्थिति को देखते हुए पर्याप्त रूप से पूँजीयुक्त हैं। ये शर्तें कारोबार के परिमाण के संदर्भ में बुनियादी न्यूनतम पूँजी तथा अतिरिक्त पूँजी का आधार निर्धारित करती हैं। इस संदर्भ में स्टॉक एक्सचेंजों ने अपने उपनियमों में संशोधन किए हैं।

iii) **ग्राहक-दलाल संबंधों में पारदर्शिता**

सेबी ने दलालों के लिए यह आदेशात्मक कर दिया है कि वे अपने ग्राहकों के लिए और खुद के लिए अलग अलग खाते रखें। उन्हें लेनदेन संबंधी मूल्य और दलाल को मिलने वाले शुल्क को अपने ग्राहकों को दिए अनुबंध पत्रों में स्पष्ट तौर पर बताना चाहिए। दलालों को अपने बहीखतों का ऑडिट कराना चाहिए और इस ऑडिट रिपोर्टस को सेबी को देना चाहिए। अनुबंध पत्रों को 24 घंटों के अंदर जारी कर देना चाहिए।

iv) **सूचीकरण समझौतों में संशोधन**

DIKSHANT IAS
Call Us @7428092240

सेबी ने स्टॉक एक्सचेंजों को सूचीकरण समझौतों में संशोधन की सलाह दी ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कोई भी सूचीबद्ध कंपनी स्टॉक एक्सचेंजों को वार्षिक विवरण दे जिसमें प्रस्ताव दस्तावेजों और वास्तविक स्थिति को ध्यान में रखते हुए भावी वित्तीय योजनाओं और इन योजनाओं में इस्तेमाल की गयी राशि का अंतर दिखाया गया हो। इस प्रकार कोई भी अंशधारी वायदों और संपन्न कार्यों के बीच तुलना कर सके।

10.11 अंतरंगी कारोबार (इनसाइडर ट्रेडिंग) का नियमन

प्रतिभूतियों के कारोबार में स्वच्छता सुनिश्चित करने तथा अंतरंगी कारोबार (इनसाइडर ट्रेडिंग) के दुष्प्रभावों को समाप्त करने के उद्देश्य से सेबी ने 1992 में सेबी (इनसाइडर ट्रेडिंग) अंतरंगी कारोबार विनियम बनाए। इन विनियमों के अनुसार कोई अंतरंगी निम्न कार्यों को नहीं कर सकता :

क) अपने या अन्य व्यक्ति की ओर से किसी स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध कम्पनी से अप्रकाशित मूल्य संवेदी सूचना के आधार पर प्रतिभूतियों में व्यापार, या

ख) व्यापार के सामान्य क्रम में या किसी कानून के अधीन वाली स्थिति को छोड़ कर किसी अप्रकाशित मूल्य संवेदी सूचना को किसी अन्य व्यक्ति तक पहुंचाना, या

ग) अप्रकाशित मूल्य संवेदी सूचना के आधार पर किसी कंपनी की प्रतिभूतियों से कारोबार करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को सलाह देना।

प्रकाशित मूल्य संवेदी सूचना को किसी ऐसी सूचना के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसका संबंध निम्नांकित विषयों से हो और जिसे सामान्य तौर पर कंपनी आम जानकारी के लिए प्रकाशित नहीं करती, लेकिन जिसे अगर प्रकाशित किया गया या जिसकी जानकारी मिल सकी तो इससे बाजार में प्रतिभूतियों के मूल्य पर भौतिक रूप से असर पड़ने की संभावना हो।

i) वित्तीय नतीजे,

ii) लाभांशों की अभीष्ट (intended) घोषणा,

iii) बोनस, अधिकार शेयरों का निर्गमन

iv) कोई बड़ी विस्तार योजना/नयी परियोजनाओं का कार्यान्वयन,

v) समानेलन (एलमगमेशन), विलय तथा अधीनीकरण (टेक ओवर),

vi) व्यवसाय (अंडरटेकिंग) का निपटान, और

vii) कंपनी की नीतियों, योजनाओं या कार्य-व्यापार में कोई परिवर्तन।

अंतरंगी वह व्यक्ति है जो कंपनी से संबद्ध है या था और जिसके बारे में उचित ही अपेक्षा की जाती है कि अप्रकाशित मूल्य संवेदी सूचना तक उसकी पहुंच होगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कोई भी अंतरंगी, जो उपरोक्त प्रावधानों में से किसी का उल्लंघन करेगा वह 'अंतरंगी कारोबार' का दोषी होगा। सेबी को अगर किसी कथित अंतरंगी कारोबार की शिकायत मिलती है या उसे खुद इसकी जानकारी अथवा सूचना मिलती है तो उसके पास यह अधिकार है कि वह उक्त अंतरंगी के लेखा खातों या उसके किसी भी रिकार्ड/दस्तावेजों की छानबीन और निरीक्षण कर सके। जाँच की रिपोर्ट के आधार पर सेबी निवेशकों के और साथ ही प्रतिभूति बाजार के हितों की रक्षा के लिए अंतरंगी को आवश्यक निर्देश दे सकता है।

10.12 प्रतिभूति निक्षेपागारों (डिपॉजिटरीज) और भागीदारों का नियमन

प्रतिभूति निक्षेपागारों और भागीदारों को भी सेबी के विनियमकारी अधिकार के अंतर्गत ला दिया गया है। इसने सेबी निक्षेपागारों एवं भागीदार विनियम, 1996 में बनाये। इन नियमनों की खास बातें इस प्रकार हैं:

i) किसी प्रतिभूति निक्षेपागार को इनमें से कोई भी प्रायोजित कर सकता है - सार्वजनिक वित्त संस्थान, अनुसूचित बैंक, विदेशी बैंक, मान्यता-प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज, वित्तीय सेवा देने वाली कोई कंपनी (इसकी कम से कम 75 प्रतिशत पूँजी संयुक्त रूप से अथवा अलग-अलग उपरोक्त संस्थाओं के पास होनी चाहिए), प्रतिभूति बाजार में अभिरक्षण (कस्टोडियल), निकासी (क्लियरिंग) या निपटान (सेटिलमेंट) सेवाएँ देने वाले कोई विदेशी कंपनी और केंद्र सरकार द्वारा स्वीकृत विदेशी वित्तीय सेवा वाली कंपनी।

ii) प्रायोजक के पास निक्षेपागार की अंश पूंजी का कम से कम 51 प्रतिशत होना चाहिए। शेष राशि भागीदारों के पास होगी। कोई भी भागीदार निक्षेपागार की अंश

पूँजी का 5 प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा नहीं रखेगा।

iii) प्रायोजक को सेबी से पंजीकरण प्रमाण पत्र और व्यवसाय शुरू करने का प्रमाण पत्र अवश्य प्राप्त करना चाहिए।

iv) निक्षेपागार के पास शुद्ध राशि कम से कम 100 करोड़ रुपए होनी चाहिए और उसके पास अपनी ढाँचागत सुविधाएँ तथा प्रणालियाँ होनी चाहिए।

v) भागीदारों के लिए सेबी से पंजीकरण प्रमाणपत्र लेना ज़रूरी है जो पाँच वर्ष के लिए वैध होगा और बाद में उसका नवीनीकरण कराया जा सकता है। इसके अलावा उपरोक्त सं. (i) में उल्लिखित संस्थाएँ, किसी स्टॉक एक्सचेंज का क्लियरिंग कार्पोटेशन (या क्लियरिंग हाउस), कोई स्टॉक ब्रोकर (जिसके पास न्यूनतम शुद्ध रीशि 50 लाख रुपए हो) और कोई गैर-बैंकिंग वित्त कंपनी (जिसके पास न्यूनतम शुद्ध राशि 50 लाख रुपए हो) भी भागीदार के रूप में पंजीकरण के लिए आवेदन कर सकती है।

vi) सेबी के पास अधिकार है कि वह किसी निक्षेपागार, भागीदार, हितकारी मालिक, निर्गमकर्ता के कार्यों की छानबीन करे तथा इसके एजेंट के बही खातों, रिकॉर्ड्स, दस्तावेजों तथा इनके तैयार करने की प्रणालियों और पद्धतियों का निरीक्षण करे।

vii) सेबी के पास यह अधिकार है कि अगर कोई निक्षेपागार या भागीदार किसी प्रावधान का उल्लंघन करता है या किसी तरह की चूक करता है तो उसके पंजीकरण प्रमाण पत्र को निलंबित कर दे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

viii) सेबी किसी निक्षेपागार या भागीदार का पंजीकरण प्रमाण पत्र रद्द कर सकता है यदि :

क) वह धोखाधड़ी का दोषी है या उसे किसी नैतिक भ्रष्टाचार के लिए दोषी पाकर सजा दी गयी है,

ख) वह बार-बार भुगतान न करने का दोषी है।

सेबी ने अमूर्त या दस्तावेज रहित कारोबार को बढ़ावा देने की दिशा में अनेक पहल लिए हैं। सेबी ने संस्थागत निवेशकों (अर्थात् अनोन्य निधियाँ, बैंकों, वित्तीय संस्थानों और विदेशी वित्तीय निवेशकों) द्वारा 15 जनवरी 1998 से खास-खास मामलों में अमूर्त रूप में शेयरों के अनिवार्य कारोबार की शुरुआत की है। अनिवार्य अमूर्त कारोबार के लिए शेयरों की सूची धीरे-धीरे बढ़ रही है।

10.13 उल्लेखनीय अंशपूँजी का अधिग्रहण और कंपनी को हस्तगत करना

शेयरों की भारी खरीददारी और कंपनियों पर अधिकार करने को सेबी की नियामक छतरी के नीचे लाया गया है। अब सेबी ने (एसब्सटैन्शियल एक्विजिशन ऑफ शेयर्स एंड टेक-ओवर्स) ऐसे विनियम जारी किए हैं जो शेयरों के अभिग्रहणकर्ता को एक पारदर्शी प्रक्रिया अपनाने की व्यवस्था करते हैं। इनका मुख्य लक्ष्य अल्पमत अंशधारियों के हितों की रक्षा करना है। इन विनियमनों की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :

i) प्रत्येक अंशधारी जिसके पास किसी कंपनी के 10 प्रतिशत से अधिक शेयर या मतदान अधिकार हैं या कंपनी पर नियंत्रण है, उसे कंपनी के समक्ष घोषित करना होगा कि उसके पास शेयरों की संख्या और प्रतिशत क्या है?

ii) कोई अधिग्रहणकर्ता, जो शेयरों/मतदान अधिकारों/नियंत्रण (जो उसके विद्यमान मतदान अधिकारों/शेयरों के साथ कंपनी के शेयरों के 10 प्रतिशत को लांघ जाएगा) हासिल करना चाहता है, उसे शेयरों के अभिग्रहण के लिए अखबारों में विज्ञापन के जरिए सार्वजनिक घोषणा करनी होगी। सार्वजनिक घोषणा की एक प्रति सेबी को तथा उन स्टॉक एक्सचेंजों को भेजी जाएगी जहाँ शेयर सूचीबद्ध हैं। सेबी को एक प्रस्ताव पत्र भी भेजा जाएगा जो उसमें परिवर्तनों का सुझाव दे सकता है। इसके बाद इसे संबद्ध कंपनी के अंशधारियों को भेजा जाता है।

iii) शेयरों के अधिग्रहण का प्रस्ताव न्यूनतम प्रस्ताव मूल्य पर किया जाएगा जो निर्धारित नियमों को अनुसार तय होगा।

iv) सार्वजनिक प्रस्ताव लक्ष्य कंपनी के अंशधारियों से किया जाएगा कि उनसे कंपनी की वोटिंग पूँजी का कुल न्यूनतम 20 प्रतिशत का अधिग्रहण किया जाता है।

v) अगर कोई अन्य व्यक्ति इस तरह का प्रस्ताव पेश करने का इच्छुक है तो वह प्रथम प्रस्ताव की सार्वजनिक घोषणा के 21 दिनों के अंदर उस लक्ष्य कंपनी के शेयरों के अधिग्रहण के लिए अपने प्रस्ताव की सार्वजनिक घोषणा करेगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

vi) प्रतियोगी बोली/बोलियों की घोषणा के बाद प्रथम अधिग्रहणकर्ता के सामने घोषित करने के दो विकल्प होंगे :

क) प्रस्ताव में संशोधन, या

ख) बोर्ड की पूर्व स्वीकृति से प्रस्ताव को वापस लेना।

vii) विनियमों के अंतर्गत अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए निश्चित रूप में अधिग्रहणकर्ता किसी निलम्ब लेख खाते (एस्क्रो एकाउंट) में जो राशि जमा करेगा, वह 25 प्रतिशत होगी अगर विचार देय राशि 100 करोड़ रुपए तक है। इससे अधिक पर 10 प्रतिशत अतिरिक्त होगी।

viii) प्रस्ताव की अवधि समाप्त होने के बाद तीस दिनों के अंदर अधिग्रहणकर्ता बिक्री के लिए प्रस्तावित शेयरों का भुगतान करेगा।

बोध प्रश्न 3

1) अंतरंगों कारोबार से आप क्या समझते हैं? सेबी द्वारा इस पर कौन-से नियमन लगाए गए हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) प्रतिभूति निक्षेपागारों के लिए बने नियमनों की तीन प्रमुख विशिष्टताएँ बताइए।

.....

.....

.....

3) प्रतियोगी बोली की सार्वजनिक घोषणा के बाद अधिग्रहणकर्ता के सामने कौन-सा विकल्प हो सकता है?

.....

.....

.....

10.14 सारांश

प्राथमिक बाजार और आनुषंगिक बाजार तथा विभिन्न भागीदारों का नियंत्रण भारतीय विनिमय एवं प्रतिभूति बोर्ड (सेबी) द्वारा होता है। इसे (सिक्योरिटीज़ एंड एक्सचेंज बोर्ड ऑफ इंडिया एक्ट 1992) के तहत वैधानिक मान्यता प्राप्त है। एक तरफ तो यह विभिन्न विनिमयकारी उपायों के जरिए प्रतिभूतियों में निवेशकों के हितों को संरक्षण देता है और दूसरी तरफ यह प्रतिभूति बाजार को बढ़ावा भी देता है। सेबी को इस बात का अधिकार दिया गया है कि वह बिचौलियों को पंजीकरण प्रमाण पत्र दे और उन्हें तथा कंपनियों को निर्देश जारी करे। अनियमितताओं की जाँच करने और दंड देने का भी इसे अधिकार है।

DIKSHANT IAS
Call Us @ 7428092240

भारतीय विनिमय एव प्रतिभूति बोर्ड ने प्रकटीकरण और निवेशक संरक्षण के लिए दिशा-निर्देश जारी करके, कंपनियों द्वारा नये निर्गमों का मूल्य निर्धारण करके और नये निर्गमों की प्रवेश शर्तें तय करके नये निर्गम बाजार में सुधार किये हैं। सेबी ने प्राथमिक नये निगर्म बाजार में सुधार के लिए विभिन्न कदम उठाए हैं।

सेबी ने आनुषंगिक बाजार में सुधार के लिए भी अनेक उपाय किए हैं, जिनमें शामिल हैं: स्टॉक एक्सचेंजों का विनियमन, दलालों के लिए पूँजी पर्याप्तता शर्तों का निर्धारण, अंतरंगी कारोबार के लिए विनियमन, अमानातदारों और भागीदारों के लिए नियमन और शेयरों के ठोस अधिग्रहण तथा अधीनीकरण को लिए नियम।

10.15 शब्दावली

पूँजी बाजार : पूँजी बाजार वित्तीय बाजार का वह भाग है जहाँ दीर्घकालिक कोषों से संबंधित लेनदेन होते हैं।

घनिष्ठ स्वामित्व वाली कंपनी : घनिष्ठ स्वामित्व वाली कंपनी उसे कहते हैं जिसमें शेयरों का बहुमत कुछ ही अंशधारियों के पास होता है।

नये निर्गमों के लिए प्रवेश शर्तें : भारतीय विनिमय एवं प्रतिभूति बोर्ड ने कुछ शर्तें निर्धारित की हैं जिन्हें किसी कंपनी को प्राथमिक बाजार में प्रतिभूतियाँ जारी करने से पूर्व पूरी करनी होती हैं।

नये निर्गमों का स्वतंत्र मूल्य निर्धारण : जिस मूल्य पर नयी प्रतिभूति जारी होनी है और प्रतिभूति के निर्गमकर्ता द्वारा मूल्य निर्धारण किया जाना है, उसे नये निर्गमों का स्वतंत्र मूल्य निर्धारण कहते हैं। दूसरो शब्दों में कहें तो इस पर वसूला जाने वाला अधिशुल्क खुद निर्गमकर्ता कंपनी द्वारा तय किया जाता है।

अंतरंगी कारोबार : अंतरंगी कारोबार अथवा इनसाइडर ट्रेडिंग का अर्थ खुद अपनी ओर से अथवा किसी स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध कंपनी की ओर से अप्रकाशित मूल्य संवेदी सूचना (अर्थात् ऐसी सूचना जो अगर प्रकाशित हुई तो भौतिक रूप से प्रतिभूति के मूल्य को प्रभावित कर सकती है) के आधार पर काम करना है।

बिचौलिये : बिचौलिये उन व्यक्तियों को कहते हैं जो प्रतिभूति बाजार से जुड़े हैं और निवेशकों तथा प्रतिभूतियों के निर्गमकर्ताओं के बीच काम करते हैं। वे प्रतिभूतियों के लेनदेन में मदद पहुँचाते हैं, जैसे - मर्चेंट बैंकर्स, दलाल, हामीदार, किसी निर्गम के रजिस्ट्रार, अमानतदार, भागीदार इत्यादि।

प्रतिभूतियों का सूचीकरण : जब कोई खास प्रतिभूति किसी स्टॉक एक्सचेंज द्वारा उस एक्सचेंज में खरीद फरोख्त के लिए स्वीकृत की जाती है तो उसे प्रतिभूति का सूचीकरण कहते हैं। जिस कंपनी की प्रतिभूति सूचीबद्ध होती है, उसे सूचीबद्ध कंपनी कहते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मर्चेंट बैंकर्स : मर्चेंट बैंकर्स वित्तीय बाजारों में काम करने वाले बिचौलिए हैं जो अपनी कंपनी के ग्राहकों को विभिन्न गैर-कोष आधारित सेवाएँ देते हैं। मसलन नये निर्गमों का प्रबंध, ऋणों का संघटन आदि।

अन्योन्य निधियाँ : म्युचुअल फंड या अन्योन्य निधियाँ न्यास के रूप में स्थापित सामूहिक निवेश पद्धति है। इन निधियों के अंतर्गत इकाइयाँ जारी करके निवेशकों की बचत को जमा किया जाता है और पूँजी बाजार में हस्तांतरण योग्य प्रतिभूतियों में उसका निवेश किया जाता है।

प्राथमिक बाजार : पूँजी बाजार का वह हिस्सा जिसमें पहली बार निवेशकों के निर्गमकर्ता द्वारा नयी प्रतिभूतियाँ जारी की जाती हैं।

अनुसूचित बैंक : वह बैंक जिसका नाम भारतीय रिजर्व बैंक, अधिनयिम की दूसरी अनुसूची में शामिल हो। बैंक को रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया एक्ट की धारा 42 में उल्लिखित शर्तों को पूरा करना होता है।

आनुषंगिक बाजार : पूँजी बाजार का वह हिस्सा जिसमें विद्यमान (अर्थात् पहले से जारी) प्रतिभूतियों का आदान-प्रदान होता है।

प्रतिभूतियों के निक्षेपागार : प्रतिभूतियों के निक्षेपागार उन प्रतिभूतियों का रिकार्ड रखते हैं जो अमूर्तरूप में निवेशकों के पास पड़ी हुई हैं अर्थात् प्रतिभूतियों में लेनदेन को खाते में दर्ज किया जाता है लेकिन भौतिक तौर पर इन प्रतिभूतियों का अस्तित्व नहीं होता।

स्टॉक एक्सचेंज : प्रतिभूतियों में गौण बाजार वाले लेनदेन के लिए संगठित बाजार को स्टॉक एक्सचेंज कहते हैं।

हामीदार (अंडरराइटर्स) : हामीदारी उन बिचौलियों को कहते हैं जो कंपनी द्वारा जारी प्रतिभूतियों के उस अंश को प्रदत्त (Subscribe) करने की जिम्मेदारी लेते हैं जो निवेश करने वाली जनता द्वारा अनसब्सक्राइब्ड रहती है।

10.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

भारतीय विनमय एवं प्रतिभूति बोर्ड की वार्षिक रपटें, भारतीय रिजर्व बैंक, मुंबई।

इक्नॉमिक सर्वे (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया), (रिलिवेंट चैप्टर्स), 2002।

एल.एम. भोले (2000) : *फाइनेंसियल इंस्टीट्यूशन एंड मार्केट्स*, हिमालय पब्लिसर्स, मुम्बई।

मेचिराजु, एच.आर. (1998) : *इंडियन फाइनेंसियल सिस्टम*, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

रिपोर्ट ऑन करेंसी एंड फाइनेंस (1996) : रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई।

सुन्दरम, के.पी.एम. और वार्ष्णेय, पी.एन. (2000) : *बैंकिंग एंड फाइनेंशियल सिस्टम*, सुलतानचन्द एन्ड सन्स, दिल्ली

टैक्समैन (1998) : *कंपनीज एक्ट विद सेबी रूल्स/रेगुलेशन्स एंड गाइडलाइन*।

वार्ष्णेय, पी.एन. और मित्तल डी.के. (2002) : *इंडियन फाइनेंसियल सिस्टम*, सुलतान चन्द एन्ड सन्स, दिल्ली

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

10.17 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 10.2

2) स्टॉक ब्रोकर, सब ब्रोकर, शेयर ट्रांस्फर एजेंट, किसी निर्गम का बैंकर, ट्रस्ट डीड का हस्तांतरण, मर्चेंट बैंकर, हामीदार, पोर्टफोलियो मैनेजर, निवेश सलाहकार, अमानतदार भागीदार, ऋण निर्धारक एजेंसियाँ, विदेशी संस्थागत निवेश आदि।

3) देखें भाग 10.3 का बिंदु 3 और 4

4) देखें भाग 10.4

बोध प्रश्न 2

1) क) तीन
   ख) तीन

2) क) सही
   ख) गलत
   ग) सही

बोध प्रश्न 3

1) अंतरंगी कारोबार से तात्पर्य किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा प्रतिभूतियों के कारोबार से है जो कंपनी से संबद्ध है/था और जिसकी पहुँच अप्रकाशित मूल्य - संवेदी सूचना तक है। ऐसा व्यक्ति किसी कंपनी की प्रतिभूति का कारोबार नहीं कर सकता, अप्रकाशित मूल्य की जानकारी किसी को नहीं दे सकता और प्रतिभूतियों का कारोबार करने वाले किसी अन्य व्यक्ति को अप्रकाशित मूल्य संवेदी सूचना के आधार पर कोई सलाह नहीं दे सकता।

2) देखें भाग 10.12

3) प्रस्ताव का संशोधन या प्रस्ताव को वापस लेना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 11 अखिल भारतीय वित्तीय संस्थान

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 विकास बैंकिंग
11.3 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक
11.4 भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड
11.5 भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम लिमिटेड
11.6 भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक लिमिटेड
11.7 भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक
11.8 राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक
11.9 राष्ट्रीय-आवास बैंक
11.10 भारतीय निर्यात-आयात बैंक
11.11 वित्तीय संस्थाओं का नियमन
11.12 प्रमुख वित्तीय संस्थाओं के कार्यकलाप
11.13 अनिष्पादक परिसंपत्तियाँ
11.14 सारांश
11.15 शब्दावली
11.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें
11.17 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- विकास-बैंकिंग का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे,
- भारत की वित्तीय संस्थाओं और उनकी प्रमुख गतिविधियों का आकलन प्रस्तुत कर सकेंगे,
- वित्तीय संस्थाओं के नियमन का वर्णन कर सकेंगे, तथा
- प्रमुख वित्तीय संस्थाओं के निष्पादन की विवेचना कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

हमारे देश में वित्तीय संस्थाओं का सुगठित ढाँचा विकसित हुआ है जो राष्ट्रीय स्तर की 11 और राज्य स्तर की 46 संस्थाओं पर आधारित है। ये संस्थाएँ निगमित उद्योगों की विविध आवश्यकताओं के लिए अनेक प्रकार के वित्तीय उत्पादों और सेवाओं की व्यवस्था करती हैं। राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं में पाँच अखिल भारतीय विकास बैंक, तीन विशेषीकृत वित्तीय संस्थाएँ और तीन निवेश-संस्थाएँ शामिल हैं। राज्य स्तर पर 18 राज्य वित्त निगम

और 28 राज्य औद्योगिक विकास निगम शामिल हैं। अखिल भारतीय विकास बैंक ये हैं: भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई डी बी आई), भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड (आई एफ सी आई), भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम लिमिटेड (आई सी आई सी आई), भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिड्बी) और भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक लिमिटेड (आई आई बी आई) हैं। जोखिम पूंजी और प्रौद्योगिकी वित्त निगम लिमिटेड (आर सी टी सी), आई सी आई सी आई वेंचर लिमिटेड (पहले टी डी आई सी आई लिमिटेड) तथा भारतीय पर्यटन वित्त निगम लिमिटेड (टी एफ़ सी आई), विशेषीकृत वित्तीय संस्थाएँ हैं। भारतीय जीवन बीमा निगम (एल आई सी), यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया (यू टी आई) और भारतीय साधारण बीमा निगम (जी आई सी) निवेशकारी संस्थाएँ हैं।

आई डी बी आई, आई एफ़ सी आई, आई सी आई सी आई, और आई आई बी आई मझोले और बड़े उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करती हैं जबकि सिड्बी लघु उद्योग क्षेत्र की वित्तीय आवश्यकताएँ पूरी करती है। विशेषीकृत वित्तीय संस्थाओं में आर सी टी सी और टी डी आई सी आई अधिकतर ज्ञान आधारित सूचना प्रौद्योगिकी और संबद्ध क्षेत्रों में नवोदित कंपनियों को जोखिम पूँजी (रिस्क कैपिटल), उद्यम पूँजी (वेंचर कैपिटल) और प्रौद्योगिकी वित्त प्रदान करती हैं। टी एफ़ सी आई होटलों और पर्यटन से जुड़ी परियोजनाओं को सहायता देती है। निवेशकारी संस्थाओं में एल आई सी जीवन बीमा का कारोबार करती है जबकि जी आई सी साधारण बीमा सुरक्षा प्रदान करती है। यू टी आई यूनिटें बेचकर छोटे निवेशकों की बचतें जमा करती है तथा मुख्यतः आनुषंगिक पूंजी बाजार के कार्यकलापों के ज़रिए उन्हें निगमित निवेशों की दिशा में ले जाती है। इसके अलावा निवेशकारी संस्थाएँ उद्योगों को ऋण के रूप में तथा उनके शेयरों और ऋण पत्रों की ज़मानत लेकर या उन्हें सीधे-सीधे ख़रीदकर भी सहायता देती हैं। राज्य वित्तीय निगम अपने-अपने राज्यों में मुख्यतः छोटे और मझोले उद्यमों को सहायता देते हैं जबकि राज्य औद्योगिक विकास निगम मझोले और बड़े उद्योगों की ज़रूरतें पूरी करते हैं। वित्तीय सहायता देने के अलावा, ये संवर्धन (प्रोमोशन) और विकास की गतिविधियाँ भी चलाते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भारतीय रिज़र्व बैंक अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं का नियमन और निगरानी करता है। ये संस्थाएँ आई डी बी आई, आई सी आई सी आई लिमिटेड, आई एफ़ सी आई लिमिटेड, आई आई बी आई लिमिटेड, नाबार्ड, एन एच बी, एक्ज़िम बैंक, टी एफ़ सी आई, सिड्बी और आई डी एफ़ सी हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक इन संस्थाओं का यथास्थल निरीक्षण भी करता है तथा उसने समय-समय पर सूचनाएँ माँगकर संस्था की पीठ पीछे निगरानी की एक व्यवस्था भी विकसित की है।

11.2 विकास बैंकिंग

भारत में विकास बैंक स्वतंत्रता के बाद अस्तित्व में आए। स्वतंत्रता से पहले यहाँ केवल व्यापारिक बैंक थे जो व्यापारी समुदाय को अल्पकालिक कार्यकारी पूँजी प्रदान करते थे। इसलिए ऐसी संस्थाओं की ज़रूरत महसूस की गई जो उद्यमों को मध्यकालिक और दीर्घकालिक वित्त प्रदान कर सकें। भारत में 1948 में स्थापित पहला विकास बैंक **भारतीय औद्योगिक वित्त निगम** था। इसका उद्देश्य था : 'भारतीय औद्योगिक उद्यमों को अधिक आसानी से मध्यकालिक और दीर्घकालिक ऋण प्रदान करना, विशेषकर ऐसी

संस्थाओं को जहाँ सामान्य बैंकिंग सुविधा अपर्याप्त थी या पूँजी निर्गम (कैपिटल इशू) की विधि का सहारा लेना अव्याहवारिक था।"

विकास बैंक अनेक कार्यों में व्यापारिक बैंकों से भिन्न होते हैं। किसी फ़र्म की कार्यकारी पूँजी संबंधी आवश्यकताओं के लिए अल्पकालिक ऋण देना व्यापारिक बैंकिंग का प्रमुख सरोकार है। दूसरी तरफ़ विकास बैंक कंपनी की अचल परिसंपत्तियों में निवेश के लिए मध्यकालिक से लेकर दीर्घकालिक ऋण प्रदान करते हैं। व्यापारिक बैंक प्रतिभूतिमुखी होते हैं जबकि विकास बैंक परियोजनामुखी होते हैं। विकास बैंक व्यापारिक बैंकों के साथ मिलकर भी बड़ी परियोजनाओं के लिए वित्त देते हैं। हाल में विकास बैंकों को निगमित उद्यमों को लिए अल्पकालिक कार्यकारी पूँजी देने की अनुमति भी दे दी गई है। उन्होंने दूसरे अनेक प्रकार की वित्तीय गतिविधियों में भी प्रवेश किया है तथा विभिन्न वित्तीय सेवाएँ भी चलाई हैं।

विकास बैंकों की उपरोक्त महत्वपूर्ण विशेषताओं के बाद हम भारत के महत्वपूर्ण विकास बैंकों के कार्यकलाप की संक्षिप्त व्याख्या करना चाहेंगे।

11.3 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई डी बी आई)

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक देश के चार अखिल भारतीय विकास बैंकों में से एक है। इसके अलावा यह दीर्घकालिक औद्योगिक वित्त के क्षेत्र की शीर्ष बैंकिंग संस्था भी है। इस तरह यह अन्य अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं के कार्यों व गतिविधियों को समन्वित करने वाली प्रमुख वित्तीय संस्था की तरह काम करती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आई.डी.बी.आई. की स्थापना 1964 में, पूरी तरह रिजर्व बैंक की स्वामित्व वाली सहायक कंपनी (सब्सिडियरी) के रूप में की गई थी। फरवरी 1976 में इसे रिजर्व बैंक से अलग करके उसकी पूरी शेयर पूंजी केंद्र सरकार को हस्तांतरित कर दी गई। मार्च 1994 में आई डी बी आई अधिनियम को संशोधित करके आई डी बी आई को जनता के लिए शेयर/अंश पूँजी जारी करने का अधिकार दे दिया गया, पर शर्त यह थी कि केंद्र सरकार का हिस्सा 51 प्रतिशत से नीचे न जाए। इसके बाद आई डी बी आई का जुलाई 1995 में पहला सार्वजनिक निर्गम आया जो तब तक भारत के स्टाक बाज़ार में अंश पूंजी का सबसे बड़ा निर्गम था। इसके अधिकांश शेयर आज भी केंद्र सरकार के पास हैं, हालाँकि सरकार की पूंजी घटकर 72.14 प्रतिशत रह गई है।

विकास वित्त की शीर्ष संस्था के रूप में आई डी बी आई बड़े और मझोले उद्यमों को प्रत्यक्ष सहायता देती है और अप्रत्यक्ष सहायता भी। आई डी बी आई की प्रत्यक्ष सहायता उसकी कुल सहायता का एक बड़ा भाग है। परियोजना वित्त के माध्यम से प्रत्यक्ष सहायता शेयरों और ऋण पत्रों की ज़मानत लेकर, या उन्हें सीधे-सीधे खरीदकर, स्थगित भुगतान की ज़मानत के रूप में तथा उपकरण वित्त योजनाओं के रूप में दी जाती है। आई डी बी आई सर्वाधिक ऋणों के पुनर्वित्त (रिफ़िनांस) और हुन्डियों के पुनर्बट्टे (रि-डिस्काउंटिंग) के रूप में अप्रत्यक्ष सहायता देती है।

31 मार्च 1997 को आई डी बी आई की अंश पूंजी 659 करोड़ रुपये थी। इसके अलावा यह निधि की आवश्यकताओं के लिए बड़े-बड़े ऋण भी लेती है। पहले यह सरकारी प्रतिभूति वाले ऋण पत्रों के ज़रिए ऋण लेती थी, पर इधर यह अप्रतिभूत ऋण पत्रों के सार्वजनिक निर्गम या निजी प्रस्तुति के ज़रिये भी ऋण लेने लगी है। आई डी बी आई ने जमाराशि प्रमाण-पत्र जारी करके भी संसाधन जुटाए हैं। वह भारतीय उद्योगों के लिए विदेशी मुद्रा की ज़रूरतें पूरी करने के लिए विदेशी पूँजी बाज़ारों में भी ऋण जुटाती रही है। उसने एशियाई विकास बैंक, आई बी आर डी, जापान का एक्ज़िम बैंक जैसे बहुराष्ट्रीय संस्थाओं से और इनके अलावा जर्मन और फ्रांसीसी वित्तीय संस्थाओं से भी ऋण लिए हैं। उसने ब्याज की प्रतियोगी दरों पर अंतर्राष्ट्रीय पूँजी बाज़ार में चलासमान विनिमय दरों के माध्यम से ऋण जुटाए हैं।

11.4 भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (आई एफ़ सी आई) 1948 में स्थापित पहला विकास बैंक था। उसे आई एफ़ सी आई अधिनियम 1948 के अंतर्गत एक वैधानिक निगम के रूप में स्थापित किया गया था। इसका उद्देश्य भारत के औद्योगिक उद्यमों को अधिक आसानी से मध्यकालिक और दीर्घकालिक वित्त उपलब्ध कराना था। जुलाई 1993 को आई एफ़ सी आई को एक पब्लिक लिमिटेड कंपनी बना दिया गया और तब से इसे भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड कहते हैं। आई एफ़ सी आई का हर शेयर धारक इसी दिन से इस नई कंपनी का शेयर धारक बन गया। आई एफ़ सी आई में अधिक लोच पैदा करना तथा उसे बदलती वित्त व्यवस्था की ज़रूरतों के प्रति संवेदनशील बनाना उसके पब्लिक लिमिटेड कंपनी में बदलने का एक कारण था। एक पब्लिक लिमिटेड कंपनी बनाए जाने के बाद आज आई एफ़ सी आई की कार्य विधि में इतनी लोच आ गई है कि कार्यकलाप की अधिक स्वायत्तता के साथ तथा उपभोक्ताओं को अच्छी सेवाएँ देने और पूँजी बाज़ारों का दोहन करने के लिए वह अपने कारोबार की रणनीतियों का पुनर्निधारण कर सके। 1948 के अधिनियम के अंतर्गत आई एफ़ सी आई के लिए पूँजी बाज़ार में प्रवेश करना मना था। केवल सरकार की प्रतिभूति होने पर ही वह उसमें प्रवेश कर सकती थी। इस तरह उसे एक प्रतियोगी आधार पर संसाधन जुटाने से रोक दिया गया था। एक संयुक्त कंपनी के रूप में आज आई एफ़ सी आई ऋण और शेयर दोनों रूपों में संसाधन जुटाने के लिए पूँजी बाजार में प्रवेश कर सकती है। कंपनी बनने के बाद उसने 1993-94 में जनता के लिए अंश पत्र शेयर जारी किए जिनका कुल मूल्य 525 करोड़ रुपये था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.5 भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम लिमिटेड

भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम लिमिटेड (आई सी आई सी आई) भारत में 1955 में एक संयुक्त पूँजी कँपनी के रूप में स्थापित होने वाला पहला विकास बैंक था। यद्यपि तब तक भारतीय औद्योगिक वित्त निगम अस्तित्व में आ चुका था, पर सार्वजनिक क्षेत्र में एक और निगम की आवश्यकता मुख्यतः भारतीय उद्योगों के लिए विश्व बैंक से धन जुटाने तथा भारत में एक पूँजी बाज़ार का निर्माण करने के लिए भी महसूस की गई। आरंभ में उसकी पूरी अंश पूँजी व्यापारिक बैंकों, बीमा कंपनियों व अन्य वित्तीय संस्थाओं

के पास थी। लेकिन आगे चलकर बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद उनकी अंश पूँजी का बड़ा भाग इन राष्ट्रीयकृत संस्थाओं के पास आ गया। 1991 में आई सी आई सी आई द्वारा अंश पूँजी के सार्वजनिक-सह-वरीयता निर्गम के बाद उसके शेयर धारकों की संख्या अच्छी खासी बढ़ी। 31 मार्च, 2001 को उसके प्रमुख शेयर धारक यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया (6.63%), बीमा कंपनियाँ (23.4%), विदेशी संस्थागत निवेशक और अनिवासी भारतीय (15.11%), निगमित निकाय (7.53%), बैंक और वित्तीय संस्थाएँ (3.11%) तथा व्यक्ति (10.21%) थे। ए डी आर धारकों के जमाकर्त्ता के रूप में ड्यूश बैंक के पास उसके 32.65% शेयर थे।

परियोजना वित्त देने का कारोबार परंपरागत रूप से इस निगम का प्रमुख कार्य रहा है। लेकिन कालक्रम में इसने अनेक गैर-परियोजनागत गतिविधियाँ भी शुरू की हैं तथा सहायक कंपनियाँ स्थापित करके नए, मगर संबद्ध गतिविधियों में पाँव पसारे हैं। उदाहरण के लिए, हाल के वर्षों में आई सी आई सी आई ने निगमित उद्योगों को दिए जाने वाले ऋण में ख़ासी बढ़ोत्तरी की है। यह ऋण 1997 में 9.1 तो 2001 में 39.8 प्रतिशत था। आज उसके कुल ऋण पत्राधान में लगभग 3 प्रतिशत भाग खुदरा बैंकिंग का है। इनमें सम्मिलित हैं- वाहनों, मकानों आदि के लिए ऋण। परियोजना वित्त के क्षेत्र में भी बुनियादी ढाँचे के परियोजना-वित्त का भाग बढ़ा है तथा विनिर्माण क्षेत्र के परियोजना वित्त का भाग 1997 के 73% से घटकर 2001 में 35% रह गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हालाँकि आई सी आई सी आई ने अपनी सहायक कंपनियों के माध्यम से अनेकानेक अन्य वित्तीय सेवाओं में प्रवेश किया है, मगर उसने अपने ही सहायक कंपनी आई सी आई सी आई बैंक लिमिटेड के साथ विलय करके एक महत्वपूर्ण कदम भी उठाया है। आई सी आई सी आई लिमिटेड के साथ उसकी दो सहायक कंपनियों आई सी आई सी आई पर्सनल फ़िनांस सर्विसज़ तथा आई सी आई सी आई कैपिटल का भी बैंक के साथ विलय हो गया। इस तरह आई सी आई सी आई बैंक लिमिटेड देश का निजी क्षेत्र का सबसे बड़ा बैंक बन चुका है जिसके तुलनपत्र (बैलेंस शीट) में 1,04,000 करोड़ रुपये की राशि है तथा पूँजी पर्याप्तता (कैपिटल एडेक्वेसी) अनुपात 11.44 प्रतिशत है।

स्पष्ट है कि सभी प्रकार के बैंकिंग और वित्तीय कारोबार करने वाले सर्वोपयोगी बैंक के रूप में सामने आना इस विलय का उद्देश्य था। संभवतः आई सी आई सी आई लिमिटेड ने यह महसूस किया कि गतिविधियों की एक विशेष शाखा (अर्थात् परियोजना-वित्त) में विशेषज्ञता के दिन अब जा चुके हैं क्योंकि परियोजना वित्त एक अपेक्षाकृत लंबी अवधि में प्रतिफल दिलाता है, जबकि व्यापारिक बैंकिंग जल्द और किसी भारी जोखिम के बिना प्रतिफल दिलाती है। विलय के बाद आई सी आई सी आई बैंक लिमिटेड को, विलय जन्य इकाई की समस्त देनदारियों पर नक़द आरक्षित अनुपात, वैधानिक तरलता अनुपात और प्राथमिकता-प्राप्त क्षेत्रों के लिए ऋण की व्यवस्था की आवश्यकताएँ पूरी करनी होंगी।

बोध प्रश्न 1

1) व्यापारिक बैंकिंग और विकास बैंकिंग में अंतर कीजिए। विकास बैंकों का विनियमन व निगरानी कौन करता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) एक विकास बैंक के मुख्य कार्य क्या-क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

3) आई सी आई सी आई बैंक लिमिटेड के साथ आई सी आई सी आई लिमिटेड के विलय के क्या कारण थे?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.6 भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक लिमिटेड

भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक लिमिटेड (आई आई बी आई) मूलतः भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक अधिनियम, 1984 के अंतर्गत भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक के नाम से स्थापित किया गया था। यह उद्योगों के आधुनिकीकरण, प्रसार, पुनर्गठन, विविधीकरण और युक्तीकरण के द्वारा औद्योगिक पुनर्जीवन की प्रमुख ऋण व पुनर्निर्माण एजेंसी था। मगर औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (बी आई एफ़ आर) की स्थापना के बाद औद्योगिक पुनर्निर्माण की प्रमुख एजेंसी के रूप में आई आई बी आई की भूमिका कम हो गई। इसलिए यही उपयुक्त समझा गया कि उसे विकास-वित्त की एक भरी-पूरी, सर्व-उद्देश्यीय संस्था में बदल दिया जाए। उसे कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत एक सरकारी कंपनी बनाकर भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक का नया नाम दे दिया गया। बदलते वातावरण की चुनौतियों के अनुसार उसे कामकाज संबंधी पर्याप्त लोच और कार्यात्मक स्वायत्तता देना इस पुनर्रचना का उद्देश्य था।

आई आई बी आई एक विकास बैंक के सारे कार्य करता है। इनमें मझोली व बड़ी औद्योगिक इकाइयों को दीर्घकालिक/मध्यकालिक ऋण/सहायता प्रदान करना तथा शेयरों व बांडों के निर्गम की ज़मानत देना भी शामिल है।

11.7 भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिड्बी)

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक अपनी स्थापना के समय से ही लघु उद्योगों समेत सभी उद्योगों के लिए शीर्षस्थ वित्तदायी बैंक का काम कर रहा था। लेकिन जब लघु उद्योगों के लिए वित्त की आवश्यकताओं में सार्थक वृद्धि हो गई तो उन उद्योगों के लिए एक अलग शीर्षस्थ बैंक की ज़रूरत महसूस की गई। परिणाम था भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिड्बी) की स्थापना, जिसने आई डी बी आई से छोटे उद्योगों के लिए वित्त व्यवस्था के कार्य ले लिए।

सिड्बी सूक्ष्म और लघु क्षेत्रों के उद्योगों के संवर्धन, वित्त व्यवस्था और विकास के लिए देश की प्रमुख संस्था है। यह ऐसी ही गतिविधियों में लगी दूसरी संस्थाओं के कार्यों का समन्वय करती है। सिड्बी वित्त व्यवस्था और संवर्धन, दोनों प्रकार की गतिविधियाँ चलाती तथा सहायता-सेवाएँ प्रदान करती है।

सिड्बी की वित्त-व्यवस्था की गतिविधियों को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :

1) प्रत्यक्ष सहायता, और

2) अप्रत्यक्ष सहायता।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) **प्रत्यक्ष सहायता :** लघु उद्योगों को प्रत्यक्ष सहायता निम्न प्रकार से दी जाती है:

   अ) **परियोजना वित्त :** नई इकाइयों की स्थापना तथा मौजूद इकाइयों के प्रकार/ विविधीकरण/ आधुनिकीकरण/ औद्योगिक उन्नयन के लिए परियोजना-वित्त की व्यवस्था की जाती है।

   ब) **उपकरण वित्त योजना :** इस योजना में मौजूद इकाइयों के प्रसार और आधुनिकीकरण के लिए सहायता दी जाती है।

   स) **प्रौद्योगिकी विकास और आधुनिकीकरण निधि योजना :** यह सिड्बी की एक नई योजना है जिसमें इंजीनियरिंग, वस्त्र, बिजली व इलेक्ट्रॉनिकी, चीनी मिट्टी व दूसरे बर्तनों आदि की इकाइयों को सहायता दी जाती है।

   द) **हुण्डी वित्त व्यवस्था :** हुण्डी वित्त (बिल फाइनेंश) सिड्बी द्वारा दी जाने वाली सहायता का सबसे बड़ा भाग है। ये बट्टागत हुण्डियाँ (डिस्काउंटेड बिल्स) दो श्रेणियों में आती हैं :

   - लघु क्षेत्र में मशीनों/पूंजीगत वस्तुओं के निर्माताओं द्वारा उपकरणों की बिक्री के कारण व्यवहारी अवधि बीजकों (यूज़ेंस बिल्स) पर प्रत्यक्ष बट्टा। इसके कारण वे अपने भावी खरीददारों/उपयोगकर्ताओं को स्थगित भुगतान की सुविधा प्रदान कर सकते हैं।

   - छोटी इकाइयों द्वारा जो पुर्ज़े, उप-संयोजन, सहायक उपकरण और मध्यवर्ती साज़-सामान बनाकर ऋण के रूप में मझोले और बड़े उद्योगों को

दिए जाते हैं, उनके अल्पकालिक बीजकों (Bill) पर प्रत्यक्ष बट्टा। इस योजना का उद्देश्य छोटी इकाइयों की तरलता और नक़दी के प्रवाह में सुधार लाना है क्योंकि वे मझोली और बड़ी कंपनियों को बेचे गए मालों का शीघ्र भुगतान पा जाते हैं।

य) **अंश पूँजी सहायता योजना :** सिड्बी विभिन्न प्रकार की कंपनियों को अंश पूंजी सहायता देती है। यह व्यापारिक बैंकों को छोटी औद्योगिक इकाइयों वाले ग्राहकों से खरीदारी के सौदे निपटाने के लिए अनेक प्रकार के ऋण देती है। छोटी इकाइयों को राष्ट्रीय अंश पूँजी निधि योजना में सहायता दी जाती है। महिला उद्यम निधि योजना और भूतपूर्व सैनिक रोज़गार योजना में वीज पूँजी भी दी जाती है। राष्ट्रीय अंश पूँजी निधि योजना के अंतर्गत 1995-96 में 730 उद्यमियों को 618 करोड़ की सहायता दी गई जबकि 1994-95 में 536 उद्यमियों को 3.1 करोड़ की सहायता दी गई थी।

र) **उद्यम पूँजी (वेंचर कैपिटल) सहायता :** सिड्बी उद्यम पूँजी निधि से भी सहायता देती है। यह दूसरी उद्यम पूँजी कंपनियों की निधियों को भी खरीदती है। सिड्बी ने जिन परियोजनाओं को उद्यम पूँजी की सहायता दी है, वे भारी जोखिम वाले, विशिष्टीकरण वाले और आयात-विस्थापन वाले क्षेत्रों में हैं। इनमें से अधिकांश परियोजनाओं का प्रस्ताव देश में विकसित प्रौद्योगिकी के उपयोग करने का है और उन्हें अनुभवी तकनीकी उद्यमियों ने स्थापित किया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) **अप्रत्यक्ष सहातया :** सिड्बी उद्योगों को निम्नलिखित माध्यमों से अप्रत्यक्ष सहायता देती है:

अ) बैंकों, राज्य वित्त निगमों और राज्य औद्योगिक विकास निगमो द्वारा दिए गए सावधिक ऋणों का पुनर्वित्तीकरण (रिफ़िनांस) करके, और

ब) छोटे उद्योगों के बीजकों (Bill) का पुनर्बट्टा करके।

11.8 राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड)

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) कृषि और ग्रामीण विकास के क्षेत्र की शीर्षस्थ वित्तीय संस्था है। इसे कृषि ऋण विभाग तथा भारतीय रिजर्व बैंक के ग्रामीण नियोजन एवं ऋण प्रकोष्ठ का तथा कृषि पुनर्वितीकरण एवं विकास निगम के पूरे ढाँचे का विलय करके जुलाई 1982 में स्थापित किया गया था।

नाबार्ड निम्नलिखित कार्य करता है :

1) **कृषि क्षेत्र के लिए ऋण :** कृषि और विभिन्न संबद्ध गतिविधियों, जैसे लघु सिंचाई, बागान और बागबानी, कृषि-विकास, कृषि का यंत्रीकरण व पशुपालन के पुनर्वित्तीकरण द्वारा नाबार्ड कृषि क्षेत्र को वित्तीय सहायता प्रदान करता है। यह पुनर्वित्तीकरण व्यापारिक बैंकों, राज्यों के सहकारी बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा राज्यों के भूमि विकास बैंकों को प्रदान किया जाता है। पुनर्वित्तीकरण के अलावा नाबार्ड राज्य सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को अल्पकालिक ऋण भी देता है ताकि वे मौसमी खेतिहर कामों, फ़सलों के विपणन, खेती में आवश्यक वस्तुओं की खरीद के लिए वित्त की व्यवस्था कर सकें।

2) **विकास कार्य :** नाबार्ड विकास की विभिन्न गतिविधियाँ चलाता है, जैसे ऋण योजनाओं के निर्धारण, संस्थाओं के निर्माण, अनुसंधान और प्रौद्योगिकी का प्रोत्साहन। यह ग्रामीण ऋण संगठनों का समन्वय भी करता है तथा कृषि व ग्रामों की समस्याओं के समाधान के लिए विशेषज्ञता का विकास भी करता है।

3) **नियामक कार्य :** बैंकिंग नियमन अधिनियम 1949 ने नाबार्ड को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और सहकारी बैंकों के निरीक्षण की शक्ति दे रखी है। एक नई शाखा के आरंभ के लिए रिजर्व बैंक की अनुमति प्राप्त हो सके, इसके लिए नाबार्ड की सिफ़ारिश आवश्यक है।

11.9 राष्ट्रीय आवास बैंक (एन एच बी)

आवास वित्त के शीर्षस्थ बैंक के रूप में राष्ट्रीय आवास बैंक (एन एच बी) को जुलाई 1988 में राष्ट्रीय आवास बैंक अधिनियम 1987 के अंतर्गत स्थापित किया गया था। यह पूरी तरह भारतीय रिज़र्व बैंक के स्वामित्व वाली एक सहायक कंपनी है। यह क्षेत्रीय व स्थानीय स्तरों पर आवास वित्त देने वाली संस्थाओं को प्रोत्साहन देने तथा ऐसी संस्थाओं को वित्तीय व अन्य सहायता प्रदान करने वाली प्रमुख एजेंसी है।

एन एच बी की अंश पूँजी 300 करोड़ रुपये है जो भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा दी गई है। एन एच बी बांडों, ऋण पत्रों और ऋणों जैसे अनेक ऋण प्रपत्रों के माध्यम से भी संसाधन जुटाता है। इसके सरकार द्वारा प्रत्याभूत बांड व्यापारिक बैंकों के लिए एस एल आर बांडों के रूप में मान्य हैं। इसके अलावा इसे यू एस ए आई डी, जापान की ओ ई सी एफ आदि अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों से बाहरी सहायता भी मिलती है। यह व्यापारिक बैंकों द्वारा संचालित गृह-ऋण खातों के रूप में भी जमाराशियाँ स्वीकार करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यह बैंक पूरे देश में फैली आवास-वित्त कंपनियों को पुनर्वित्तीकरण की सुविधा देता है। इसमें सबसे बड़ा भाग इन्हीं कंपनियों का है। इसके बाद व्यापारिक बैंकों, सहकारी बैंकों और भूमि विकास बैंकों का स्थान आता है।

एन एच बी से पुनर्वित्तीकरण पाने के लिए पात्रता के मानदंड इस प्रकार हैं:

1) आवास-वित्त कंपनी की शेयर पूँजी कम से कम 3 करोड़ रुपये हो तथा कुल पूँजी में प्र[illegible]ों ([illegible]र्स) का भाग कम से कम 25 प्रतिशत हो।

2) वह एक पब्लिक लिमिटेड कंपनी के रूप में पंजीकृत हो। आवासी उद्देश्यों से मकानों के निर्माण/खरीद के लिए दीर्घकालिक वित्त का कुल ऋणों में भाग कम से कम 75 प्रतिशत हो।

3) वह किसी निर्माण कंपनी की सहायक न हो। आवास वित्त कंपनी के शीर्षस्थ प्रबंधकों को प्रवर्तकों की निर्माण कंपनी में वैसे ही पद प्राप्त नहीं होने चाहिए।

राष्ट्रीय आवास बैंक ऋण के आकार के आधार पर आवास-वित्त कंपनियों को भिन्न-भिन्न दरों से पुनर्वित्त प्रदान करता है। आवास-वित्त कंपनियों को दिए गए पुनर्वित्त के अनुसार एन एच बी का कार्यकलाप निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका 11.1

राष्ट्रीय आवास बैंक द्वारा प्रदान किया गया पुनर्वित्त

वर्ष	आवास-वित्त कंपनियों द्वारा जारी राशि (करोड़ रुपयों में)	एन एच बी द्वारा दिया गया पुनर्वित्त (करोड़ रुपयों में)	(2) में (3) का प्रतिशत भाग
(1)	(2)	(3)	(4)
1990-91	0953.9	अ	-
1991-92	1237.4	अ	-
1992-93	2395.4	अ	-
1993-94	2823.2	244.4	8.7
1994-95	3524.3	275.6	7.8
1995-96	4399.6	248.4	5.6
1996-97	4618.7	327.7	7.1

स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट, राष्ट्रीय आवास बैंक

अ= अनुपलब्ध

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस तरह 6 वर्षों के काल में आवास वित्त कंपनियों द्वारा दिए गए ऋणों की रकम लगभग पाँच गुनी हो गई है, हालांकि एन एच बी द्वारा प्रदान किया गया पुनर्वित्त जारी किए गए ऋणों का मात्र 7 प्रतिशत था। आवास-वित्त कंपनियों ने 90 प्रतिशत से अधिक आवास-ऋण अपने स्वयं खुद के संसाधनों से प्रदान किए हैं।

11.10 भारतीय निर्यात-आयात बैंक (एक्ज़िम बैंक)

भारतीय निर्यात-आयात बैंक (एक्ज़िम बैंक) की स्थापना 1982 में की गई। उसका उद्देश्य देश के विदेशी व्यापार के लिए वित्त की व्यवस्था, उसके प्रोत्साहन और संवर्धन के लिए था। यह बैंक पूरी तरह भारत सरकार के स्वामित्व में है। यह आयात-निर्यात के लिए वित्त-व्यवस्था में कार्यरत संस्थाओं के कामकाज का समन्वय करने के लिए देश की शीर्षस्थ वित्तीय संस्था है। निर्यात-वित्त के अलावा यह निर्यातकों तथा विदेशी व्यापार से जुड़े अन्य संगठनों को विभिन्न परामर्श सेवाएँ भी प्रदान करता है।

एक्ज़िम बैंक की प्रदत्त पूँजी (पेड-अप कैपिटल) 500 करोड़ रुपये है जो भारत सरकार से प्राप्त हुई है। अपनी अंश पूँजी के अलावा यह बैंक घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों में संसाधन भी जुटाता है जो उसकी निधि का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। देश के अंदर बांड, सावधि जमाराशियाँ, जमाराशियों के प्रमाण-पत्र, सावधिक धन के रूप में प्राप्त ऋण उसके विविधतापूर्ण संसाधन-भंडार में शामिल हैं। इस बैंक की ऋण-योजनाओं को क्रिसिल और आई सी आर ए नाम साख निर्धारक अभिकरणों से 'ए ए ए' प्रमाण-पत्र प्राप्त हैं। एक्ज़िम बैंक ने अंतर्राष्ट्रीय बैंकों से मध्यकालिक निषदित् (Syndicated) ऋणों के रूप

में विदेशी मुद्रा में ऋण भी जुटाए हैं। अंतराष्ट्रीय वित्त निगम ने इसे ऋण-सुविधा प्रदान की है। इसी तरह दूसरे विदेशी बैंकों और संस्थाओं ने इसे आयात-ऋण की सुविधा दी है जिसके अंतर्गत एक्ज़िम बैंक ने विदेशी मुद्रा प्राप्त की है।

एक्ज़िम बैंक अनेक प्रकार के ऋण व सेवा कार्यक्रम चलाता है जो भारतीय संगठनों, व्यापारिक बैंकों और विदेशी संगठनों के लिए हैं। यह बैंक भारतीय निर्यातकों के लाभार्थ अनेक प्रकार की योजनाएँ चलाता है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

1) **निर्यात (आपूर्तिकर्ता) ऋण :** यह ऋण भारतीय निर्यातकों को दिया जाता है ताकि वे उपयुक्त भारतीय मालों के विदेशी आयातकों को सावधिक ऋण प्रदान कर सकें।

2) **परामर्श व प्रौद्योगिकी सेवाओं के लिए वित्त :** यह ऋण परामर्श और प्रौद्योगिकी सेवाओं के भारतीय निर्यातकों को दिया जाता है ताकि वे विदेशी आयातकों को सावधिक ऋण प्रदान कर सकें।

3) **लदाई-पूर्व ऋण :** यह ऋण भारतीय निर्यातकों को प्रदान किया जाता है ताकि वे 6 माह के निर्यात समझौते पूरे करने के लिए कच्चे माल और दूसरी आवश्यक वस्तुएँ खरीद सकें।

4) **विदेशी मुद्रा में लदाई-पूर्व ऋण :** यह ऋण सुपात्र निर्यातकों को दिया जाता है ताकि वे निर्यातमुखी उत्पादन के लिए ज़रूरी कच्चेमाल और दूसरी वस्तुएँ खरीदने के लिए वित्त पा सकें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428002240

5) **निर्यातमुखी इकाइयों और निर्यात-प्रक्रिया क्षेत्रों की इकाइयों के लिए वित्त :** यह ऋण निर्यातमुखी उत्पादन के लिए आवश्यक, देशी और आयातित मशीनों और दूसरी परिसंपत्तियों की खरीद के लिए भारतीय कंपनियों को दिया जाता है।

6) **आयात के लिए विदेशी मुद्रा में ऋण :** इस योजना के अंतर्गत सुपात्र निर्यातमुखी इकाइयाँ निर्यात उत्पादन के लिए काम वाली मशीनों के आयात के लिए विदेशी मुद्रा के ऋण प्राप्त करती हैं।

7) **विदेशी निवेश वित्त :** यह वित्त विदेशों में स्थापित संयुक्त उद्यमों या सहायक कंपनियों के भारतीय प्रवर्तकों को दिया जाता है। इससे वे ऐसे उद्यमों में पूँजी निवेश कर पाते हैं। एक्ज़िम बैंक विदेशी परियोजनाओं की व्यावहारिकता तय करने के लिए तकनीकी मूल्यांकन करने वाली एजेंसियों में से एक है। उसके बाद ही उन्हें सरकार या रिजर्व बैंक की अनुमति प्राप्त होती है।

8) **निर्यात विपणन वित्त :** यह वित्त बाजार विकास कार्यक्रमों को लागू करने तथा उत्पादन क्षमताओं को पैदा करने के लिए निर्यातकों को ऋण के रूप में दिया जाता है। इस तरह कंपनियाँ अपनी उत्पादन सुविधाओं का उन्नयन कर सकती हैं तथा औद्योगिक देशों के बाज़ारों में प्रवेश करने और वहाँ अपनी मौजूदगी बनाए रखने के लिए अपने निर्यात बाज़ार के विकास की रणनीतिक योजनाओं को लागू कर सकती हैं।

9) **उत्पादक उपकरणों के लिए वित्त :** इस योजना में सुपात्र निर्यातमुखी इकाइयों को साज-सामान और उपकरण पाने के लिए ऋण दिए जाते हैं।

10) **उत्पाद/प्रक्रिया की गुणवत्ता के प्रमाणीकरण के लिए वित्त-व्यवस्था का कार्यक्रम:** इस योजना में उत्पाद/प्रक्रिया की गुणवत्ता का प्रमाण-पत्र पाने के लिए निगमित उद्यम जो मुनासिब खर्च करते हैं, उसके 50 प्रतिशत भाग की उन्हें भरपाई कर दी जाती है।

11) **निर्यात-विक्रिय विकास वित्त :** यह सुविधा निर्यातमुखी इकाइयों के विक्रेताओं को निर्यात की क्षमता बढ़ाने के लिए संयंत्र, मशीनें तथा दूसरी परिसंपत्तियाँ पाने में समर्थ बनाती हैं।

12) **निर्यात-उत्पाद विकास वित्त :** इस योजना का उद्देश्य भारतीय फर्मों को निर्यात के लिए उत्पाद-विकास, अनुसंधान और विकास के कार्यों में समर्थ बनाना है।

एक्ज़िम बैंक देश-विदेश के व्यापारिक बैंकों को वित्त/पुनर्वित्त प्रदान करता है ताकि वे भारतीय निर्यातकों/भारत से आयात करने वालों को वित्त प्रदान कर सकें। ये कार्यक्रम इस प्रकार हैं :

1) **निर्यात (आपूर्तिकर्त्ता) ऋण के लिए पुनर्वित्त :** इस कार्यक्रम में एक्ज़िम बैंक भारतीय बैंकों को ऋण देता है ताकि वे सुपात्र वस्तुओं के उन भारतीय निर्यातकों को ऋण दे सकें जो अपने विदेशी आयातकों को 180 दिनों तक का सावधिक ऋण देते हैं।

2) **लघु उद्योगों के निर्यात-बीजकों का पुनर्बट्टा :** इस योजना में बैंक अपने ग्राहक छोटे उद्योगों के निर्यात-बीजकों (एक्सपोर्ट बिल्स) का एक्ज़िम बैंक में पुनर्बट्टा कर सकते हैं। इन बीजकों की अवधि (यूजेंस) 90 दिनों से अधिक नहीं होना चाहिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) **निर्यातमुखी इकाइयों के लिए सावधिक ऋणों का पुनर्वित्तीकरण :** इस योजना में एक्ज़िम बैंक उन बैंकों को पुनर्वित्त प्रदान करता है जो निर्यातमुखी इकाइयों को निर्यातमुखी उत्पादन के लिए देशी या आयातित मशीनें पाने के लिए ऋण प्रदान करते हैं।

4) **थोक आयात के लिए वित्त :** इस योजना का उद्देश्य बैंकों को उपभोग-योग्य आवश्यक वस्तुओं के थोक आयात के लिए आयातकों को वित्त प्रदान करने में समर्थ बनाना है।

5) **आपूर्ति-ऋण की ज़मानत-सह-पुनर्वित्तीयन :** इस योजना का उद्देश्य, अगर विदेशी ग्राहक भुगतान में असफल रहे, तो बैंकों और उनके ग्राहक निर्यातकों के लिए नकदी प्रवाह को सुरक्षित रखना है। यह योजना अग्रिम राशियों को अनिष्पादक परिसंपत्तियाँ (नान-परफार्मिंग एसेट्स) न मानकर बैंकों को सुरक्षा प्रदान करती है।

6) **साख पत्रों की पुष्टि का कार्यक्रम :** इस योजना में भारत के व्यापारिक बैंकों की यह क्षमता बढ़ाई जाती है कि वे कच्चे मालों और दूसरी वस्तुओं के आयात के लिए अपने ग्राहक आयातकों को साख पत्र (लेटर्स ऑफ़ क्रेडिट) जारी कर सकें।

7) **पुनर्परिदाय (रिलेंडिंग) सुविधा :** यह सुविधा विदेश-स्थित बैंकों को दी जाती है। इसमें एक्ज़िम बैंक इन बैंकों को ऋण देता है ताकि वे उपयुक्त भारतीय मालों के आयात के लिए अपने ग्राहकों को सावधिक वित्त दे सकें।

एक्ज़िम बैंक विदेशी इकाइयों (आयातकर्ता देशों के आयातकों/संस्थागत एजेंसियों) के लाभ की योजनाएँ भी चलाता है। ये इस प्रकार हैं :

1) **ऋण की सुविधाएँ (Lines of Credit)** : ये सुविधाएँ विदेशी वित्तीय संस्थाओं, सरकारों और उनकी एजेंसियों को दी जाती हैं ताकि वे भारत से उपयुक्त वस्तुओं के आयात के लिए ऋण प्रदान कर सकें।

2) **खरीददार ऋण (Buyer's Credit)** : यह योजना विदेशी खरीददारों को स्थगित ऋण की शर्तों पर भारत से उपयुक्त वस्तुओं के आयात में समर्थ बनाती है।

अपने वित्तदायी कार्यक्रमों के पूरक के रूप में एक्ज़िम बैंक भारतीय कंपनियों और विदेशी इकाइयों को अनेक सूचना, परामर्श और सहायता संबंधी सेवाएँ प्रदान करता है। ये इस प्रकार हैं:

अ) बाज़ार से संबंधित सूचनाएँ, रणनीतियों का विकास, क्षेत्रवार और व्यावहारिकता के अध्ययनों का आयोजन, प्रौद्योगिकी की आपूर्तियों की पहचान, भागीदार की तलाश, निवेश की सुविधा बढ़ाना, भारत और विदेशों में संयुक्त उद्यमों का विकास।

ब) परामर्श सेवाएँ जो निर्यातकों को अंतर्राष्ट्रीय जोखिम और परिसंपत्तियों का मूल्यांकन करने और व्यापार व निवेश के अवसरों में भाग लेने में समर्थ बनाता है।

बोध प्रश्न 2

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की इक्विटी सहायता योजनाओं व उद्यम पूँजी सहायता योजना को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) नाबार्ड के कार्य स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

३) पुनर्परिदाय (रिलेंडिंग) ऋण सुविधा क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) बतलाइए कि निम्नलिखित कथन सही (स) हैं या गलत (ग):

अ) राष्ट्रीय आवास बैंक भिन्न-भिन्न दरों पर आवास-वित्त कंपनियों को पुनर्वित्त प्रदान करता है। (सही/गलत)

ब) नाबार्ड कृषि-वित्त और ग्रामीण विकास क्षेत्र की शीर्षस्थ वित्तीय संस्था है। (सही/गलत)

स) आई आर बी आई एक विकास बैंक के सभी कार्य संपन्न नहीं करता। (सही/गलत)

11.11 वित्तीय संस्थाओं का नियमन

विकास-वित्त की संस्थाएँ भारतीय वित्तीय व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग हैं। ये उद्योगों के विकास, बुनियादी ढाँचे की परियोजनाओं और दूसरी बड़ी गतिविधियों के लिए दीर्घकालिक वित्त प्रदान करती हैं तथा इस तरह अर्थव्यवस्था की संवृद्धि में सहायता देती हैं। बुनियादी तौर पर वे अपने ही नियमों और घोषणा पत्रों से संचालित होती हैं। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, आई डी बी आई अधिनियम 1964 से तथा भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड, भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम लिमिटेड और भारतीय औद्योगिक निवेश निगम लिमिटेड कंपनी अधिनियम 1956 के अलावा अपने अपने साहचर्य ज्ञापनों और साहचर्य की धाराओं (MOU) से अधिशासित होते हैं। इसके अलावा भारतीय वित्तीय व्यवस्था के दोनों नियामक (रेगुलेटर्स) अर्थात् भारतीय रिज़र्व बैंक और भारतीय प्रतिभूति एवं विनमय बोर्ड (सेबी) के बनाए नियम-कायदे भी इन वित्तीय संस्थाओं को नियंत्रित करते हैं।

DIKSHANT IAS
Call Us @7428092240

भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 की धारा 45 एल रिजर्व बैंक को वित्तीय संस्थाओं पर निगरानी का अधिकार देती है। यह धारा रिजर्व बैंक को अधिकार देती है कि:

अ) वह वित्तीय संस्थाओं से उनके कारोबार से संबंधित सूचनाएँ और ब्यौरे माँगे, और

ब) इन संस्थाओं को वित्तीय संस्थाओं के रूप में काम काज करने के लिए आवश्यक निर्देश दे सके।

उपरोक्त शक्तियों से युक्त होकर रिजर्व बैंक ने निर्देशों या अन्य माध्यमों से इन वित्तीय संस्थाओं पर नियंत्रण स्थापित किया है। इनके ब्यौरे नीचे दिए जा रहे हैं।

1) संसाधन जुटाना

संसाधन जुटाने के सिलसिले में वित्तीय संस्थाओं को रिजर्व बैंक तथा भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड के निर्देशों का पालन करना पड़ता है। 1991 तक इन संस्थाओं को धन के सस्ते स्रोत उपलब्ध थे - आई डी बी आई, एक्ज़िम बैंक और आई आई बी आई को

रिजर्व बैंक की राष्ट्रीय औद्योगिक ऋण (दीर्घकालिक कार्यकलाप) निधि से ऋण और अग्रिम राशियाँ प्राप्त होती रहती थीं। सरकार उनके जारी किए हुए बांडों की जमानतदार होती थी तथा व्यापारिक बैंकों को अधिकार देती थी कि वे अपनी वैधानिक तरलता की अपेक्षा पूरी करने के लिए उन्हें खरीद सकें। सस्ते दामों पर वित्त जमा करने के ये दोनों स्रोत 1991 के बाद से उपलब्ध नहीं रहे हैं। अब वे सरकारी ज़मानत के बिना, बाज़ार द्वारा निर्धारित शर्तों पर बांडों के ज़रिए पूँजी बाजार से संसाधन जुटा सकते हैं।

बांडों के जरिए पूँजी बाजार से संसाधन जुटाने के लिए वित्तीय संस्थाओं को रिजर्व बैंक से अनुमति लेना आवश्यक है। इसके अलावा उनके लिए "सूचनाएँ सार्वजनिक करने और निवेशकों को सुरक्षा देने के बारे में विकास-वित्त की संस्थाओं को दिए गए मार्गदर्शन सिद्धांतों" का पालन करना भी आवश्यक है। ये सिद्धांत सेबी द्वारा सितंबर 1992 में जारी किए गए थे।

मई 1997 में रिजर्व बैंक ने वित्तीय संस्थाओं के लिए ऋण प्रपत्रानुसार लगी निधि संग्रह सीमाएँ समाप्त कर दीं। इसकी बजाय उसने सावधिक मौद्रिक ऋणों, जमाराशि प्रमाण पत्रों, स्थिर जमाराशियों, वाणिज्य पत्र (कामर्शियल पेपर) और अंततः औद्योगिक जमाराशियों के रूप में संसाधनों के संग्रह पर एक समग्र सीमा तय की है। प्रत्येक वित्तीय संस्था के लिए यह समग्र सीमा उसके स्वामित्व की निवल निधि का 100 प्रतिशत तय की गई है। वित्तीय संस्थाओं को एक से पाँच वर्षों तक के लिए स्थिर जमाराशियाँ स्वीकार करने तथा न्यूनतम 10 लाख रुपये तक की जमाराशियों के प्रमाण पत्र जारी करने की अनुमति भी दी गई है। नंवबर 2000 से वित्तीय संस्थाओं द्वारा जमा सावधिक जमाराशियों के लिए साख योग्यता क्रम निर्धारण अनिवार्य बना दिया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भारतीय रिजर्व बैंक ने 1997-98 के दौरान इन संस्थाओं को 5 वर्ष या अधिक की परिपक्वता अवधि के बांड बिना उसकी पूर्व अनुमति के जारी करने की छूट दे दी है। इसके लिए सिर्फ रिजर्व बैंक में पंजीकरण आवश्यक है। इसके लिए शर्त बस यही है कि ये बांड विकल्पों आदि से रहित हों, तथा उनको जारी करने के समय भारत सरकार की समान परिपक्वता प्रतिभूतियों पर होने वाली आय की तुलना में इन बांडों पर ब्याज की दर 200 आधार बिंदुओं से अधिक न हो। एक सौ आधार बिंदुओं को एक प्रतिशत के समान माना जाता है। बांडों के अन्य सभी निर्गमों पर रिजर्व बैंक की अनुमति लेनी पड़ती है। रिजर्व बैंक ने अप्रैल 2000 में वित्तीय संस्थाओं को बांडों के ज़रिए संसाधन जुटाने के लिए और अधिक स्वतंत्रता और लोच दी गई है, बशर्ते वे स्वामित्व की मात्र निधि संबंधी समग्र सीमा के अंदर हों। इस समय उनके द्वारा लिए जाने वाले कुल ऋण उनकी निवल स्वामित्व निधि के दस गुने की सीमा के अंदर हों।

ऋण निर्गम प्रस्ताव पत्रक की एक प्रति SEBI के पास जमा करानी होती है। प्रमुख निगर्म प्रबंधक द्वारा यह प्रमाणित करना भी आवश्यक है कि उपर्युक्त पत्रक सेबी नियमों के अनुरूप है।

2) उद्भासन (एक्सपोज़र) के मानक

सावधिक ऋण संबंधी जोखिम को कम करने के लिए रिजर्व बैंक ने सावधिक ऋणदायी संस्थाओं (अर्थात् आई डी बी आई, आई सी आई सी आई, आई आई बी आई, एक्ज़िम

बैंक और टी एफ सी आई) और पुनर्वित्त संस्थाओं (अर्थात् सिड्बी, एन एच बी और नाबार्ड) के लिए उद्भासन की सीमाएँ तय की हैं। यह सीमा संस्था की पूँजीगत निधि के अनुसार होती है। पहले यह ऋण लेने वाले व्यक्तियों के लिए प्रदत्त पूँजी के 25 प्रतिशत और ऋण लेने वाले समूहों के लिए 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होती थी। इसमें निधि संपन्न (फ़ंडेड) और निर्धारित ऋण की सीमाएँ, ज़मानत और अन्य प्रतिबद्धताएँ शामिल होती हैं। सितंबर 1997 के बाद समूहों के लिए उद्भासन की सीमा बढ़ाकर 60 प्रतिशत कर दी गई है, बशर्ते यह अतिरिक्त उद्भासन केवल बुनियादी ढाँचे की परियोजनाओं के लिए हो। इसके अलावा किसी एक उद्योग के लिए उद्भासन की सीमा संस्था के ऋण पोर्ट फ़ोलियों का 15 प्रतिशत तय की गई है। ये सीमाएँ बुनियादी ढाँचा विकास वित्त कंपनी (आई डी एफ़ सी) के लिए भी हैं। मार्च 2002 के बाद अधिकतम उद्भासन को घटाकर व्यक्तियों के लिए 15 और समूहों के लिए 40 प्रतिशत कर दिया गया है। बुनियादी ढाँचे की परियोजनाओं के लिए इसकी सीमा 10 प्रतिशत अधिक है।

3) परिदाय (लेडिंग) के कार्यकलाप

वित्तीय संस्थाओं को अपने परिदाय-कार्यों के बारे में स्वायत्तता तो प्राप्त है, पर कुछ अवसरों पर इस बारे में रिजर्व बैंक ने हस्तक्षेप भी किए हैं। उसने वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रत्याशित अंश पूँजी प्रवाहों/निर्गमों के बदले काम-चलाऊ ऋण जारी करने पर प्रतिबंध लगा दिया था जिसे बाद में 23 जनवरी 1998 को समाप्त कर दिया गया। हाल में रिजर्व बैंक ने विकास-वित्त संस्थाओं को काम काजी पूँजी के लिए निगमित उद्योगों को अल्पकालिक ऋण देने की इजाजत दे दी है। रिजर्व बैंक ने इन संस्थाओं को अल्पकालिक ऋणों के लिए अलग से गैर-जोखमी ऋण की दरें (प्राइम लेंडिंग रेट्स) तय करने की अनुमति भी दी है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4) सविवेक (Prudential) और पूँजी-पर्याप्तता संबंधी दिशा-निर्देश

2 मार्च 1994 में रिजर्व बैंक ने अल्पकालिक ऋण देने वाली संस्थाओं के लिए पूँजी पर्याप्तता, आय-मान्यता, परिसंपत्तियों के वर्गीकरण तथा प्रावधान संबंधी सविवेक (प्रूडेंशियल) दिशा-निर्देश जारी किए। बाद में इन निर्देशों को सिड्बी, नाबार्ड और राष्ट्रीय आवास बैंक पर भी लागू किया गया। मामूली परिवर्तनों को छोड़ दें तो ये निर्देश वैसे ही हैं जैसे व्यापारिक बैंकों के लिए जारी किए गए हैं :

अ) **पूँजी-पर्याप्तता का मानक :** अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं से अपेक्षा थी कि वे 31 मार्च 1996 तक पूँजी पर्याप्तता (कैपिटल एडेक्वेसी) का 8 प्रतिशत स्तर प्राप्त करें। पूँजी पर्याप्तता के मानक को परिसंपत्तियों से जोखिम के प्रतिशत रूप में व्यक्त किया जाता है। दिसंबर 1998 में वित्तीय संस्थाओं के लिए पूँजी पर्याप्तता का न्यूनतम मानक बढ़ाकर 9 प्रतिशत कर दिया गया जो 31 मार्च 2000 से लागू होता था। आई एफ सी आई लिमिटेड को छोड़ सभी वित्तीय संस्थाएँ मार्च 2001 तक यह स्तर प्राप्त कर चुकी थीं। व्यापारिक बैंकों संबंधी मानकों के ढर्रे पर पूँजीगत निधियों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है - स्तर एक और स्तर दो की पूँजी।

ब) **आय की मान्यता :** अगर किसी परिसंपत्ति (एसेट) पर ब्याज/मूल 180 दिनों से अधिक समय से न मिला हो तो 31 मार्च 2002 से वित्तीय संस्थाओं को अधिकार

प्राप्त हैं कि वे उस परिसंपत्ति को अनिष्पादक परिसंपत्ति (एन पी ए, नान-परफार्मिंग एसेट) करार दे सकें। इन परिसपंत्तियों पर वित्तीय संस्थाएँ ब्याज-आय, शुल्क या अन्य किसी व्यय (Charge) को, जब तक वे वास्तव में प्राप्त न हों, मान्यता नहीं देंगी।

स) **परिसंपत्तियों का वर्गीकरण और प्रावधान-निर्धारण (प्राविज़निंग) :** वित्तीय संस्थाओं के लिए परिसपंत्तियों के वर्गीकरण और प्रावधान-निर्धारण का आधार लगभग वैसा ही है जैसा व्यापारिक बैंकों के लिए निर्धारित है।

11.12 प्रमुख वित्तीय संस्थाओं के कार्यकलाप

तालिका 11.2 में हाल के वर्षों में तीन अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं द्वारा वितरित राशियाँ दिखाई गई हैं। इनमें आई सी आई सी आई का भाग बढ़ा है जबकि दूसरी दो संस्थाओं का घटा है।

तालिका 11.2

प्रमुख वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिए गए ऋण

	1998-99		1999-2000		2000-2001	
संस्था	राशि (करोड़ रु. में)	% भाग	राशि (करोड़ रु. में)	% भाग	राशि (करोड़ रु. में)	% भाग
अ) आईडीबीआई	14,470	37.6	17,059	37.0	17,498	33.9
आईसीआईसीआई	19,225	49.9	25,836	55.9	31,965	62.0
आईएफसीआई	4,819	12.5	3,272	7.1	2121	4.1
योग	**38,514**	**100.0**	**46,167**	**100.0**	**51,584**	**100.0**

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संस्था	1998-99 में जारी राशि (करोड़ रु. में)	1999-2000 में जमा राशि (करोड़ रु. में)	2000-2001 में जमा राशि (करोड़ रु. में)
ब) अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाएँ	56,296	67,594	75,528
स) ब में अ का प्रतिशत भाग	68.4	68.3	71.1

स्रोत : रिपोर्ट आन ट्रेंडस एंड प्रोग्रेस ऑफ बैंकिंग इन इंडिया (2000-01), पृ. 117

तालिका से स्पष्ट है कि अखिल-भारतीय वित्तीय संस्थाओं द्वारा जारी कुल ऋणों में 71 प्रतिशत भाग सिर्फ़ तीन संस्थाओं का है। इनमें भी आई सी आई सी आई लिमिटेड का भाग सबसे प्रमुख है और यह पिछले कुछ वर्षों से लगातार बढ़ा है।

तालिका 11.3

प्रमुख वित्तीय संस्थाओं द्वारा जुटाए गए संसाधन

(करोड़ रुपयों में)

	कुल		आईसीआईसीआई		आई डी बी आई		आई एफ सी आई	
	1999-00	2000-01	1999-00	2000-01	1999-00	2000-01	1999-00	2000-01
बांडों का सार्वजनिक निर्गम	4648 (28.5)	4062 (21.5)	2575 (37.6)	2901 (27.2)	2074 (27.0)	1161 (21.2)		
बांडों का निजी स्थापन	11663 (71.5)	14806 (78.5)	4274 (62.4)	7777 (72.8)	5603 (73.0)	4320 (78.8)	1787 (100)	2709 (100)
योग	**16311**	**18867**	**6849**	**10678**	**7676**	**5481**	**1787**	**2709**

स्रोत : रिपोर्ट ऑन ट्रेंडस एन्ड प्रोग्रेस ऑफ बैंकिंग इन इंडिया (2000-01) पृष्ठ 117.

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि वित्तीय संस्थाएँ अपने डिबेंचर बांडों के वैयक्तिक नियोजन पर अधिक भरोसा करती रही हैं। इसमें सार्वजनिक निर्गमों का भाग कम है। अपनी असंतोषजनक वित्तीय स्थिति के कारण आई एफ सी आई अपने डिबेंचरों/बांडों का कोई सार्वजनिक निर्गम नहीं कर सकी।

DIKSHANT IAS
Call Us @7428092240

इन तीनों प्रमुख वित्तीय संस्थाओं ने (जुलाई 2001 में) अपनी गैर-जोखमी ऋण की दरें इस प्रकार तय की थीं:

तालिका 11.4

प्रमुख वित्तीय संस्थाओं की परिदाय दरों (Lending Rates) का ढाँचा

	आईडीबीआई	आईसीआईसीआई	आईएफसीआई
दीर्घकालिक ऋण की गैर-जोखमी दरें (3 वर्ष से अधिक से सावधिक दरें)	13.5	12.5	13.0
मध्यकालिक ऋण की गैर-जोखिमी दरें (1 से 3 वर्ष तक के सावधिक ऋण)	12.5	12.5	-
लघु कालिक ऋण की गैर जोखिम दरें (1 साल से कम)	12.0	12.5	12.5

स्रोत : रिपोर्ट ऑन ट्रेन्ड एन्ड प्रोग्रेस ऑफ बैंकिंग इन इंडिया, 2000-01 (पृष्ठ 117)

11.13 अनिष्पादक परिसंपत्तियाँ

आई सी आई सी आई, सिड़बी और एक्ज़िम बैंक के निवल ऋणों में अनिष्पादक परिसंपत्तियों का अनुपात मार्च 31, 2001 को 10 प्रतिशत से कम था। लेकिन आई डी बी आई, आई एफ सी आई और आई आई बी आई के लिए यही अनुपात क्रमशः 14.8,

20.8 और 22.9 प्रतिशत था। इस तरह इन तीनों संस्थाओं के ऋण पत्राधार अच्छे नहीं है। इससे उनकी लाभदायकता और साख प्रभावित होती हैं।

बोध प्रश्न 3

1) भारतीय रिजर्व बैंक ने विकास वित्त संस्थाओं द्वारा संसाधन जुटाने के बारे में क्या-क्या परिवर्तन किए हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) उद्भासन के मानकों (Exposure norms) से आपका क्या अभिप्राय है? अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं के बारे में निर्धारित ऐसे मानकों के ब्यौरे दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

रिक्त स्थानों को भरें :

अ) पूँजी-पर्याप्तता मानक ..... के प्रतिशत रूप में व्यक्त किए जाते हैं।

ब) एक वित्तीय संस्था की परिसंपत्ति अगर ..... तक प्राप्त न हो तो अनिष्पादक बन जाती है।

स) अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं द्वारा जारी कुल ऋणों में प्रमुख वर्चस्व ..... का है।

11.14 सारांश

कालक्रम में वित्तीय संस्थाओं का एक सुगठित ढाँचा विकसित हुआ है। अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं में आई डी बी आई, आई सी आई सी आई लिमिटेड, आई एफ सी आई लिमिटेड, आई आई बी आई लिमिटेड, नाबार्ड, एन एच बी, एक्ज़िम बैंक, टी एफ सी आई, सिड्बी और आई डी एफ सी शामिल हैं। व्यापारिक बैंकों से भिन्न विकास बैंकों (आई डी बी आई, आई एफ़ सी आई, आई आई बी आई, सिड्बी और आई सी आई सी आई) का संबंध कंपनियों की स्थिर परिसंपत्तियों में निवेश के लिए मध्यकालिक से दीर्घकालिक ऋण प्रदान करने से होता है।

1964 में स्थापित भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई डी बी आई) दीर्घकालिक औद्योगिक वित्त की शीर्षस्थ बैंकिंग संस्था है। यह मझोले और बड़े उद्यमों को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, दोनों तरह की सहायता देती है। आई एफ सी आई अधिनियम 1948 के अंतर्गत वैधानिक निगम के रूप में स्थापित भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड को 1 जुलाई 1993 से पब्लिक लिमिटेड कंपनी में बदल दिया गया। अब ग्राहकों को उत्तम सेवाएँ प्रदान करने तथा पूँजी बाजारों का दोहन करने की रणनीतियाँ तय करने के बारे में उसमें अधिक लोच पायी जाती है।

1955 में आई सी आई सी आई की स्थापना एक संयुक्त पूँजी कंपनी के रूप में की गई थी। तत्पश्चात इसका विलय आई सी आई सी आई बैंक लिमिटेड, आई सी आई सी आई पर्सनल फिनांस और आई सी आई सी आई कैपिटल के साथ हो गया। आज वह देश में निजी क्षेत्र का सबसे बड़ा बैंक है जिसकी पूँजी पर्याप्तता 11.4 प्रतिशत है।

भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक (आई आई बी आई) की स्थापना 1984 में भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक के रूप में की गई थी। उसे फिर कंपनी अधिनियम 1956 के अंतर्गत आई आई बी आई नाम से एक सरकारी कंपनी बना दिया गया। यह एक विकास बैंक के सारे कार्य करती है, जैसे मझोली और बड़ी औद्योगिक इकाइयों को सावधिक ऋण देना, उपकरणों के लिए वित्त देना तथा शेयरों और बांडों के निर्गम की ज़मानत लेना।

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक सूक्ष्म और लघु क्षेत्र के उद्योगों के सवंर्धन, वित्त और विकास में संलग्न, देश की प्रमुख संस्था है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जुलाई 1982 में स्थापित राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) एक विशेषीकृत वित्तीय संस्था है। यह कृषि-वित्त और ग्रामीण विकास की शीर्षस्थ वित्तीय संस्था है। यह कृषि-कार्यों के लिए वित्तीय सहायता देने के साथ ही और अनेक विकास कार्य चलाता है। यह क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों व सहकारी बैंकों का नियमन भी करता है।

जुलाई 1988 में स्थापित राष्ट्रीय आवास बैंक (एन एच बी) आवास संबंधी गतिविधियों में लगी संस्थाओं को वित्तीय व अन्य सहायता देता है।

1982 में स्थापित भारतीय निर्यात-आयात बैंक (एक्ज़िम बैंक) निर्यात-वित्त देने के अलावा भारत के विदेश व्यापार को प्रोत्साहन देता है। यह निर्यातकों व विदेश व्यापार में लगी दूसरी इकाइयों को विभिन्न परामर्श सेवाएँ भी देता है।

विकास वित्त की संस्थाएँ बुनियादी तौर पर भारतीय औद्योगिक विकास बैंक अधिनियम 1964 के प्रावधानों से संचालित होती हैं। इसके अलावा इन संस्थाओं पर रिजर्व बैंक और भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमन बोर्ड (सेबी) भी अपने नियम-कायदों द्वारा नियंत्रण रखते हैं। उन्हें संसाधन जुटाने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक की अनुमति लेनी पड़ती है। इन संस्थाओं से अपने कामकाज में रिजर्व बैंक और सेबी के निर्देशों के पालन की अपेक्षा भी की जाती है।

हाल के वर्षों में प्रमुख वित्तीय संस्थाओं के कार्यकलाप में आई सी आई सी आई का सबसे प्रमुख भाग रहा है, और पिछले तीन वर्षों में यह भाग लगातार बढ़ा है। आई डी बी आई,

आई एफ सी आई और आई आई बी आई अपने ऋण पत्राधार की निम्नस्तरीय गुणवत्ता से ग्रस्त हैं।

11.15 शब्दावली

अनिर्दिष्ट पत्रक (फ्लोटिंग रेट नोट्स) : ये ऋण के वे साधन हैं जिन पर ब्याज की अलग-अलग दरें देय होती हैं। ब्याज दर का संबंध एक न्यूनतम ब्याज दर से होता है तथा इस न्यूनतम दर के बदलने पर देय ब्याज दर भी बदल जाती है।

इक्विटी सहायता योजना : कंपनी के इक्विटी शेयरों की खरीद के रूप में दी जाने वाली सहायता।

उद्भासन मानक : ये मानक यह तय करते हैं कि किसी एक ऋण प्रार्थी या किसी ऋण प्रार्थी समूह को एक वित्तीय संस्था अधिकतम कितनी सहायता दे सकती है। ये मानक संस्थाओं की पूँजी और आरक्षित निधि के प्रतिशत रूप में व्यक्त किए जाते हैं।

उद्यम पूँजी : यह वह पूँजी है जो जोखिम पूँजी निधि/कंपनी द्वारा किसी उद्यमी को एक ऐसा नया, अपारंपरिक उद्यम आरंभ करने के लिए दी जाती है जिसमें जोखिम अधिक होती है पर अधिक लाभ मिलने की आशा रहती है। यह ऋणों के अलावा अंश पूँजी के रूप में भी दी जा सकती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

परियोजना वित्त : यह एक विकास बैंक द्वारा औद्योगिक उद्यमों को एक औद्योगिक इकाई के निर्माण, प्रसार या विविधीकरण के लिए दी जाने वाली दीर्घकालिक/मध्यकालिक ऋण सहायता है।

काम-चलाऊ ऋण : ये अल्पकालिक ऋण होते हैं जो एक बैंक या वित्तीय संस्था के सावधिक ऋण प्रार्थियों को दिए जाते हैं ताकि वे अपनी धन संबंधी तात्कालिक आवश्यकताएँ पूरी कर सकें। जब वित्तीय संस्थाएँ सावधिक ऋण प्रदान करती हैं तो ये ऋण समायोजित/वसूल लिए जाते हैं।

लदान-पूर्व ऋण : व्यापारिक बैंकों द्वारा पोत पर मालों की लदाई से पहले निर्यातकों को दिए जाने वाले ऋण लदान-पूर्व ऋण (प्रि-शिपमेंट क्रेडिट) कहे जाते हैं। ये ऋण निर्यातकों को निर्यातमुखी माल हासिल करने, उन्हें संशोधित और डिब्बाबंद करने में समर्थ बनाते हैं।

सावधिक ऋणों के लिए पुनर्वित्त : व्यापारिक बैंक और राज्य वित्त निगम औद्योगिक उद्यमों को सावधिक ऋण प्रदान करते हैं। इन ऋणों के आधार पर ये संस्थाएँ भारतीय औद्योगिक विकास बैंक या भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक से ऋण पा सकती हैं। ऐसे ऋणों को सावधिक ऋणों का पुनर्वित्त कहते हैं।

प्रवर्तक का योगदान : परियोजना के लिए वित्त अनेक स्रोतों से आता है, जैसे अंश पूँजी, ऋण आदि। आशा की जाती है कि परियोजना के प्रवर्तक (प्रोमोटर्स) लागत का एक भाग देंगे। इसे ही संवर्धक का योगदान कहते हैं।

स्थगित भुगतान की ज़मानत : पूँजीगत मालों की बिक्री के लिए विक्रेता प्रायः अनेक वर्षों के लिए ऋण देता है, अर्थात् पूँजीगत वस्तुओं की लागत अनेक किस्मों में वसूल होती है। इसके लिए वे किसी बैंक/वित्तीय संस्था की ज़मानत माँगते हैं।

11.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

भारतीय रिजर्व बैंक : *रिपोर्ट आन ट्रेंड एंड प्रोग्रेस ऑफ़ बैंकिंग इन इंडिया* (2000-01)

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक : *रिपोर्ट ऑन डेवलोपमेंट बैंकिंग* (1998-99)

माचिराजू, एच. आर. (1998) : *इंडियन फ़िनांशियल सिस्टम*, विकास पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

वार्ष्णेय, पी. एन. और मित्तल, डी. के. (2002) : *इंडियन फ़िनांशियल सिस्टम*, सुल्तानचंद एंड संस, नई दिल्ली

आई एफ सी आई, आई डी बी आई, सिड्बी, नाबार्ड, एक्ज़िम बैंक, राष्ट्रीय आवास बैंक (नवीनतम) की वार्षिक रिपोर्ट

सुंदरम, के.पी.एम. और वार्षणेय, पी.एन., (2000) : *बैंकिंग एंड फ़िनांशियल सिस्टम*, नई दिल्ली : सुल्तानचंद एंड संस, नई दिल्ली।

11.17 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428002240

बोध प्रश्न 1

1) व्यापारिक बैंक काम-काजी पूँजी की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए ज़मानत के आधार पर अल्पकालिक ऋण देते हैं जबकि विकास बैंक कंपनी की स्थिर परिसंपत्तियों की वित्त-व्यवस्था के लिए परियोजनाओं के आधार पर मध्यकालिक और दीर्घकालिक ऋण देते हैं। विकास बैंकों का निरीक्षण और नियमन भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है।

2) विकास बैंकों के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं :

   अ) स्थिर परिसंपत्तियों में निवेश के लिए मध्यकालिक और दीर्घकालिक ऋण देना,

   ब) संवर्धन और विकास की गतिविधियाँ चलाना तथा विभिन्न दूसरे प्रकार की वित्तीय सेवाओं की व्यवस्था करना।

3) आई सी आई सी आई बैंक लिमिटेड आदि के साथ आई सी आई सी आई के विलय का कारण एक सर्वोपयोगी बैंक के रूप में उभरना, ताकि वह सभी प्रकार के बैंकिंग व वित्तीय कारोबार कर सके।

बोध प्रश्न 2

1) अंश पूँजी सहायता योजना में छोटी औद्योगिक इकाइयों और ग्राहकों को अंश पूँजी सहायता प्रदान की जाती है। यह सहायता राष्ट्रीय अंश पूँजी निधि योजना, महिला उद्यम निधि योजना और भूतपूर्व सैनिक रोज़गार योजना के अंतर्गत जारी की जाती है।

जोखिम पूँजी की सहायता भारी जोखिम, विशेषीकरण और आयात-विस्थापन के क्षेत्रों की परियोजनाओं के लिए जोखिम पूँजी निधि से दी जाती है।

2) नाबार्ड के कार्य इस प्रकार है :

अ) विभिन्न प्रकार की कृषि गतिविधियों के लिए ऋण प्रदान करना,

ब) विकास की विभिन्न गतिविधियाँ चलाना, जैसे ऋण-योजनाओं का निरूपण, संस्थाओं का निर्माण, अनुसंधान व प्रौद्योगिकी को बढ़ावा,

स) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और सहकारी बैकों का नियमन।

3) विदेशी बैंकों को ऋण की कुछ सुविधाएँ इसलिए दी जाती हैं कि वे उपयुक्त भारतीय वस्तुओं के निर्यात के लिए अपने ग्राहकों को सावधिक वित्त प्रदान कर सकें।

4) अ) सही
ब) सही
स) गलत

बोध प्रश्न 3

1) विकास वित्त की संस्थाओं को बांडों के ज़रिए पूँजी बाजार से संसाधन जुटाने की अनुमति दी गई है। इसके विभिन्न साधनों पर लगी सीमाओं को हटाकर अब एक ही समग्र (छतरी) सीमा लगा दी गई है जो प्रत्येक वित्तीय संस्था के मात्र स्वामित्व की निधि के 100 प्रतिशत के बराबर होगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) उद्भासन मानक वे नियम हैं जो सावधिक ऋण और पुनर्वित्त संस्थाओं द्वारा दिए जाने वाले ऋणों की सीमा तय करते हैं। मार्च 2002 के बाद अधिकतम उद्भासन ऋणप्रार्थी व्यक्तियों के लिए 10 प्रतिशत तथा ऋणप्रार्थी समूहों के लिए 40 प्रतिशत कर दिया गया है। बुनियादी ढाँचे की परियोजनाओं के लिए 10 प्रतिशत अतिरिक्त ऋण दिए जा सकते हैं।

3) अ) जोखिम भारान्कित परिसम्पत्तियाँ
ब) 3 वर्ष
स) आई सी आई सी आई

इकाई 12 भारत में निवेशकर्ता संस्थान

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 भारतीय जीवन बीमा निगम
12.3 भारतीय साधारण बीमा निगम
12.4 बीमा नियमन एव विकास प्राधिकरण
12.5 पारस्परिक निधियाँ
- 12.5.1 पारस्परिक निधियाँ की योजनाएँ
- 12.5.2 भारतीय यूनिट ट्रस्ट
- 12.5.3 अन्य पारस्परिक निधियाँ
- 12.5.4 पारस्परिक निधियों का संचालन
- 12.5.5 निवेश संबंधी प्रतिबंध
- 12.5.6 पारस्परिक निधियों का कीर्तिमान
- 12.5.7 जोखिम के तत्व

12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- जनता की बचतों को संग्रह करने और उन्हें विकास-कार्यों में लगाने में विनिवेश संस्थाओं के रूप में बीमा कंपनियों की भूमिका स्पष्ट कर सकेंगे,
- इन संस्थाओं पर लागू होने वाले नियमनों (regulations) का वर्णन कर सकेंगे,
- पारस्परिक निधियों, उनकी यूनिट योजनाओं और उन्हें संचालित करने वाले नियमों की विवेचना कर सकेंगे, तथा
- पारस्परिक निधियों में निवेश से जुड़े जोखिमों को प्रस्तुत कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने पढ़ा कि वित्तीय संस्थाएँ बचतकर्ताओं के संसाधनों को निवेशकों तक पहुंचा कर पूँजी संचय की प्रक्रिया को बढ़ावा देती हैं। वित्तीय संस्थाओं के सुगठित ढाँचे में विनिवेश संस्थाओं को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ये संस्थाएँ हैं : भारतीय जीवन बीमा निगम (एल आई सी), भारतीय यूनिट ट्रस्ट (यू टी आई) और भारतीय साधारण बीमा निगम (जी आई सी)।

बीमा कंपनियों का मुख्य काम जनता को बीमा-सुरक्षा प्रदान करना है। फिर भी वे बीमा किश्तों के रूप में बड़ी-बड़ी रक़में जुटाती हैं जिनका उन्हें दीर्घकालिक आधार पर निवेश करना होता है। इस तरह बीमा संस्थाएँ निवेश की महत्वपूर्ण संस्थाओं के रूप में उभरी हैं। भारत में चार दशकों से अधिक समय तक भारतीय जीवन बीमा निगम जीवन बीमा की एकमात्र संस्था रही है। उसने एक भारी-भरकम निवेश पत्राधार बना रखा है। इसी तरह साधारण बीमा के क्षेत्र में भारतीय बीमा निगम और उसकी चार सहायक कंपनियों की बीमा का कारोबार फैलाने और अपने धन का निवेश करने में सक्रिय भूमिका रही है। हाल ही में जीवन-बीमा और अन्य (साधारण), दोनों प्रकार के बीमा क्षेत्र को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया है तथा 'बीमा नियमन एवं विकास प्राधिकरण' नामक एक ही प्राधिकरण पूरे बीमा क्षेत्र को नियंत्रित कर रहा है।

जनता की बचतों को संग्रह करने और उन्हें मुद्रा बाजार और पूँजी बाजार की प्रतिभूतियों में लगाने में पारस्परिक निधियाँ भी भारत में एक मध्यस्थ बनकर उभरी हैं। धन के निवेश समेत उनके तमाम कामों का नियंत्रण भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) के नियम-कायदे करते हैं जिनका वर्णन इस इकाई में आगे चलकर किया गया है। आप इन नियम-कायदों और पारस्परिक निधियों की प्रगति के बारे में आगे पढ़ेंगे। इकाई के अंत में आपको बीमा निधियों में निवेश से जुड़े जोखिमों से भी अवगत कराया जाएगा।

12.2 भारतीय जीवन बीमा निगम

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1956 में जीवन बीमा के कारोबार का राष्ट्रीयकरण किया गया तथा भारतीय जीवन बीमा निगम अधिनियम, 1956 के अंतर्गत जीवन बीमा निगम (एल आई सी) नाम से एक संगठन बनाया गया। यह पूरी तरह भारत सरकार के स्वामित्व में है तथा समाज के विभिन्न भागों के लिए अनेक प्रकार की बीमा पालिसियाँ जारी करके जीवन बीमा का कारोबार करता है। जीवन बीमा का कारोबार करते हुए यह निगम जनता की बचतों को संग्रहीत करता है तथा उन्हें विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों और ऋणों में लगाता है। इस तरह पालिसी धारकों के हितों के साथ-साथ राष्ट्रीय हितों की भी रक्षा के लिए निगम के पास मौजूद निधियाँ सरकारी नियमों के अधीन रहती हैं। बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 37 ए के अंतर्गत जारी दिशा-निर्देशों के अनुसार निगम की "नियंत्रित निधियों" में आने वाली राशियों को इस प्रकार निवेशित किया जाता है:

क्र.सं.	निवेश का माध्यम	निवेश का परिमाण
(अ)	केंद्र सरकार की विपणन-योग्य प्रतिभूतियाँ	20% से कम नहीं
(ब)	उपरोक्त (अ) समेत राष्ट्रीय आवास बैंक को दिए गए ऋण	25% से कम नहीं
(स)	केंद्र व राज्य सरकारों की प्रतिभूतियाँ जिनमें उपरोक्त (ब) में दर्ज राशियों समेत सरकारी जमानत प्राप्त प्रतिभूतियाँ भी आती हैं	50% से कम नहीं
(द)	समाजोन्मुखी क्षेत्र, जिनमें उपरोक्त (स) समेत सार्वजनिक क्षेत्र, सहकारी क्षेत्र, पालिसी धारकों द्वारा भवन-निर्माण भी शामिल हैं।	75% से कम नहीं

नियंत्रित निधियों में आने वाली राशियों के शेष 25 प्रतिशत के बारे में सरकार ने निम्न प्रकार के नियम तय कर रखे हैं:

क्र.सं.	निवेश का माध्यम	निवेश का परिमाण
(अ)	अभ्यर्पण मूल्यों (surrender values) के अंदर पालिसियों पर दिए जाने वाले ऋण	8%
(ब)	अचल संपत्तियाँ	2%
(स)	निजी क्षेत्र में निवेश	10%
(द)	अतिरिक्त नकद बकाया	5%

1997 में निधियों के उपयोग का उपर्युक्त उपवर्गीकरण समाप्त कर दिया गया तथा जीवन बीमा निगम को 25% की सीमा तक पूरी रकम को, सविवेकी मानकों के अंतर्गत, अपनी व्यापारिक समझ के आधार पर लगा सकने की अनुमति दे दी गई।

तालिका 12.1
31 मार्च 2000 के दिन एल आई सी का निवेश,

(अ)	भारत में निवेश	करोड़ रु. में
I	**ऋण**	
	• राज्य विद्युत बोर्डों/विद्युत निगमों को ऋण	7075
	• आवास के लिए राज्य सरकारों को ऋण	2705
	• राष्ट्रीय आवास बैंक को ऋण	1002
	• शीर्ष सहकारी आवास-वित्त सोसायटियों को ऋण	6371
	• नगरपालिकाओं/जिला परिषदों/जल-आपूर्ति व निकासी बोर्डों को ऋण	2000
	• राज्य सड़क प्रविवहन निगमों को ऋण	375
	• कंपनियों और सहकारी समितियों को ऋण	2830
	• ऊर्जा-उत्पादन के लिए ऋण	111
	• एल आई सी की गिरवी योजनाओं के अंतर्गत संपत्ति की गिरवी पर ऋण	1152
	• बीमा पालिसियों पर ऋण	5020
	• अन्य ऋण	285
	योग	**28,926**
II	**स्टॉक एक्सचेंज की प्रतिभूतियाँ**	
	• भारत सरकार की प्रतिभूतियाँ	70,533
	• राज्य सरकारों की प्रतिभूतियाँ	11,925
	• सरकारी जमानत प्राप्त अन्य विद्यमान योग्य प्रतिभूतियाँ	3,556
	• ऊर्जा उत्पादन (निजी क्षेत्र)	1,368
	• शेयर	11,482
	• ऋण पत्र एवं बांड	15,079
	• अन्य	90
	योग	**1,14,033**

DIKSHANTIAS
Call us @ 7428092240

III	केंद्र सरकार के पास जमा विशेष राशियाँ	2,042
IV	अन्य निवेश	906
	योग (भारत में)	**1,45,907**
(ब)	**भारत से बाहर निवेश**	**458**
	महायोग	**1,46,365**

उपरोक्त तालिका से पता चलता है कि एल आई सी की निधियों के एक बड़े भाग का निवेश स्टॉक एक्सचेंज की प्रतिभूतियों और मुख्यतः सरकारी ज़मानत प्राप्त प्रतिभूतियों में होता है। कुल निवेश में कंपनियों की प्रतिभूतियों का भाग कम है। ऋणों का भी अधिकांश भाग आवास-निर्माण, बिजली उत्पादन और जल-आपूर्ति के लिए दिया जाता है। पर निगम क्षेत्र को नगण्य भाग ही मिला है। इस तरह मार्च 2000 के अंत तक निवेश का क्षेत्रवार वितरण इस प्रकार था:

(अ)	सार्वजनिक क्षेत्र	84.20 प्रतिशत
(ब)	सहकारी क्षेत्र	1.53 प्रतिशत
(स)	निजी क्षेत्र	14.27 प्रतिशत
	कुल	100.00 प्रतिशत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.3 भारतीय साधारण बीमा निगम

भारतीय साधारण बीमा निगम (जी आई सी) की स्थापना 1973 में, साधारण बीमा कंपनियों की एक बड़ी संख्या का राष्ट्रीयकरण करके की गई। इसकी चार सहायक कंपनियाँ हैं - नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, ओरिएंटल फ़ायर एवं जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड। इस तरह अपनी चार सहायक कंपनियों के साथ जी आई सी साधारण बीमा के क्षेत्र में ग्राहकों की तरह-तरह की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए पालिसियों का एक लंबा-चौड़ा समूह प्रस्तुत करती है। इन बीमा कंपनियों को बीमा-किश्तों से आय होती है। वे अपनी निधियों का विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों में निवेश करतीं हैं और निगम क्षेत्र को ऋण देती हैं। जी आई सी की निवेश नीति बीमा अधिनियम, 1938 तथा इस बारे में केंद्र सरकार द्वारा जारी दिशा-निर्देशों से संचालित होती है। अप्रैल, 1995 को लागू नियम-कायदों के अनुसार जी आई सी ने अपनी निधियों का निवेश निम्न प्रकार की प्रतिभूतियों में किया है:

क्र.सं.	**निवेश का माध्यम**	**निवेश का परिमाण**
(अ)	केंद्र सरकार की प्रतिभूतियाँ	20% से कम नहीं
(ब)	उपरोक्त (अ) समेत राज्य सरकारों की प्रतिभूतियाँ व सरकारी ज़मानत-प्राप्त अन्य प्रतिभूतियाँ	30% से कम नहीं
(स)	आवास के लिए ऋण	15% से कम नहीं
(द)	बाजार क्षेत्र	55% से कम नहीं

इस तरह जी आई सी को 45 प्रतिशत निवेश समाजोन्मुखी क्षेत्रों में और शेष 55 प्रतिशत निवेश बाजार क्षेत्र में करने की अनुमति दी गई।

12.4 बीमा नियमन एवं विकास प्राधिकरण (आई आर डी ए)

हाल ही में भारत सरकार ने बीमा नियमन एवं विकास प्राधिकारण अधिनियम 1999 पारित करके बीमा व्यापार को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया है। आई आर डी ए को निम्न उद्देश्यों से 19 अप्रैल 2000 को बनाया गया:

1) पालिसी धारकों के हितों की रक्षा के लिए,

2) बीमा व्यापार को नियंत्रित, प्रोत्साहित और उसकी सुव्यवस्थित संवृद्धि सुनिश्चित करने के लिए।

भारतीय रिजर्व बैंक ने उन बैंकों और गैर-बैंक वित्तीय कंपनियों को बीमा कारोबार की अनुमति देने के लिए दिशा-निर्देश जारी किए हैं जिनका:

1) बीमा क्षेत्र में निवल मूल्य 500 करोड़ रुपये से कम न हो,

2) नकद आरक्षित अनुपात 10 प्रतिशत से कम न हो,

3) अनिष्पादक परिसंपत्तियों (नान-परफ़ार्मिंग एसेट्स) का मुनासिब स्तर हो,

4) जिन्हें पिछले तीन साल से लगातार शुद्ध लाभ प्राप्त हो रहा हो, और

5) जिनकी सहायक कंपनियों के कामकाज का रिकार्ड संतोषजनक रहा हो।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ऐसी संस्थाओं को जोखिम में भागीदारी के साथ संयुक्त उद्यम स्थापित करने की अनुमति दी गई हैं। उसने दस जीवन बीमा और 6 साधारण बीमा कंपनियों को पंजीकरण प्रमाण पत्र जारी किए हैं। बारह कंपनियाँ तो कारोबार शुरू भी कर चुकी हैं।

आई आर डी ए ने 2001 में, जीवन बीमा और साधारण बीमा, दोनों की कंपनियों के लिए निवेश के नियम जारी किए हैं। इन दिशा-निर्देशों की मुख्य बातें इस प्रकार हैं:

1) **जीवन बीमा कारोबार :** पेंशन, सामान्य वार्षिक-आय (एन्यूइटी) कारोबार तथा यूनिट संबद्ध जीवन बीमा कारोबार से जुड़ी निधियों को बीमा कंपनी की नियंत्रित निधियों से अलग रखा जाएगा। नियंत्रित निधियों का निवेश निम्न प्रकार से किया जाएगा:

अ) सरकारी प्रतिभूतियाँ	25%
ब) सरकारी प्रतिभूतियाँ या अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियाँ, उपरोक्त समेत, कम से कम	50%
स) अनुमोदित निवेश	
1) बुनियादी ढाँचा और सामाजिक क्षेत्र, कम से कम	15%
2) अन्य उद्भासन मानकों (Exposure norms) से संचालित, अधिक से अधिक	35%

बुनियादी ढाँचे और सामाजिक क्षेत्र की परिभाषा आई आर डी ए द्वारा अलग से जारी नियमों में की गई है। दूसरे निवेश प्रकटीकरण के मानकों (एक्सपोज़र नार्म्स) के अनुरूप होंगे। अनुमोदित से इतर निवेश किसी भी हालत में निधि के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होंगे।

अंश पूँजी, ऋण पत्रों, सावधिक ऋणों आदि में निवेश के लिए विस्तृत प्रकटीकृत-मानक तय किए गए हैं।

उपरोक्त नियमों से स्पष्ट है कि जहाँ सरकारी व अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में निवेश आज भी नियंत्रित निधियों का 50 प्रतिशत है, वहीं शेष 50 प्रतिशत का निम्नलिखित में वितरण होगा :

अ) बुनियादी ढाँचे का क्षेत्र,

ब) ग्रामीण क्षेत्र समेत सामाजिक क्षेत्र,

स) अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं की प्रतिभूतियों में निवेश,

द) बैंकों में जमा राशियाँ,

य) वाणिज्य पत्र (कामर्शियल पेपर)

र) राजकोष पत्र (ट्रेज़री बिल)

ल) धारा 27 अ के अंतर्गत अनुमोदित निवेश।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस तरह नए नियमों में ग्रामीण व सामाजिक क्षेत्रों के प्रति बीमा कंपनियों के दायित्व पर ज़ोर दिया गया है। निजी क्षेत्र की कंपनियों में निवेश की अनुमति तो है, पर वह प्रकटीकरण मानदंडों की सीमाओं के अंदर रहेगा।

2) **साधारण बीमा कारोबार :** साधारण बीमा करने वाले अपनी कुल परिसंपत्तियों का निवेश इस प्रकार करेंगे :

अ) केंद्र सरकार की प्रतिभूतियाँ	20% से कम नहीं
ब) राज्य सरकारों की प्रतिभूतियाँ तथा सरकारी जमानतप्राप्त अन्य प्रतिभूतियाँ, उपरोक्त (अ) समेत	30% से कम नहीं
स) आवास और अग्निशमन के उपकरणों के लिए राज्य सरकारों को ऋण	5% से कम नहीं
द) अनुमोदित निवेश	
1) बुनियादी ढाँचा और सामाजिक क्षेत्र	10% से कम नहीं
2) अन्य (प्रकटीकरण के मानकों द्वारा संचालित)	55% से कम नहीं

अनुमोदित निवेशों से इतर निवेश किसी भी हालत में परिसंपत्तियों के 25 प्रतिशत से अधिक नहीं होने चाहिए।

बोध प्रश्न 1

1) ऐसे तीन प्रमुख क्षेत्रों के नाम बताइए जिनमें जीवन बीमा निगम की निधियों का निवेश किया जाता हो।

.....

.....

.....

.....

.....

2) आई आर डी ए की स्थापना के उद्देश्य बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) बताएँ कि नीचे लिखे कथन सही (स) हैं या गलत (ग):

अ) बीमा कंपनियों की कुल नियंत्रित निधियों के 30 प्रतिशत भाग का सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश आवश्यक है। (सही/गलत)

ब) आई आर डी ए के नियम-क़ायदों के अनुसार निजी क्षेत्र की कंपनियों पर प्रकटीकरण के मानक लागू होंगे। (सही/गलत)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.5 पारस्परिक निधियाँ

पारस्परिक निधियाँ निवेश का एक साधन है जो विभिन्न यूनिट योजनाएँ जारी करके बचतों को जमा करता है और जमा रकमों का निवेश औद्योगिक उद्यमों की प्रतिभूतियों में करता है। इस तरह पारस्परिक निधियाँ उन निवेशकों की बचतें जमा करती हैं जो औद्योगिक प्रतिभूतियों में अपनी बचतों का सीधा निवेश करने में समर्थ नहीं हैं, और इन समाकलित निधियों का निवेश उन प्रतिभूतियों में किया जाता है जिनकी गंभीरता से छानबीन कर ली गई है। इस तरह पारस्परिक निधियाँ छोटे निवेशकों को बचत के पेशेवर प्रबंधन के लाभ प्रदान करती हैं। ये जोखिम का विविधीकरण भी करती हैं, क्योंकि जमा की गई निधियों का निवेश अनेक प्रतिभूतियों और दूसरे माध्यमों में किया जाता है।

12.5.1 पारस्परिक निधियों की योजनाएँ

पारस्परिक निधियों को विभिन्न उद्देश्यों से अलग-अलग यूनिट योजनाएँ जारी करने की अनुमति है। मिसाल के लिए नियमित आय या अधिकतम तरलता या पूँजी की वृद्धि (कैपिटल एप्रेसिएशन) आदि प्रदान करना इन योजनाओं के उद्देश्यों में एक हो सकता है।

भारत में पारस्परिक निधियों ने बड़ी तादाद में यूनिट योजनाएँ शुरू की हैं। मार्च 2001 के अंत तक (यू टी आई को छोड़) सार्वजनिक क्षेत्र के पारस्परिक निधियों की जारी की हुई 65 यूनिट योजनाएँ थीं जबकि निजी क्षेत्र के पारस्परिक निधियों की 158 योजनाएँ थीं। इन योजनाओं को मोटे तौर पर दो निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

1) **सीमित संवरण योजनाएँ (Closed-end Schemes):** एक निश्चित अवधि, उदाहरणतया 2 या 3 माह, तक जनता द्वारा ख़रीद के लिए जारी योजनाओं को सीमित संवरण (क्लोज्ड-एंड) योजनाएँ कहते हैं। इस अवधि में किसी योजना द्वारा जो भी पैसा जमा किया जाता है, वही उसकी समग्र निधि होता है और स्थिर रहता है। ऐसी योजनाओं की एक निश्चित परिपक्वता अवधि होती है, जैसे कि 5 या 7 साल, जिसके बाद वे अपने आप समाप्त हो जाती हैं। पारस्परिक निधि योजना के धन को जिन प्रतिभूतियों में लगाते हैं, उन्हें त्यागकर उन दिनों प्रचलित निवल परिसंपत्ति मूल्य (NAV) पर यूनिटें वापस ख़रीद लेते हैं। सीमित संवरण योजनाओं की इकाइयों का लेन-देन स्टॉक कार्यालयों में होता है।

2) **असीमित संवरण योजनाएँ (Open-end Schemes):** वे योजनाएँ असीमित संवरण (ओपेन-एंड) होती हैं जिनके लिए सतत् आधार पर निवेशकों से पैसा स्वीकार किया जाता है। निवेशक जब चाहें, किसी योजना में शामिल हो सकते हैं। लगातार जारी ख़रीद और बिक्री के कारण योजना की समग्र निधि समय के साथ घटती-बढ़ती रहती है। योजना की परिपक्वता का कोई निश्चित समय नहीं होता।

DIKSHANT IAS
Call us @7428002240

असीमित संवरण योजनाओं में निवल परिसंपत्ति मूल्य से जुड़े दाम पर यूनिटें वापस खरीदकर पारस्परिक निधि निवेशकों को तरलता प्रदान करती हैं। कभी-कभी सीमित संवरण योजनाओं की अवधि भी कुछ आगे बढ़ा दी जाती है या एक पूरे काल तक जारी रखी जाती है। इनमें से कुछ योजनाएँ बाद में असीमित संवरण योजनाओं में बदल दी गई हैं।

यदि (पुनर्खरीद के बाद) शेष बची यूनिटों की कुल संख्या निवेशकों की मूल संख्या के 50 प्रतिशत से कम हो जाए तो असीमित संवरण योजनाओं को समाप्त भी किया जा सकता है।

योजनाओं के प्रकार

भारत में जारी कुछ महत्वपूर्ण यूनिट योजनाएँ इस प्रकार हैं:

1) **आय निधि:** इसका उद्देश्य अभीष्टतम (आप्टिमम) प्रतिफल अर्जित करना तथा सुरक्षा, प्रतिफल व तरलता के बीच संतुलन बनाए रखना है। निधि के निवेश अधिकतर स्थिर आय देने वाली प्रतिभूतियों में किए जाते हैं।

2) **संवृद्धि निधि:** इसका उद्देश्य अंशपूँजी और अंशपूँजी से संबद्ध माध्यमों में निवेश करके दीर्घकालिक पूँजी की वृद्धि सुनिश्चित करना है।

3) **संतुलित निधि:** इसका उद्देश्य चालू आय के साथ पूँजी की वृद्धि सुनिश्चित करना है। इसके अंतर्गत निवेश अंशपूँजी व अंशपूँजी से जुड़े साधनों में तथा ऋण व मुद्रा बाजार के साधनों में भी किए जाते हैं।

4) **तरल निधिः** यह भारी तरलता के अनुरूप आय प्रदान करती है। निवेश का पत्राधार मुद्रा बाजार और ऋण के साधनों पर आधारित होता है।

5) **श्रेष्ठ निधि (गिल्ट फंड):** इसका उद्देश्य केंद्र सरकार, राज्य सरकारों या दोनों की प्रतिभूतियों में निवेश करके जोखिम मुक्त प्रतिफल प्राप्त करना है।

6) **कर-बचत योजनाः** यह निवेशकों को कर-राहत प्रदान करती है। दीर्घकालिक पूँजी की वृद्धि सुनिश्चित करना इसका उद्देश्य है। इसमें अंशपूँजी व अंशपूँजी से जुड़े साधनों में निवेश किए जाते हैं। इस योजना में यूनिटों के लिए एक न्यूनतम अवधि, मसलन 2 या 3 वर्ष होती है, अर्थात् इस अवधि के पूरा होने से पहले यूनिटों को वापस नहीं बेचा जा सकता।

7) **सूचकांक निधिः** यह भी एक संवृद्धि निधि है पर यह शेयर-मूल्यों के एक विशिष्ट सूचकांक (इनडेक्स) से जुड़ी होती है। मतलब यह कि निधि का निवेश मुख्यतः उन कंपनियों की प्रतिभूतियों में किया जाता है जिनकी प्रतिभूतियाँ उस सूचकांक विशेष में शामिल होती हैं। इस तरह निधि का प्रतिफल संबंधित सूचकांक, उदाहरण के लिए निफ्टी (NIFTY) की संवृद्धि से जुड़ा होता है।

8) **क्षेत्र विशिष्ट निधि :** यह भी संवृद्धि निधि का ही एक रूप है। इसमें निधियों का निवेश प्रौद्योगिकी, औषधि आदि एक चुनिंदा क्षेत्र (सेकटर) में अंशपूँजी या अंशपूँजी से जुड़े साधनों में किया जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.5.2 भारतीय यूनिट ट्रस्ट

भारतीय यूनिट ट्रस्ट (यू टी आई) बहुत पहले, भारतीय यूनिट ट्रस्ट अधिनियम, 1963 के अंतर्गत, 1964 में स्थापित देश की पहली पारस्परिक निधि थी। उसे एक कंपनी के रूप में नहीं बल्कि संसद के एक अलग अधिनियम के अंतर्गत स्थापित किए जाने के कारण एक विशेष दर्जा दिया गया है।

उसको 5 करोड़ रुपये की आरंभिक पूँजी आई डी बी आई, एल आई सी, भारतीय स्टेट बैंक और उसके सहायक बैंकों, तथा दूसरे अनुसूचित बैंकों से प्राप्त हुई थी। यू टी आई का प्रबंध व नियंत्रण एक न्यास मंडल (Board of Trusties) के हाथों में है। उसके अध्यक्ष की नियुक्ति भारत सरकार करती है जबकि चार न्यासियों व कार्यकारी न्यासी को आई डी बी आई नियुक्त करती है। आरंभिक पूँजी में योगदान देने वाले दूसरे संगठन शेष न्यासियों को नियुक्त करते हैं।

यूनिट योजना 1964 यू टी आई की सबसे पुरानी और सबसे बड़ी यूनिट योजना है। यह एक असीमित संवरण योजना है। इसके प्रावधान स्वयं यू टी आई अधिनियम में शामिल हैं। विभिन्न वर्गों के निवेशकों की बचतों को संग्रहीत करने के लिए यू टी आई ने, असीमित संवरण और सीमित संवरण दोनों प्रकार की, अनेक यूनिट योजनाएँ चलाई हैं। इन योजनाओं के निवेश संबंधी उद्देश्य अलग-अलग हैं। 30 जून 1998 के दिन 79 यूनिट योजनाएँ चल रही थीं - 28 असीमित संवरण और 51 सीमित संवरण। इस तरह पारस्परिक निधियों में भारतीय यूनिट ट्रस्ट ने यूनिट धारकों से सबसे अधिक रकम जमा की है और यह भारत की सबसे बड़ी पारस्परिक निधि है।

यूनिट योजना 1964 (यू एस 64)

इस योजना में यू टी आई स्वयं द्वारा निर्धारित कीमत पर जून माह को छोड़कर साल भर अपनी यूनिटें बेचती है। यह पुनर्खरीद दाम पर यूनिट धारकों से यूनिटें वापस भी खरीदती है। यह कीमत भी उसी का तय किया हुआ होता है। हर साल जुलाई में यू टी आई बिक्री और पुनर्खरीद के रिआयती दामों की घोषणा करती है, और फिर ये हर माह बढ़ते जाते हैं। यू टी आई अधिनियम में इन मूल्यों के निर्धारण का फार्मूला भी दिया गया है, जो अभी हाल तक एकदम निवल परिसंपत्ति मूल्य पर आधारित नहीं थे। इस तरह यू टी आई को निवल परिसंपत्ति मूल्य पर आधारित कीमत तय करने के बुनियादी सिद्धांत से हटकर भी कीमत तय करने का अधिकार था।

यू टी आई को आरंभ से ही जनता का विश्वास प्राप्त रहा है। यू एस 64 में लाभांश (डिविडेंड) की दर लगातार बढ़ती रही। यह 1964-65 में 6.10 प्रतिशत से बढ़कर 1991-92 से 1994-95 के बीच 26 प्रतिशत रही।

यू एस 64 में संकट

सितंबर 1998 के अंतिम दिनों में यू एस 64 को एक गंभीर संकट का सामना करना पड़ा, जब यह पता चला कि यू एस 64 के तुलन पत्र में 30 जून 1998 के रोज़ 1098 करोड़ रुपये का घाटा था। इस तरह एहसास हुआ कि इन यूनिटों का निवल परिसंपत्ति मूल्य सम से कम (below par) था जबकि हर नई यूनिट 14 रुपये के भाव से बिक रही थी। इसके कारण यूनिट धारकों के लिए यूनिटों की बिक्री का भारी जोखिम पैदा हो गया और साथ ही शेयर बौखलाहट में बेचे जाने लगे क्योंकि आशा थी कि यू टी आई बड़े पैमाने पर अपने शेयर बेच देगी। सेंसेक्स कुछ ही दिनों में 220 अंक लुढ़क गया। फिर भी, भारतीय रिजर्व बैंक की वित्तीय सहायता से यू टी आई ने इस स्थिति का सामना किया।

DIKSHANT IAS
Call us @ 7428092240

संकट के कारण

श्री दीपक पारिख की अध्यक्षता में एक समिति ने इस संकट के कारणों की जाँच की। इन कारणों को संक्षेप में नीचे दिया गया है:

1) यू एस 64 के निवेश के ढाँचे में अंशपूँजी का भाग बहुत बढ़ चुका था। यह 1986 में 21 तो 1998 में 63 प्रतिशत था। इसलिए यू टी आई की कुल आय में ब्याज-आय का भाग काफी गिर गया। अतः लाभांश देने की जिम्मेदारी पूरी करने के लिए यू टी आई को अपने अच्छे शेयर बेचने पड़े ताकि कुछ लाभ मिले। फलस्वरूप यू टी आई के पास मौजूद बाकी अंशपूँजी की गुणवत्ता काफी गिर गई। इसके अलावा उसने घटिया किस्म के अनेक अंशपूँजी निर्गमों में भी निवेश किया था।

2) जैसा कि ऊपर बताया गया है, यू टी आई प्रतिभूतियों के निवल परिसंपत्ति मूल्यों का ध्यान रखे बिना यूनिटों की बिक्री और पुनर्खरीद के दाम तय करती थी। इसलिए शेयरों के दामों में उतार-चढ़ाव आए भी तो निवेशकों का भरोसा कायम रखने के लिए यूनिटों के दाम अप्रभावित रखे गए।

3) यू टी आई ने आरंभ से ही क्रमशः बढ़ती दरों पर लाभांश बाँटने की नीति अपनाई। 1995-97 के दौरान उसने लाभांश की दर गिराने की अपेक्षा लाभांश बनाए रखने के लिए आरक्षित निधि से पैसा निकालना बेहतर समझा।

दीपक पारिख समिति की रिपोर्ट की प्रमुख सिफ़ारिशों को लागू करके यू टी आई ने अपनी वित्तीय स्थिति कुछ सुधारी तथा 1998-99 में 13.5 प्रतिशत का लाभांश घोषित किया जो मुख्यतः अंशपूँजी की बिक्री से प्राप्त लाभों में से दिया गया। यू एस 64 का निवल परिसंपत्ति मूल्य भी सुधरा। पर जुलाई 2001 में यू एस 64 को एक और भारी संकट से गुजरना पड़ा। यू टी आई ने पिछले साल के 13.5 प्रतिशत के मुकाबले लाभांश की दर घटाकर 10 प्रतिशत कर दी तथा यूनिटों की खरीद-बिक्री भी छः माह के लिए, दिसंबर 2001 तक रोक दी गई। सिर्फ़ राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज में यू एस 64 की यूनिटों के कारोबार की अनुमति दी गई।

यू एस 64 के वित्तीय स्वास्थ्य में इस गिरावट के अनेक कारण थेः

1) अंशपूँजी बाजार को 2001 के आरंभ से ही धक्का लगा। शेयरों के दाम 25 प्रतिशत लुढ़क गए।

2) अप्रैल और मई 2001 में उन दिनों के पुनर्खरीद मूल्यों पर यू टी आई को बहुत सारी यूनिटें खरीदनी पड़ीं, जबकि निवल परिसंपत्ति मूल्य काफ़ी कम था।

3) शेयरों के दामों में गिरावट के कारण लाभांश बाँटने के लिए आशानुसार पूँजीगत लाभ प्राप्त नहीं हुए।

4) फलस्वरूप यू एस 64 की आरक्षित निधि ऋणात्मक हो गई।

जुलाई 2001 में छोटे निवेशकों के लिए एक बचाव-राहत का पैकेज घोषित किया गया। जिनके पास 3000 तक यूनिटें थीं, उन्हें 1 अगस्त 2001 के बाद 10 रुपये प्रति यूनिट के भाव से अपनी यूनिटें बेचने की छूट दी गई। फिर इस पुनर्खरीद दाम को हर माह 10 पैसे प्रति यूनिट बढ़ाया गया जिससे यह मई 2003 तक 12 रुपये हो जाए। बाद में पुनर्खरीद की यह सुविधा 5000 यूनिटों तक के धारकों को भी दे दी गई।

DIKSHANT IAS
Callus @7428002240

जनवरी 2002 से यू एस 64 को निवल परिसंपत्ति मूल्य आधारित योजना बना दिया गया है। 5000 यूनिटों तक के धारकों को या तो उपरोक्त सुनिश्चित पुनर्खरीद दाम पर या निवल परिसंपत्ति मूल्य आधारित दाम पर, जो भी अधिक हो, यूनिटें बेचने की छूट है। पर जनवरी 2002 के बाद 5000 से अधिक यूनिटें हों तो वे निवल परिसंपत्ति मूल्य आधारित दाम पर ही बेची जाएँगी।

यू एस 64 का निवल परिसंपत्ति मूल्य सम से कम (below par) है। 24 जुलाई 2001 को राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज में ये यूनिटें 8.25 रुपये प्रति यूनिट के भाव से बिक रही थीं। 8 अगस्त 2001 को यह दाम बढ़कर 9.30 रुपये प्रति यूनिट हो गया। हाल में निवल परिसंपत्ति मूल्य गिरकर काफ़ी कम, यानी 6.50 रुपये रह गया है।

यू टी आई की वर्तमान वित्तीय स्थिति संतोषजनक नहीं है। अपने 38 साल के इतिहास में उसने वर्ष 2001-02 में पहली बार कोई लाभांश घोषित नहीं किया। निवल परिसंपत्ति मूल्य तथा 15 जुलाई 2001 के दिन घोषित सुनिश्चित पुनर्खरीद मूल्य के बीच जितना अंतर है, सरकार यूनिट धारकों को उतनी बजट सहायता देती रही है। अगर लाभांश घोषित किया गया होता तो यह अंतर और भी बढ़ जाता। फलस्वरूप सरकार की बजट-सहायता संबंधी वचनबद्धता भी बढ़ती।

यू टी आई जून और अगस्त 2002 में परिपक्व होने वाली मासिक आय परियोजनाओं में भी कमी का अनुभव कर रही है। उसने केंद्र सरकार से ज़मानत दिलाकर भारतीय स्टेट बैंक से 1000 करोड़ रुपये के ऋण पाने का समझौता भी किया है। इस कमी को यू टी आई की विकास आरक्षित निधि से पूरा किया जाएगा।

इस तरह यू टी आई सरकार से सहायता और बैंकों से ऋण लेकर किसी तरह ज़िंदा है। इस अग्रगामी विनिवेश संस्था की खस्ता हालात को देखते यह बताना मुश्किल है कि वह अपने वचन व दायित्व को कहाँ तक पूरा करेगी। यह भविष्य ही बतलाएगा।

इस समय यू टी आई के पास निवल परिसंपत्ति मूल्य आधारित 58 योजनाएँ हैं। यू एस 64 को छोड़ बाकी सभी स्वेच्छा से सेबी (SEBI) के नियमों को मानने पर तैयार हैं। यू एस 64 भी बल्कि इस सीमा तक सेबी के अधीन तो है ही कि 1 जनवरी 2002 से वह भी निवल परिसंपत्ति मूल्य आधारित हो चुका है। अब सरकार अधिनियम को वापस लेकर और यू टी आई को सीधे सेबी के दायरे में लाकर यू टी आई को पुनर्गठित करना चाहती है।

12.5.3 अन्य पारस्परिक निधियाँ

1987 में जब सार्वजनिक क्षेत्र में पारस्परिक निधियों की स्थापना की अनुमति दी गई, तब तक यू टी आई को एकाधिकार का दर्जा प्राप्त था। फिर सार्वजनिक क्षेत्र के प्रमुख बैंकों- भारतीय स्टेट बैंक और केनारा बैंक ने अपनी पारस्परिक निधियाँ कायम कीं। उसके बाद तो पंजाब नेशनल बैंक, बैंक ऑफ इंडिया और इंडियन बैंक जैसे दूसरे राष्ट्रीयकृत बैंकों, जीवन बीमा निगम और साधारण बीमा निगम ने भी अपनी पारस्परिक निधियाँ शुरू कर दीं। 1993 में निजी क्षेत्र में भी पारस्परिक निधियों की इजाज़त दी गई। इस उदारीकरण ने विदेशी पारस्परिक निधियों समेत बड़ी तादाद में निजी कंपनियों को भारत में पारस्परिक निधियाँ शुरू करने के लिए प्रेरित किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.5.4 पारस्परिक निधियों का संचालन

पारस्परिक निधियाँ सेबी (पारस्परिक निधियाँ) नियमन अधिनियम, 1976 से संचालित होती हैं। भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) ने पारस्परिक निधि उद्योग के चौतरफ़ा विकास और नियमन के लिए दिशा-निर्देश जारी किए हैं।

इन नियमों की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

1) **पारस्परिक निधि का पंजीकरण:** पारस्परिक निधि का प्रायोजक प्रार्थना-पत्र देकर सेबी से पंजीकरण प्रमाण पत्र पाने के बाद ही पारस्परिक निधि की स्थापना कर सकता है।

2) **प्रायोजक:** प्रायोजक (स्पांसर) वह व्यक्ति/संगठन है जो पारस्परिक निधि की स्थापना करता है। प्रायोजक के लिए आवश्यक है कि उसका उत्तम कीर्तिमान हो तथा उसकी उचित कामकाज और ईमानदारी की प्रतिष्ठा हो। यह भी आवश्यक है कि प्रायोजक कम से कम पाँच साल से वित्तीय सेवाओं के क्षेत्र में कार्यरत हो, पिछले पाँच वर्षों में उसका शुद्ध मूल्य (net worth) धनात्मक हो और इनमें से तीन वर्षों में, जिनमें पाँचवाँ वर्ष भी शामिल है, उसने मुनाफा कमाया हो।

3) **न्यासी:** पारस्परिक निधि एक न्यास के रूप में होगी और न्यास पत्र भारतीय पंजीकरण अधिनियम 1908 के अंतर्गत पंजीकृत होना चाहिए। न्यासी बनने के लिए सुपात्र व्यक्ति योग्य, ईमानदार और प्रतिष्ठित होना चाहिए। कम से कम आधे (अब दो-तिहाई) न्यासी प्रायोजकों से असंबद्ध, स्वतंत्र न्यासी होने चाहिए। परिसपंत्ति प्रबंध कंपनी पर निगरानी रखना न्यासियों का काम होता है। न्यासी और परिसंपत्ति प्रबंध कंपनी के बीच एक निवेश प्रबंध समझौता होना चाहिए।

4) **परिसंपत्ति प्रबंध कंपनी :** यह कंपनी (एसेट मैनेजमेंट कंपनी-ए एम सी) प्रायोजक न्यास द्वारा स्थापित होना चाहिए, बशर्ते न्यास पत्र इसकी इजाज़त दे। कंपनी के निदेशक बोर्ड में कम से कम 50 प्रतिशत निदेशक ऐसे होने चाहिए जो प्रायोजकों या न्यास से स्वतंत्र हों। यह कपंनी प्रबंध और सलाह की सेवाओं को छोड़ किसी और प्रकार का कारोबार नहीं चला सकती।

5) **अभिरक्षक निधिपाल :** पारस्परिक निधि (Mutul Funds) को अपनी योजनाओं की धनराशि सुरक्षित रखने के लिए एक अभिरक्षक का निधिपाल नियुक्त करना पड़ता है।

6) **पेशकश की अवधि :** एक पारस्परिक निधि की कोई भी योजना जनता के लिए कम से कम 45 दिनों तक खुली होनी चाहिए। एसैट मैनेजमेंट कम्पनी तय करती है कि इन योजनाओं के अंतर्गत न्यूनतम कितनी राशि जमा की जाएगी और अतिरिक्त राशि जमा होने की स्थिति में उसका कितना भाग स्वीकार किया जाएगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7) **यूनिटों का मूल्य-निर्धारण :** पारस्परिक निधि को हर योजना का निवल परिसंपत्ति मूल्य (निवल परिसंपत्ति मूल्य) पता करके, असीमित संवरण निधियों के संबंध में, सप्ताह में कम से कम एक बार यूनिटों के बिक्री मूल्य और पुनर्खरीद मूल्य का प्रकाशन करना होता है। पारस्परिक निधि को यह सुनिश्चित भी करना होता है कि उसका पुनर्खरीद मूल्य निवल परिसंपत्ति मूल्य के 93 प्रतिशत से कम और बिक्री मूल्य निवल परिसंपत्ति मूल्य के 107 प्रतिशत से अधिक न हो। सीमित संवरण योजनाओं के सिलसिले में पुनर्खरीद मूल्य निवल परिसंपत्ति मूल्य के 95 प्रतिशत से कम नहीं होना चाहिए।

8) पारस्परिक निधि की किसी भी योजना में पेशकश (आफ़र) का दस्तावेज़ सेबी में जमा कराना होता है जो निवेशकों के लाभार्थ योजना में संशोधनों के झुकाव दे सकती है।

9) हर योजना के लिए जारी विज्ञापन सेबी द्वारा निर्धारित विज्ञापन संहिता के अनुरूप होना चाहिए।

10) पारस्परिक निधियों से अपनी निधियों का निवेश मुद्रा बाजार की हस्तांतरणीय प्रतिभूतियों में, पूँजी बाजार में या निजी तौर पर जारी ऋण पत्रों या प्रतिभूत ऋणों में करने की आशा की जाती है। ये निवेश नियम-कायदों में विवेचित निवेश संबंधी प्रतिबंधों के अंतर्गत किए जाने चाहिए।

11) यूनिटों की पुनर्खरीद, प्रतिदान (रिडेंप्शन) या यूनिट धारकों को ब्याज या लाभांश के भुगतान की दशा में तरलता संबंधी अस्थायी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पारस्परिक निधियों को ऋण लेने की अनुमति है। ये ऋण योजना की परिसंपत्तियों

के मात्र 20 प्रतिशत से अधिक नहीं होने चाहिए। ऋण की अवधि भी 6 माह से अधिक नहीं होनी चाहिए।

12) सेबी ने मूल्यांकन के मानक तय किए हैं जिनके अनुसार हर पारस्परिक निधि के लिए अपने निवेशों का मूल्यांकन करके उनको प्रकाशित करना आवश्यक है।

13) सेबी को किसी पारस्परिक निधि के खातों, दस्तावेज़ों, बुनियादी ढाँचों, प्रणालियों आदि का निरीक्षण करने तथा उसके, न्यासियों व परिसंपत्ति प्रबंध कंपनी के मामलों की जाँच करने का अधिकार है। सेबी इन कार्यों के लिए एक लेखा परीक्षक की नियुक्ति भी कर सकता है।

14) अगर कोई पारस्परिक निधि सेबी अधिनियम के प्रावधानों, उसके नियम कायदों का उल्लंघन करता है या अपने दायित्व पूरे करने में असफल रहता/चूकता है तो सेबी को उसे जारी प्रमाण पत्र के निलंबन का अधिकार है।

15) सेबी को किसी पारस्परिक निधि को निम्न दशाओं में पंजीकरण प्रमाणपत्र रद्द करने का अधिकार है :

अ) अगर वह निधि जालसाज़ी की दोषी हो या किसी आर्थिक अपराध के लिए दंडित किया गया हो,

ब) बार-बार भुगातन में चूक का दोषी हो,

स) पारस्परिक निधि, परिसंपत्ति प्रबंध कंपनी, निधि के न्यासी हेराफेरी से दाम घटा-बढ़ा रहे हों या यूनिटों पर कब्ज़े कर रहे हों जिससे प्रतिभूति बाजार और निवेशक के हितों पर प्रभाव पड़ रहा हो।

द) निधि की वित्तीय स्थिति इतनी बुरी हो जाए कि उसे जारी रखना निवेशकों और दूसरी पारस्परिक निधियों के हित में न हो।

16) अगर किसी मध्यस्थ के पास पंजीकरण का प्रमाणपत्र हो और वह समुचित सावधानी बरतने या नियम कायदों के अनुसार अपने दायित्व पूरे करने में असफल रहे तो सेबी को उसका प्रमाण-पत्र निलंबित या निरस्त करने की कारवाई का अधिकार है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.5.5 निवेश संबंधी प्रतिबंध

पारस्परिक निधियाँ निवेशकों से प्राप्त जमा राशियों का पूँजी बाजार और मुद्रा बाजार की प्रतिभूतियों में निवेश करती हैं। प्रतिभूतियों का चयन किसी विशेष यूनिट योजना के अपने निवेश संबंधी उद्देश्यों पर निर्भर होता है। उदाहरण के लिए संवृद्धि की योजनाओं का उद्देश्य अधिकतर मुनासिब आय के साथ पूँजी की वृद्धि सुनिश्चित करना होता है। इस तरह ऐसी योजनाओं की निधियों का निवेश अधिकतर अंशों (इक्विटी) में किया जाता है।

भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड (सेबी) ने पारस्परिक निधियों के लिए निम्नलिखित विनिवेश प्रतिबंध निर्धारित किए हैं :

1) पारस्परिक निधियों का सारा निवेश (चाहे पूँजी बाजार या मुद्रा बाजार) हस्तांतरणीय प्रतिभूतियों में या बैंकों के जमा खातों में या मुद्रा माँग (मनी काल) में या निजी तौर पर जारी ऋण पत्रों और प्रतिभूत ऋणों में होना चाहिए।

2) किसी भी उद्देश्य के लिए कोई ऋण नहीं दिया जा सकता।

3) पारस्परिक निधियों की सभी योजनाओं में मतदान के अधिकारों से संपन्न किसी कंपनी की प्रदत्त पूँजी के 10 प्रतिशत से अधिक पर निधि का स्वामित्व नहीं होना चाहिए।

4) कोई योजना किसी एक निर्गमकर्ता द्वारा जारी ऋण पत्रों में अपने निवल परिसंपत्ति मूल्य के 15 प्रतिशत से अधिक का निवेश नहीं करेगी, और ये ऋण पत्र किसी साख का आकलन करने वाली (क्रेडिट रेटिंग) एजेंसी द्वारा निवेश की श्रेणी से नीचे न ठहराए गए हों। ए एम सी के न्यासियों और बोर्ड की पूर्वानुमति लेकर ऐसे निवेश को निवल परिसंपत्ति मूल्य के 20 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। सरकारी प्रतिभूतियों और मुद्रा बाजार के पत्रों में निवेश पर ऐसी कोई सीमा नहीं है।

5) उपरोक्त सीमाओं के अंदर रहते हुए गिरवी की सुरक्षा प्राप्त उन ऋणों में भी निवेश किए जा सकते हैं जिनको किसी साख का आकलन करने वाली एजेंसी ने निवेश की श्रेणी से कम न ठहराया हो।

6) कोई भी योजना किसी एक निर्गमकर्ता द्वारा जारी अनाकलित ऋण पत्रों में अपने निवल परिसंपत्ति मूल्य के 10 प्रतिशत से अधिक का निवेश नहीं करेगी। ऐसे पत्रों में कुल निवेश योजना के निवल परिसंपत्ति मूल्य के 25 प्रतिशत से अधिक नहीं होगा।

7) किसी भी योजना के घोषित उद्देश्यों की संपूर्ति के लिए निवेश से पूर्व उस योजना की संग्रहीत धनराशि में से अन्य किसी प्रकार के निवेश नहीं किए जाएँगे।

8) पारस्परिक निधि की कोई भी योजना निम्नलिखित में कोई निवेश नहीं करेगी :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अ) प्रायोजक के किसी सहयोगी या उसके समूह की कंपनी की अ-सूची दर्ज (अनलिस्टेड) प्रतिभूति में, या

ब) प्रायोजक के किसी सहयोगी या उसके ग्रुप की कंपनी द्वारा निजी तौर पर जारी किसी प्रतिभूति में, या

स) प्रायोजक के समूह की कंपनियों की उन सूची दर्ज प्रतिभूतियों में जो निवल परिसंपत्तियों के 25 प्रतिशत से अधिक हों।

9) पारस्परिक निधि की कोई भी योजना किसी कंपनी की अंशपूँजी या उससे जुड़े साधनों में अपने निवल परिसंपत्ति मूल्य के 10 प्रतिशत से अधिक का निवेश नहीं करेगी।

10) कोई भी योजना अ-सूची दर्ज अंशपूँजी या उससे जुड़े साधनों में अपने निवल परिसंपत्ति मूल्य के 5 प्रतिशत से अधिक का निवेश नहीं करेगी।

11) एक ही पारस्परिक निधि को अपनी एक से दूसरी योजना में निवेशों के हस्तांतरण की अनुमति तभी होगी अगर :

अ) ऐसे हस्तांतरण अल्पकालिक आधार पर उद्धृत प्रतिभूतियों के लिए चालू बाज़ार दाम पर हों,

ब) इस प्रकार हस्तांतरित प्रतिभूतियाँ उन योजनाओं के निवेश के उद्देश्यों के अनुरूप होने चाहिए जिनमें इनका स्थानांतरण किया गया हो।

12) पारस्परिक निधियाँ हस्तांतरण के आधार पर प्रतिभूतियों की खरीद-बिक्री कर सकती हैं, पर ये किसी अल्पकालिक बिक्री में शामिल नहीं होंगी और अग्रगामी सौदों (कैरी

फारवर्ड ट्रांज़क्शन) या बदला वित्त में भाग नहीं लेंगी। पेशबंदी (हेजिंग) और पत्राधार में संतुलन लाने के लिए उन्हें किसी मान्यता प्राप्त स्टाक एक्सचेंज में व्युत्पन्न सौदों (डेरिवेटिव ट्रांज़ैक्शन) की अनुमति है।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित में अंतर बतलाइए:

अ) सीमित संवरण योजनाएँ और असीमित संवरण योजनाएँ

.....

.....

.....

ब) सूचकांक निधि (Index fund) और क्षेत्रवार (sector fund) निधि

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए:

अ) परिसंपत्ति प्रबंध कपनी

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

.....

.....

.....

ब) प्रायोजक

.....

.....

.....

3) खाली जगहों को भरें:

अ) पारस्परिक निधियों को एक कंपनी के अंश पूँजी या उससे जुड़े साधनों में अपने निवल परिसंपत्ति मूल्य के ..... से अधिक के निवेश की अनुमति नहीं है।

ब) हर योजना किसी एक निर्गमकर्ता के अनाकलित ऋण पत्रों में अपने निवल परिसंपत्ति मूल्य के ..... से अधिक का निवेश नहीं करेगी।

स) एक से दूसरी योजना में प्रतिभूतियों का हस्तांतरण उद्धृत प्रतिभूतियों के लिए ..... होना चाहिए।

12.5.6 पारस्परिक निधियों का कीर्तिमान

वर्ष 1993 तक भारत में 7 पारस्परिक निधियाँ थी जो सभी सार्वजनिक क्षेत्र में थीं और उन्होंने 116 योजनाएँ चलाई थीं। इन योजनाओं के द्वारा उन्होंने बाजार से 8,011 करोड़ रुपये एकत्र किए थे। उसके बाद से भारत में कार्यरत पारस्परिक निधियों की संख्या बढ़कर 27 हो चुकी है क्योंकि विदेशी कंपनियों समेत निजी क्षेत्र को पारस्परिक निधियाँ कायम करने की अनुमति दी जा चुकी है। इन निधियों द्वारा जारी योजनाओं की कुल संख्या बढ़कर 196 हो चुकी है तथा 1995-96 तक उन्होंने 13,890 करोड़ रुपये जमा किए थे।

भारत में 1995-96 तक पारस्परिक निधियों द्वारा संग्रहीत संचयी संसाधन तालिका 12.3 और 12.4 में दिखाए गए हैं।

तालिका-12.3

पारस्परिक निधियों द्वारा जमा की गई क्षेत्रवार राशियाँ (1985-87 से 1995-96 तक)

वर्ष (तक)	सार्वजनिक क्षेत्र	निजी क्षेत्र	योग	यू टी आई	कुल योग
1986-87	-	-	-	4563.68	4563.68
1987-88	-	-	-	6738.81	6738.81
1988-89	1621.00	-	1621.00	11834.65	13455.65
1989-90	1460.00	-	1460.00	17650.92	19110.92
1990-91	1683.97	-	1683.97	21376.48	23060.45
1991-92	5674.51	-	5674.51	31805.69	37480.20
1992-93	8011.21	-	8011.21	38976.81	46988.02
19993-94	8407.21	916.00	9323.21	51978.00	61301.21
1994-95	10550.21	3000.00	13550.21	61500.00	75050.21
1995-96	10667.00	3223.00	13890.00	66700.00	80590.00

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्रोत : पारस्परिक निधि रिपोर्ट, भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड, 1996

तालिका 12.4

पारस्परिक निधियों द्वारा जमा संसाधन 1997-98 से 2000-01 तक (करोड़ रुपयों में)

पारस्परिक फंड	1997-98	1998-99	1999-00	2000-01
1. बैंकों द्वारा प्रायोजित	236.89	-88.34	155.58	348.23
• एस बी आई पारस्परिक निधि	190.11	-71.79	477.60	351.88
• कनारा बैंक पा. निधि	46.78	-16.55	361.63	-5.41
• इंडियन बैंक पा. निधि	-	-	-	-
• बैंक ऑफ इंडिया पा. निधि	-	-	-	-
• पी एन बी पा. निधि	-	-	40.72	2.12
• बैंक ऑफ बड़ौदा पा. निधि		-	1.71	0.36

पारस्परिक फंड	1997-98	1998-99	1999-00	2000-01
2. वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रायोजित	203.39	546.81	357.41	1274.51
• जी आई सी पा. निधि	-19.20	-12.05	-206.28	(-)41.81
• एल आई सी पा. निधि	99.75	348.36	284.52	566.00
• आई डी बी आई पा. निधि	122.84	210.50	279.17	750.32
• भारतीय यूनिट ट्रस्ट	2875.00	170.00	4548.00	1999.00
3. निजी क्षेत्र के अन्योन्य निधि	748.62	2060.90	14892.17	9717.35
योग	**4063.90**	**2695.37**	**19953.16**	**13339.09**

स्रोत : रिपोर्ट आन ट्रेंड्स एंड प्रोग्रेस ऑफ बैंकिंग इन इंडिया 2000-01

12.5.7 जोखिम के तत्व

पारस्परिक निधियों की यूनिटों में निवेश के अपने कुछ अंतर्निहित जोखिम हैं। पारस्परिक निधियाँ चालू बाजार दामों पर हस्तांतरित प्रतिभूतियों में निवेश करती हैं जो कालक्रम में बदलते रहते हैं। इससे यूनिटों के निवल परिसंपत्ति मूल्य (निवल परिसंपत्ति मूल्य) भी बदलते रहते हैं। इन योजनाओं की यूनिटों के निवल परिसंपत्ति मूल्य की गणना इस प्रकार की जाती है:

DIKSHANT IAS
Call us @7426092240

निवल परिसंपत्ति मूल्य (रुपये) : प्रतिभूति-निवेश का बाज़ार या उचित मूल्य + चालू परिसंपत्तियाँ - चालू देनदारियाँ और प्रावधान
= योजना के अंतर्गत वर्तमान यूनिटों की संख्या

निधि अपने निवेशों का आकलन सेबी के दिशा-निर्देशों में दिए गए मूल्यांकन के मानकों के आधार पर करता है।

निवल परिसंपत्ति मूल्य की गणना हर कारोबार दिन की समाप्ति पर की जाती है। निवेशकों के लिए निवल परिसंपत्ति मूल्य का महत्व इस कारण होता है कि निधि द्वारा यूनिटों की प्रतिदान (रिडेंप्शन या पुनर्खरीद) का दारोमदार इसी पर होता है। कभी-कभी प्रतिदान पर एक निकास-शुल्क (एक्ज़िट लोड) भी वसूल किया जाता है। निकास-शुल्क का मतलब यह है कि निवेशों को भुगतान करते समय निवल परिसंपत्ति मूल्य का एक छोटा-सा भाग, मसलन आधा या एक प्रतिशत, काट लिया जाता है।

पारस्परिक निधियों में निवेश के निम्नलिखित जोखिम हैं:

1) पारस्परिक निधियों और प्रतिभूति निवेशों से बाजार के जोखिम जुड़े होते हैं। योजना का उद्देश्य (जैसे पूँजी की वृद्धि या नियमित प्रतिफल) पूरा होगा इसकी कोई गारंटी नहीं होती।

2) इकाइयों का निवल परिसंपत्ति मूल्य पूँजी बाजारों को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों या शक्तियों के कारण बढ़ता या घटता रहता है। इस तरह यूनिटों का प्रतिदान-मूल्य भी उसी के अनुसार बदल जाता है।

3) पारस्परिक निधियों के पिछले कार्यकलाप उनके भावी कार्यकलापों का संकेत नहीं होते।

4) पारस्परिक निधि की स्थापना में अपने आरंभिक योगदान को छोड़ प्रायोजक योजना के कार्यकलाप से होने वाली किसी हानि या कमी के लिए जिम्मेदार या देनदार नहीं होता।

5) योजनाओं के निवेशकों को कोई सुनिश्चित आय नहीं दी जाती।

बोध प्रश्न 3

1) पारस्परिक निधियों में निवेश से जुड़े कोई तीन जोखिम बताइए।

.....

.....

.....

2) हाल के वर्षों में संसाधन जुटाने में निजी क्षेत्र की पारस्परिक निधियों का क्या कीर्तिमान रहा है?

.....

.....

.....

.....

.....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.6 सारांश

भारतीय जीवन बीमा निगम (एल आई सी), भारतीय साधारण बीमा निगम (जी आई सी) और पारस्परिक निधि प्रमुख निवेशकर्ता संस्थाएँ हैं। यद्यपि बीमा कंपनियों का प्रमुख कार्य जनता को बीमा सुरक्षा प्रदान करना है फिर भी वे बीमा प्रीमियम के रूप में भारी रकमें संग्रहीत कर उनका दीर्घकालिक निवेश करती हैं।

भारतीय जीवन बीमा निगम अधिनियम, 1956 के अंतर्गत 1956 में स्थापित जीवन बीमा निगम पूरी तरह भारत सरकार के स्वामित्व में है। यह निगम समाज के विभिन्न वर्गों को अनेक प्रकार की बीमा पालिसियाँ प्रदान करके जीवन बीमा का कारोबार करता है। यह जनता की बचतों को एकत्र करके उन्हें बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 27 अ के अंतर्गत जारी दिशा-निर्देशों के अनुसार विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों और ऋणों में लगाता है।

1973 में स्थापित साधारण बीमा निगम की चार सहायक कंपनियाँ हैं - नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, ओरिएंटल फायर एंड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड तथा यूनाइटेड इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड। ये कंपनियाँ बीमा

किश्तों से प्राप्त आय का निवेश विभिन्न प्रतिभूतियों में करती हैं और निगम क्षेत्र को ऋण देती हैं। उनकी निवेश नीति 1938 के बीमा अधिनियम से संचालित होती है।

पालिसी धारकों के हितों की रक्षा करने के लिए तथा बीमा व्यापार की सुव्यवस्थित संवृद्धि सुनिश्चित करने के लिए बीमा नियमन एवं विकास प्राधिकरण अधिनियम 1999 के अंतर्गत एक बीमा नियमन एवं विकास प्राधिकरण स्थापित किया गया है। यह वैधानिक निकाय जीवन बीमा और साधारण बीमा, दोनों की कंपनियों के लिए निवेश संबंधी नियम-कायदे जारी करता है।

निवेश के माध्यम के रूप में पारस्परिक निधियाँ यूनिट योजनाएँ जारी करके अतिरिक्त इकाइयों की बचत जमा करती हैं तथा उस राशि का औद्योगिक उद्यमों की प्रतिभूतियों में निवेश करती हैं।

भारतीय यूनिट ट्रस्ट अधिनियम, 1963 के अंतर्गत भारतीय यूनिट ट्रस्ट नाम से 1964 में पहली पारस्परिक निधि स्थापित की गई। आज इसकी निवल परिसंपत्ति मूल्य से जुड़ी 58 योजनाएँ कार्यरत हैं। यू एस 64 समेत ये सभी योजनाएँ सेबी के नियम कायदों से नियंत्रित होती हैं। 1987 के बाद भारतीय स्टेट बैंक, कनारा बैंक, पंजाब नेशनल बैंक जैसे सार्वजनिक क्षेत्र के अग्रणी बैंकों, एल आई सी और जी आई. सी ने अपनी-अपनी पारस्परिक निधियाँ शुरू की हैं। 1993 के बाद तो निजी क्षेत्र तक को पारस्परिक निधियाँ चलाने की छूट दे दी गई है। पारस्परिक निधियाँ सेबी के नियमों से संचालित होती हैं। पारस्परिक निधियाँ मोटे तौर पर दो प्रकार की योजनाएँ चलाते हैं : सीमित संवरण योजनाएँ और असीमित संवरण योजनाएँ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पारस्परिक निधियों की संख्या 1993 में 7 थी जो 1995-96 तक बढ़कर 27 हो चुकी थी। इन निधियों की योजनाओं की संख्या बढ़कर 196 हो गयी थी और उन्होंने 13,890 करोड़ रुपये की राशि जमा की थी। पारस्परिक निधियों में निवेश के अनेक जोखिम हैं। इनमें से महत्वपूर्ण हैं : योजनाओं के उद्देश्यों के पूरे होने की कोई गारंटी नहीं होती, यूनिटों के शुद्ध मूल्य अनिश्चित होते हैं, किसी निधि के पिछले कार्य निष्पादन का भावी कार्य निष्पादन से कोई संबंध नहीं होता, आदि।

12.7 शब्दावली

नियंत्रित निधि : एक बीमाकर्ता के जीवन बीमा कारोबार से संबंधित सभी निधियाँ।

बाजार क्षेत्र : इसका मतलब सरकारी और सरकार से जमानत प्राप्त प्रतिभूतियों के अलावा पूँजी बाजार में उपलब्ध प्रतिभूतियों में बीमा की निधियों का निवेश है।

पेशा बंदी : यह एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा एक व्यक्ति किसी सौदे में संभावित हानि से बचने के लिए किसी और सौदे का सहारा लेता है।

निवल परिसंपत्ति मूल्य : यह किसी यूनिट योजना की निवल परिसंपत्ति को योजना के अंतगर्त वर्तमान यूनिटों की संख्या से भाग देने पर आता है। निवल परिसंपत्ति सभी निवेशों के बाजार मूल्य तथा अर्जित आय के योग से संबंधित योजना की देनदारियों और खर्चों को घटाने पर पता चलती है।

सरकारी जमानत-प्राप्त प्रतिभूतियाँ : ये वे प्रतिभूतियाँ हैं जिनके बारे में ब्याज के भुगतान और मूलधन की वापसी की जमानत सरकार से प्राप्त होती है।

सामाजिक क्षेत्र : अर्थव्यवस्था के वे क्षेत्र जो व्यापक रूप से समाज के लाभार्थ होते हैं, सामाजिक क्षेत्र कहलाते हैं जैसे जल-आपूर्ति, जल-निकासी, आवास, ग्रामीण क्षेत्र आदि।

सूचकांक निधि : यह एक संवृद्धि निधि है। इसका संबंध शेयर मूल्यों के एक विशेष सूचकांक से होता है। इसमें उस सूचकांक विशेष में शामिल कंपनियों की प्रतिभूतियों में निवेश किया जाता है।

संवृद्धि निधि : यह पारस्परिक निधि की वह निधि/योजना है जिसमें अंशपूँजी और उससे जुड़े साधनों में निवेश किया जाता है। पूँजी की वृद्धि इसका उद्देश्य है।

क्षेत्र विशिष्ट निधि : यह भी एक संवृद्धि निधि है। इसमें अर्थव्यवस्था के किसी चुनिंदा क्षेत्र जैसे प्रौद्योगिकी में अंशपूँजी से जुड़े साधनों में निवेश किया जाता है।

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Bhole, L.M. (2000) : *Financial Institutions and Markets*, Tata Mcgraw Hills, New Delhi.

Machiraju, H.R. (1998) : *Indian Financial System*, Vikas Publishing House, Delhi.

Reserve Bank of India (2000-01) : *Report on Trend and Progress of Banking in India.*

Vakrshney, P.N. & Mittal, D.K. (2002) : *Indian Financial System*, Sultan Chand and Sons, New Delhi.

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) जीवन बीमा निगम की निधियों के निवेश के प्रमुख क्षेत्र हैं :
   अ) केंद्र सरकार की विपणन-योग्य (मार्केटेबुल) प्रतिभूतियाँ,
   ब) राष्ट्रीय आवास बैंक के ऋण,
   स) केंद्र सरकार और राज्य सरकारों की प्रतिभूतियाँ, तथा
   द) समाजोन्मुखी क्षेत्र।

2) आई आर डी ए की स्थापना के उद्देश्य हैं :
   अ) पालिसी धारकों के हितों की रक्षा करना, और
   ब) बीमा व्यापार का नियमन करना ताकि उसका सुव्यवस्थित विकास सुनिश्चित हो सके।

3) अ) सही

ब) गलत

बोध प्रश्न 2

1) अ) सीमित संवरण योजनाएँ जनता के लिए एक निश्चित अवधि तक खुली रहती हैं जबकि असीमित संवरण योजनाएँ सतत आधार पर चलती रहती हैं।

ब) सूचकांक निधि में निवेश उन कंपनियों की प्रतिभूतियों में किया जाता है जिनकी प्रतिभूतियाँ संबद्ध सूचकांक में शामिल होती हैं। क्षेत्र विशिष्ट निधि में निवेश एक चुनिंदा क्षेत्र की अंशपूँजी में किया जाता है।

2) अ) परिसंपत्ति प्रबंध कंपनी से तात्पर्य ऐसी कंपनी से जो प्रबंध और सलाह-सेवा छोड़ किसी कारोबारी गतिविधि में भाग नहीं लेती।

ब) प्रायोजक से अभिप्राय एक पारस्परिक निधि की स्थापना करने वाले व्यक्ति या संस्था से है।

3) अ) 10 प्रतिशत

ब) 10 प्रतिशत

स) चालू बाजार दाम पर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

1) अ) प्रतिभूतियों में निवेश से बाज़ार के जोखिम जुड़े होते हैं।

ब) यूनिटों का निवल परिसंपत्ति मूल्य घट-बढ़ सकता है।

स) योजनाओं में कोई गारंटी या सुनिश्चित आय नहीं होती।

2) निजी क्षेत्र के पारस्परिक निधियों का कीर्तिमान 1999-2000 तक काफ़ी प्रभावशाली रहा है। परन्तु 2000-2001 में इसमें कमी आई है।

इकाई 13 साख मान निर्धारक संगठन

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 साख मान (क्रेडि रेटिंग) का अर्थ
13.3 साख मान के निर्धारक
13.4 साख मान निर्धारण की पद्धति
13.5 भारत में साख मान निर्धारित करने वाले संगठन
13.6 साख मान के प्रतीक
13.7 साख मान के लाभ
13.8 साख मान और चूक के जोखिम
13.9 साख मान और आय प्राप्ति
13.10 साख मान की सीमाएँ
13.11 सारांश
13.12 शब्दावली
13.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें
13.14 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- साख मान के अर्थ और उसके निर्धारकों को स्पष्ट कर सकेंगे,
- मान-निर्धारण की पद्धति दर्शा सकेंगे,
- साख मान के लाभों और उनकी सीमाओं का वर्णन कर सकेंगे,
- साख मान के प्रतीकों को पहचान सकेंगे, और
- भारत में साख मान का निर्धारण करने वाले संगठनों की विवेचना कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

हाल के वर्षों में नियंत्रण के सख्त ढाँचे की समाप्ति के कारण पूँजी बाज़ारों से सीधे ऋण लेने वाली कंपनियों की संख्या बढ़ी है। हाल ही में ऐसे अनेक उदाहरण भी सामने आए हैं कि तुरंत लाभ कमाने वाले उद्यमी निवेशकों की धनराशि लेकर गायब हो गए हैं। 'निवेश के सुरक्षित और अच्छे अवसरों' तथा 'असुरक्षित और बुरे साधनों' के बीच अंतर करना अधिकाधिक कठिन हो रहा है। निवेशकों ने देखा है कि ऋण लेने वाली कंपनी का आकार और नाम अब समय पर ब्याज और मूल के भुगतान की पर्याप्त ज़मानत नहीं रहा। निवेशक ऐसे स्वतंत्र और विश्वसनीय संगठन की जरूरत महसूस करने लगे हैं जो निष्पक्ष ढंग से तथा पेशेवर तरीके से विभिन्न कंपनियों की साख को परखें और निवेश संबंधी फैसले करने में निवेशकों की मदद करें। निगम साख पत्रों के श्रेणीकरण की एक आसान

सी व्यवस्था बनाकर साख मान निर्धारित करने वाले संगठन लेनदारों को इस योग्य बनाते हैं कि वे देनदारी संबंधी दायित्व पूरे करने में देनदारों की सापेक्ष क्षमताओं के बारे में एक राय बना सकें। इस तरह ये संगठन वित्तीय विमध्यस्थीकरण की समाप्ति (फ़िनाशियल डिसइंटरमीडिएशन) तथा ऋण बाजार में व्यापकता और गहराई लाने के एक व्यापकतर कार्यक्रम में सहायक हैं और उसके अभिन्न अंग हैं।

ऋण पत्रों के मूल्यांकन के लिए साख मान का व्यापक उपयोग किया जाता है। इनमें बांडों और ऋण पत्रों जैसे दीर्घकालिक साधन तथा वाणिज्य पत्र (कामर्शियल पेपर) जैसे अल्पकालिक दायित्व भी शामिल हैं। इसके अलावा स्थिर जमा राशियों, जमा राशि प्रमाण-पत्रों, अंतःनिगम जमा राशियों तथा अंशतः परिवर्तनीय ऋण पत्रों डिबेंचरों के अपरिवर्तनीय भाग और वसीयत शेयरों समेत ढाँचा बंद दायित्वों के मान भी तय किए जाते हैं। भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) ने, जो भारतीय पूँजी बाजार का नियामक है, अब सभी ऋण पत्रों के मान-निर्धारण को अनिवार्य करने का फैसला किया है, चाहे उनकी परिपक्वता अवधि कुछ भी हो। इसके पहले यह व्यवस्था थी कि सिर्फ 18 माह से अधिक की परिपक्वता अवधि वाले ऋण पत्रों का मान तय करना आवश्यक था।

13.2 साख मान का अर्थ

साख मान निर्धारित करने वाले संगठन कंपनियों के उपरोक्त ऋण पत्रों का मान निर्धारित करते हैं। वे कंपनियों का नहीं, उनकी अलग-अलग ऋण-प्रतिभूतियों का मान तय करते हैं। *मान (रेटिंग) का अर्थ मूलधन और उस पर ब्याज की समय पर अदायगी संबंधी राय है। उसे प्रतीकों में व्यक्त किया जाता है जिनके सुनिश्चित अर्थ होते हैं।*

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एक मान सिर्फ़ चूक के जोखिम (डिफाल्ट रिस्क) को प्रतिबिंबित करता है, प्राप्ति के वक्र (यील्ड कर्व) के स्तर या आकार में होने वाले परिवर्तनों से जुड़े मूल्य संबंधी जोखिम (प्राइस रिस्क) को नहीं। इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि ऋण मान निवेश संबंधी सिफ़ारिश नहीं होते। वे निवेश के फैसले को प्रभावित करने वाले अनेक पक्षों पर ध्यान नहीं देते। उदाहरण के लिए वे निर्गम मूल्य (इशू प्राइस) का तथा पूँजीगत लाभ पाने की संभावनों का मूल्यांकन नहीं करते या आनुषंगिक बाजार की तरलता पर ध्यान नहीं देते। मान-निर्धारण में निर्गमकर्ता पुनर्भुगतान नहीं करते या आनुषंगिक बाजार की तरलता पर ध्यान नहीं देते। मान-निर्धारण में निर्गमकर्ता द्वारा पुनर्भुगतान संबंधी जोखिम या ब्याज दर संबंधी जोखिम या विनिमय दर संबंधी जोखिम का भी ध्यान नही रखा जाता। हालाँकि अक्सर उनका संबंध साख संबंधी जोखिम से होता है पर मान मूलतः साख संबंधी जोखिम की सापेक्ष गुणवत्ता संबंधी मान होता है। ध्यान रखें कि एक निवेशक और एक मान-निर्धारक संगठन के बीच कोई संबंध नहीं होता तथा मान-निर्धारक संगठन की राय से निवेशक को कोई सुरक्षा प्राप्त नहीं होती। *ये मान हानि के खिलाफ़ कोई जमानत नहीं देते।* ये सिर्फ चूक के जोखिम के विश्लेषण पर आधारित मत मात्र होते हैं, हालांकि इन्हें प्रबुद्ध मत कहा जाता है। वे जोखिम और प्रतिफल (रिटर्न) की विशेष वरीयताओं पर आधारित निर्णय करने में सहायता पहुंचाते हैं।

अपने ऋण पत्र के मान-निर्धारण के लिए इच्छुक कंपनी के लिए आवश्यक है कि वह किसी साख मान-निर्धारक संगठन से संपर्क करे और इस सेवा के बदले एक शुल्क दे। निगम क्षेत्र के लिए, कुछेक साधनों को छोड़ दें, तो ऋण-ब्याज जानने और उसे प्रचारित

करने की कोई मज़बूरी नहीं है। अगर मान अच्छा है तो एक कंपनी प्रचार के एक और साधन के रूप में उस मान का उपयोग कर सकती है और अगर वह अच्छा नहीं है तो उसे अपनी नियमावली और अपने प्रचार-अभियान से बाहर भी रख सकती है। साख-मान-निर्धारक संगठन नियमित रूप से निगमों की वित्तीय स्थिति का विश्लेषण करते हैं तथा उनकी प्रतिभूतियों का मान निर्धारित और संशोधित करते रहते हैं। विभिन्न मान-निर्धारक संगठन एक ही प्रतिभूति को शायद ही कभी अलग-अलग मान देते हों। अगर दो संगठन एक ही प्रतिभूति को अलग-अलग मान दें तो उसे विभाजित मान (स्पलिट रेटिंग) कहते हैं। जो ज़रा से अंतर दिखाई देते हैं, वे मान के एक स्तर से शायद ही अधिक होते हों। स्वीकृत मानों को हर सप्ताह संचार माध्यमों में प्रकाशित कराया जाता है। भारत में उद्योगों के कार्यकलाप के अनुरूप मान-निर्धारण संगठन ऐसे मानों को प्रकाशित नहीं करते जिन्हें निर्गमकर्ता स्वीकार न करें।

13.3 साख मान के निर्धारक

चूक संबंधी जोखिम (default risk) का आकलन और किसी निर्गम की गुणवत्ता का निर्धारण मुख्यतः तीन तत्वों से निर्धारित होता है :

अ) निर्गमकर्ता की भुगतान क्षमता,

ब) निर्गम पर प्रतिभूति के स्वामित्व के दावे की मज़बूती, और

स) निर्गमकर्ता के उद्योग और बाज़ार स्थल का आर्थिक महत्व।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

निर्गमकर्ता निगम की वर्तमान और भावी अर्जन शक्ति के विश्लेषण के लिए तथा फ़र्म की ताकतों और कमजोरियों की अंतःदृष्टि पाने के लिए अनुपात विश्लेषण (Ratio Analysis) का उपयोग किया जाता है। बांडों के मान-निर्धारक संगठनों ने ये दिशा-निर्देश सुझाए हैं कि गुणवत्ता के किसी विशेष मान की सीमा के अंदर पर अनुपात का कितना मूल्य होना चाहिए। मान-निर्धारक संगठन विभिन्न अनुपातों को महत्व देते हैं। हर उद्योग में अनुपातों के किसी विशेष समूह के लिए विभिन्न मूल्य उपयुक्त होते हैं। इसके अलावा व्यापार चक्र के उतार-चढ़ावों के दौरान हर फ़र्म के अनुपातों के मूल्य बदलते रहते हैं।

निर्गमकर्ता के आर्थिक महत्व व आकार संबंधी विचारणीय विषयों में ये भी शामिल हैं : निर्गमकर्ता जिस उद्योग में सक्रिय है उसकी प्रकृति (विशिष्ट रूप से अर्थव्यवस्था में उसकी स्थिति, उस उद्योग का जीवन चक्र, श्रम की स्थिति, आपूर्ति के कारक, तेज़ उतार-चढ़ाव, प्रमुख मध्यताएँ आदि मुद्दे) तथा निर्गमकर्ता के समक्ष मौजूद प्रतियोगिता (बाज़ार में उसका भाग, प्रौद्योगिक नेतृत्व, उत्पादन की दक्षता, वित्तीय ढाँचा आदि)।

13.4 साख मान-निर्धारण की पद्धति

मान-निर्धारण (रेटिंग) दीर्घकालिक मूल तत्वों की तथा मूल तत्वों में परिवर्तन की संभावनाओं की तलाश का नाम है। हर संगठन की मान-निर्धारण प्रक्रिया में प्रायः सार्वजनिक और निजी निर्गमकर्ता से संबंधित आँकड़ों का बुनियादी विश्लेषण, उद्योग का विश्लेषण, निर्गमकर्ता के वरिष्ठ कार्यपालकों की प्रस्तुतियाँ, सांख्यिकीय वर्गीकरण के मॉडल और निर्णय शामिल होते हैं। उदाहरण के रूप में मान-निर्धारक संगठन निर्गमकर्ता

की अल्पकालिक व दीर्घकालिक योजनाओं और बजटों का मर्मज्ञ (privy) होता है। मान-निर्धारण की पद्धति में प्रयुक्त विश्लेषण के ढाँचे को दो स्वतंत्र भागों में विभाजित किया जा सकता है।

पहले भाग का संबंध क्रियात्मक विशेषताओं और दूसरे का वित्तीय विशेषताओं से होता है। इसके अलावा परिमाणात्मक और वस्तुगत कारकों, प्रबंध की क्षमताओं जैसे गुणात्मक पक्षों की भी किसी ऋण पत्र का मान तय करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। निर्गमकर्ता के प्रकार के अनुसार विश्लेषण के गुणात्मक और परिमाणात्मक घटकों का सापेक्ष महत्व बदलता रहता है।

किसी मान-निर्धारण में निम्नलिखित मुद्दे शामिल किए जाते हैं:

अ) **कारोबारी जोखिम :** मान-निर्धारक संगठन कारोबारी जोखिम का निश्चय करने के लिए उद्योग की विशेषताओं, उसके निष्पादन और संभावना, उसकी क्रियात्मक स्थिति (क्षमता, बाजार में भाग, वितरण व्यवस्था, विपणन का तंत्र आदि), प्रौद्योगिक पक्षों, व्यापार चक्रों, आकार और पूँजीगत सघनता पर विचार करता है।

ब) **वित्तीय जोखिम :** मान-निर्धारक संगठन वित्तीय जोखिम के निश्चय के लिए उसके वित्तीय प्रबंध के विभिन्न पक्षों (जैसे पूँजी की संरचना, तरलता की स्थिति, वित्तीय लोच तथा नकदी-प्रवाह की पर्याप्तता, लाभदायकता, लाभकर स्थिति, ब्याज-प्राप्ति) पर विचार करते हैं। इसके साथ ही नकदी-प्रवाह के घटकों और उनसे संबंधित दावों पर खास जोर देते हुए अनुमानों पर मूल्य ह्रास के प्रावधान संबंधी तौर तरीकों के खास हवाले से लेखा संबंधी नीतियों और तौर-तरीकों के आय की मान्यता, मालनामे के मूल्यांकन, तुलनपत्र से बाहर के दावों और देनदारियों, अगोचर परिसंपत्तियों के परिशोधन (एमार्टाइज़ेशन), विदेशी मुद्रा के लेन-देन आदि पर भी विचार किया जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092840

स) **प्रबंध का मूल्यांकन :** इसमें निर्गमकर्ता की पृष्ठभूमि और उसके इतिहास, व्यावसायिक रणनीति और दर्शन, संगठन के ढाँचे, प्रबंध की गुणवत्ता , दबाव की हालत में प्रबंधकीय क्षमताओं, उत्तराधिकार के नियोजन समेत कार्मिक नीतियों पर विचार करना शामिल होता है।

द) **व्यावसायिक वातावरण का विश्लेषण :** इसमें नियामक वातावरण, क्रियात्मक वातावरण, राष्ट्रीय आर्थिक दृष्टिकोण संभावना, कंपनी के लिए विशेष महत्व के क्षेत्र, जारी मुकद्दमे, कर संबंधी स्थिति, अनेक प्रकार के परिदृश्यों में चूक के जोखिम की संभावनाएँ शामिल हैं।

मान-निर्धारण किसी ऐसे पूर्व निर्धारित फ़ार्मूले पर आधारित नहीं होता जिसमें प्रासंगिक चरों तथा प्रत्येक चर को दिए गए भारमान का पूर्व निर्धारण हो चुका हो। इसके अलावा विभिन्न संगठन अलग-अलग पक्षों पर जोर देते हैं। मोटे तौर पर मान-निर्धारक संगठन अपने आपको यह विश्वास दिलाता है कि एक कंपनी की परिसपंत्तियों और देनदारियों के बीच अच्छा तारतम्य है और यदि परिसंपत्तियों की गुणवत्ता गिरे तो वह मान को भी नीचे गिरा देता है।

सुसंगति और विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए मान-निर्धारक संगठन योग्यता प्राप्त पेशेवर लोगों से काम लेते हैं। साख ब्याज-निर्धारक संगठन की प्रतिष्ठा निवेशक के मन में भरोसा पैदा करती है। संगठन अपने ग्राहक के कार्यकलाप, प्रबंधकीय क्षमता, प्रबंध और संगठन के ढाँचे तथा वित्तीय ढाँचे का आकलन करके अपनी प्रतिष्ठा बनाता है। वह संगठन अपनी खुद की पहचान वाली एक स्वतंत्र कंपनी होनी चाहिए। उसमें सरकार का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। किसी ऋण पत्र का मान साख-मान-निर्धारक संगठन को कोई विश्वसनीयता की स्थिति नहीं देता। वांछित तो यह होता है कि एक ही प्रकार के ऋण पत्र का मान एक से अधिक संगठन निर्धारित करें। इस प्रकार निश्चित मान चिन्ह निवेशक को अधिक भरोसा दिला पाएगा।

मान गुणवत्ता का वह चिह्न होता है जो एक निर्गमकर्ता के चूक के जोखिम (defult risk) को सुविधाजनक ढंग से संक्षेप में प्रस्तुत करता है। एक निर्गमकर्ता की प्रस्तावित भुगतान-समय तालिका की विश्वसनीयता को मान-निर्धारक संगठन की विश्वसनीयता से बल मिलता है। सूचनाओं के प्रसंस्करण करने तथा निर्गमकर्ता पर निगरानी रखने में बड़े पैमाने की मितव्ययिता का उपभोग करके मान-निर्धारक संगठन प्रमाणन की यह भूमिका निभाते हैं। मान-निर्धारक संगठन प्रमाणन के अलावा क्या कोई सूचना संबंधी भूमिका भी निभाते हैं— इस बारे में विवाद जारी है। संगठनों को चाहे श्रेष्ठतर (निजी) सूचनाएँ सुलभ हों या वे सूचनाओं के श्रेष्ठ संसाधनकर्ता हों, सुरक्षा संबंधी मान मौजूदा सूचनाओं को मात्र संक्षेप में रखने की बजाय निवेशकों को सूचनाएँ प्रदान करते हैं। जैसे कि वास्तविक और प्रस्तावित परिवर्तनों की खबरें निर्गमकर्ता की प्रतिभूतियों के मूल्य को प्रभावित करती हों, ऐसा मानकर अनुभावाश्रित अनुसंधानों ने मान-निर्धारक संगठनों की सूचना-संबंधी भूमिका की पुष्टि की है। अधिकांश अध्ययन बुरी खबरों को दबाकर रखने के बारे में प्रबंधकों के सुज्ञात रुझान के अनुरूप अच्छे ऋण पत्रों की अपेक्षा बुरे ऋण पत्रों के मूल्यों पर अधिक भाव पड़ने के प्रमाण देते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @ 7428092240

बोध प्रश्न 1

1) ऋण पत्रों के साख मान के अर्थ और महत्व की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) साख मान के प्रमुख निर्धारकों को बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) मान-निर्धारक संगठन प्रतिभूतियों के मान-निर्धारण के लिए फ़र्म के किन क्रियात्मक क्षेत्रों पर ध्यान देते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

13.5 भारत में साख मान निर्धारित करने वाले संगठन

भारत में साख मान (क्रेडिट रेटिंग) निर्धारित करने वाले चार संगठन हैं:

अ) क्रेडिट रेटिंग एंड इनफ़ार्मेशन सर्विसेज़ ऑफ इंडिया लि. (क्रिसिल, CRISIL)

ब) इनवेस्टमेंट इनफ़ार्मेशन एंड क्रेडिट रेटिंग एजेंसी ऑफ इंडिया लि. (इक्रा, ICRA)

स) क्रेडिट एनालिसिस एंड रिसर्च लि. (केयर, CARE) और

द) डफ़ एंड फेल्प्स, क्रेडिट रेटिंग ऑफ़ इंडिया (प्रा.) लिमिटेड।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अ) **क्रिसिल** : यह संगठन 1981 में आई सी आई सी आई और यू टी आई द्वारा स्थापित किया गया था और ऋण पत्रों का मूल्यांकन करता है। ऋण पत्रों पर इसके लगभग आधे साख मानों का उपयोग किया जा रहा है। बाजार में क्रिसिल का भाग लगभग 75 प्रतिशत है। उसने साख पर जोखिम के आकलन हेतु कई नव प्रवर्तनकारी उपाय शुरू किए हैं, जैसे जवाबी पक्ष के साख मान और बैंक ऋणों के साख मान। क्रिसिल ऋण पत्रों, सावधिक जमा राशियों, वाणिज्य पत्रों, वरीयता शेयरों और ढाँचा बंद दायित्वों का मूल्यांकन करता है। मूल्यांकित साधनों के कुल मूल्यों में ऋणा पत्रों का भाग 31.1, सावधिक जमा राशियों का 42.3 और वाणिज्य पत्रों का 6.6 प्रतिशत है। क्रिसिल अपने मानों को स्कैन (SCAN) में प्रकाशित कराता है जो अंग्रेजी के अलावा हिंदी और गुजराती में प्रकाशित एक त्रैमासिक पत्रिका है।

क्रिसिल में मूल्यांकन पेशेवर योग्यता वाले लोगों द्वारा किया जाता है तथा इसमें आँकड़ों के संग्रह व विश्लेषण के साथ कंपनी के मूल्यांकन को प्रभावित कर सकने वाली रणनीतियों, योजनाओं व दूसरे मुद्दों पर विचार-विमर्श के लिए कंपनी के प्रमुख अधिकारियों से मुलाक़ातें शामिल हैं। मूल्यांकन की प्रक्रिया में गोपनीयता सुनिश्चित रहती है। कंपनी जब साख मान के उपयोग का फैसला करती है तो ऋण पत्र के पूरे जीवन में उसके मान पर निगरानी रखना क्रिसिल का दायित्व है।

ब) **इक्रा** : इसे आई एफ़ सी आई द्वारा 1991 में स्थापित किया गया। वर्ष 1996-97 में इक्रा ने विनिर्माण कंपनियों, वित्त कंपनियों और वित्तीय संस्थाओं के 261 ऋण पत्रों का मूल्यांकन किया जिनका मूल्य 12,850 करोड़ रुपये था। इसके विपरीत 1995-96 में उसने 75,742 करोड़ मूल्य वाले 293 ऋण पत्रों का मूल्यांकन किया था। इसका मतलब एक वर्ष में मूल्यांकित ऋण पत्रों के मूल्य में

85 प्रतिशत की गिरावट आई है। मार्च 1997 के अंत तक मूल्यांकित कुल राशि में ऋण के साधन रूप में ऋण पत्रों (दीर्घकालिक साधनों समेत) का भाग 28.5, सावधिक जमा राशियों (मध्यकालिक साधनों समेत) का भाग 49.4 तथा वाणिज्य पत्रों (अल्पकालिक साधनों समेत) का भाग 22.1 प्रतिशत था। इन तीन मूल्यांकित मोटा-मोटी श्रेणियों की राशियों के संगत भाग इस प्रकार थे : ऋण पत्र 23.8, स्थिर जमा राशियाँ 52.2 और वाणिज्य पत्र 24.0 प्रतिशत।

मान-निर्धारण के लिए इक्रा जिन बातों पर विचार करता है, वे ऋण लेने वाले संगठन की प्रकृति पर निर्भर होते हैं। सुरक्षा के अंतर्निहित तत्वों, विपणन की रणनीतियों, प्रतियोगिता में श्रेष्ठता, प्रबंध की दक्षता व प्रभावोत्पादकता, मानव संसाधन विकास के आचार-विचार, जोखिमों की पेशबंदी, नकदी प्रवाह की प्रवृत्तियों और संभावित तरलता, वित्तीय लोच, परिसंपत्तियों की गुणवत्ता, ऋण-सेवा संबंधी पिछला व्यवहार और सरकारी नीतियों की भी छानबीन की जाती है। एक ऋण पत्र से जुड़े साख के जोखिम का निश्चय करने के अलावा इक्रा ने अर्जन की संभावनाएँ और जोखिम का विश्लेषण, अर्निंग प्रास्पेक्ट्स एंड रिस्क एनालिसिस (EPRA) नाम से एक संगठन भी बना रखा है। इसका उद्देश्य अंश पूँजी की सापेक्ष गुणवत्ता पर प्रामाणिक जानकारी देना है। इसके लिए कंपनी के मूल तत्वों से जुड़े लगभग सभी मापकों की छानबीन आवश्यक है। इनमें प्रासंगिक क्षेत्रवार परिप्रेक्ष्य भी शामिल हैं। एक विश्लेषक के अपूर्वाग्रही मत और प्रबुद्ध परिप्रेक्ष्य तथा समिति के सदस्यों के समृद्ध आकलन से इस गुणात्मक विश्लेषण को पुष्ट और परिपूर्ण किया जाता है। इक्रा की राय निर्गमकर्ता कंपनी को अपने अंश पूँजी बाजार को फैलाने में मदद देती है। चूँकि नाम की मान्यता की जगह वस्तुगत निर्णय को महत्व दिया जाता है, कम नामी कंपनियाँ भी अंश पूँजी बाज़ार तक पहुँचने में समर्थ हो जाती हैं।

DIKSHANT IAS
Callus @7428092240

स) **केयर :** यह साख मान और सूचना सेवा की एक कंपनी है जिसे निवेशकर्ता संस्थाओं, बैंकों और वित्त कंपनियों के साथ मिलकर आई डी बी आई ने स्थापित किया था। कंपनी ने अपना कामकाज अक्तूबर 1993 में आरंभ किया था। जनवरी 1994 में केयर ने अपने मूल्यांकनों की एक त्रैमासिक पत्रिका 'केयर व्यू' (CARE VIEW) का प्रकाशन आरंभ किया। सभी स्वीकृत मानों के औचित्य के अलावा केयर व्यू प्रायः ऋण पत्रों के निर्गमकर्ताओं, निवेशकों और बाज़ार के दूसरे खिलाड़ियों की दिलचस्पी के विशेष लेख आदि भी छापता है।

13.6 साख मान के प्रतीक

साख मान निर्धारित करने वाले संगठन किसी साधन का मूल्यांकन करके उसे एक विशेष प्रतीक देते हैं। हर प्रतीक का एक निश्चित अर्थ होता है। इन प्रतीकों को सुरक्षा के अवरोही क्रम में या अ-भुगतान के जोखिम के आरोही क्रम में स्पष्ट किया गया है। उदाहारण के लिए ऋण पत्र निर्गमों के लिए क्रिसिल ने ये प्रतीक तय किए हैं :

ए ए ए : ब्याज और मूलधन की समय पर अदायगी की *उच्चतम सुरक्षा* का संकेत है।

ए ए : ब्याज और मूलधन की समय पर अदायगी की *उच्च सुरक्षा* का संकेत है।

ए : ब्याज और मूलधन की समय पर अदायगी की *समुचित सुरक्षा* का संकेत है।

बी बी बी : वर्तमान में ब्याज और मूलधन की अदायगी की *पर्याप्त सुरक्षा* का संकेत है।

बी बी : समय पर ब्याज और मूलधन की अदायगी की *अपर्याप्त सुरक्षा* का संकेत है।

बी : चूक (default) की भारी आशंका का संकेत है।

सी : चूक की संभावना का संकेत है। समय पर ब्याज और मूलधन की अदायगी तभी संभव है जबकि अनुकूल परिस्थितियाँ बनी रहें।

डी : से संकेत मिलता है कि उस ऋण पत्र में चूक हो रही है, उस पर ब्याज और मूलधन के बक़ाये चढ़े हैं तथा परिपक्वता के समय अदायगी में चूक की आशा है।

आप देखेंगे कि जब प्रतीक ए ए ए की जगह ए ए हो जाता है तो समय पर ब्याज व मूलधन की अदायगी की सुरक्षा कम हो जाती है। जहाँ ए ए ए समय पर अदायगी की अधिकतम सुरक्षा का संकेत है, वहीं डी सचमुच में चूक का या परिपक्वता पर चूक की आशा का संकेत देता है। विभिन्न प्रतीक मूलधन और ब्याज के भुगतान में जोखिम की विभिन्न सीमाओं के सूचक हैं। यह पूर्व वर्णित पद्धति के आधार पर मान-निर्धारक संगठन का मूल्यांकन है। आपकी जानकारी के लिए इस इकाई के परिशिष्ट में दूसरे मूल्यांकन भी दिए गए हैं।

13.7 साख मान के लाभ

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

साख मान का निर्धारण पूँजी बाजार के विभिन्न घटकों के लिए उपयोगी साधन है। विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों को साख मान से विभिन्न लाभ प्राप्त होते हैं।

1) **निवेशक :** साख मान निवेशकों को जोखिम की पहचान कराके उन्हें दीवालिया बनने से बचाता है। यह निवेश से जुड़े जोखिम का एक अंदाज़ा कराता है। यह निर्णय कंपनी की विश्वसनीयता का संकेत है। साख मान के प्रतीक ऐसी आसान भाषा में साधनों की गुणवत्ता की जानकारी देते हैं जिसे मामूली निवेशक भी समझ सकता है और उसे दलाल की सहायता लिए बिना निवेश संबंधी फ़ैसले लेने में मदद मिलती है। व्यक्ति और संस्था, दोनों अपने लिए साख की जोखिम संबंधी नीतियाँ तय कर सकते हैं तथा साख मानों के आधार पर बाज़ार द्वारा दिए जा रहे जोखिम प्रीमियम की पर्याप्तता या अपर्याप्तता का आकलन कर सकते हैं।

2) **ऋण पत्रों के निर्गमकर्ता :** जिस कंपनी के साधनों का मान अधिक होता है, उसे ऋण प्राप्ति की कम लागत पर पूँजी की अधिक सुलभता का अवसर मिलता है। मान-निर्धारण निर्णयों की सबसे अच्छी कीमत और समय तय करने में सहायता और वित्त संबंधी लोच प्रदान करता है। मूल्यांकित साधनों वाली कंपनियाँ अपने ग्राहकों, लेनदारों और देनदारों के बीच अपनी बेहतर छवि बनाने के लिए साख मान का उपयोग विपणन के एक उपकरण के रूप में कर सकती हैं। साख मान कंपनियों को अपनी खाता प्रणालियों, वित्तीय ख़बरों और प्रबंध के ढर्रों के बारे में और भी भेद जाहिर करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। इससे उन श्रेणियों के निवेशकों को निवेश का अवसर मिलता है जो प्रतिष्ठित मान-निर्धारक संगठनों से अनिवार्य मूल्यांकन कराने की माँग करते हैं।

3) **वित्तीय मध्यस्थ :** बैंकों, सौदागर बैंकरों और निवेश के सलाहकारों जैसे वित्तीय मध्यस्थों को ऋण और निवेश संबंधी फ़ैसलों के लिए साख मान से बहुत उपयोगी जानकारी मिलती है। उदाहरण के तौर पर यदि साख मान अधिक हो तो दलाल अपने ग्राहकों को अधिक आसानी से निवेश के प्रस्ताव विशेष को चुनने को तैयार कर सकते हैं। इससे ग्राहकों के विश्वास जागृत करने में समय, लागत और मेहनत की बचत होती है।

4) **कारोबार के जवाबी पक्ष :** साख मान कारोबार के जवाबी पक्षों (काउंटर पार्टीज़) को कारोबारी संबंध बनाने में मदद देते हैं, खासकर साखपत्र (लेटर्स ऑफ़ क्रेडिट) जारी करने, अनुबंध देने, सहयोग के अनुबंध करने आदि में साख मान बहुत उपयोगी होते हैं।

5) **नियामक :** साख मानों की सहायता से नियामक (रेगुलेटर्स) नई प्रतिभूतियों की पात्रता के मानदंड और प्रवेश संबंधी सीमाएँ तय करने, संगठनों की वित्तीय मज़बूती पर निगरानी रखने तथा ऋण-प्रतिभूतियों के बाजार में दक्षता बढ़ाने में समर्थ होते हैं। इससे वित्तीय व्यवस्था में पारदर्शिता बढ़ती है और इसके फलस्वरूप स्वस्थ बाजार का विकास होता है।

13.8 साख मान और चूक के जोखिम

DIKSHANT IAS
Call us @ 7428192240

अधिकांश निवेशक चूक के जोखिम (डिफ़ाल्ट रिस्क) का आकलन करने के लिए साख मानों के प्रयोग को वरीयता देते हैं। मूडीज़, स्टैंडर्ड एंड पुअर्स तथा डफ़ और फेल्स जैसे अंतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त साख मान संगठन एक बहुत लंबे अरसे से बांड जारी करने वालों को मान-निर्धारण की सेवाएँ देते आए हैं। निवेशकों तक सूचनाओं का प्रवाह बढ़ाने के लिए तथा अपने बांडों की माँग के बढ़ने की आशा लेकर बांडों के निर्गमकर्ता बांड-निर्गम की गुणवत्ता के मूल्यांकन के लिए संगठन को पैसा भी देते हैं। मान-निर्धारक संगठन विभिन्न कारकों का मूल्यांकन करके बांड के उपयुक्त साख मान का निश्चय करते हैं। स्टैंडर्ड एंड पुअर्स अधिकतर बांडों के करार (इनडेंचर), परिसंपत्ति की सुरक्षा, वित्तीय संस्थाओं, भावी अर्जनशक्ति और प्रबंध पर विचार करके निगम बांडों की साख तय करता है। बांड की श्रेणियों को अक्षरों में मान दिए जाते हैं। सबसे अच्छी श्रेणी के बांडों को, जिनमें चूक का जोखिम नगण्य माना जाता है, तीन ए (Aaa या AAA) मान दिया गया है। मानों की प्रमुख श्रेणियों के अंदर जब सापेक्ष स्थिति दर्शना उचित हो तो मान-निर्धारक संगठन धन या ऋण के चिह्न (जैसे Aa^{+}, $\dot{A}^{+}$) लगा देते हैं। तालिका 13.1 मान-निर्धारण के सुप्रसिद्ध संगठनों मूडीज़ तथा स्टैंडर्ड एंड पुअर्स (एस एंड पी) के साख मान के प्रतीकों को दर्शाती और उनको स्पष्ट करती है।

ये संगठन सभी बांडों का मूल्यांकन नहीं करते हैं। सामान्यतः छोटे और निजी तौर पर जारी निर्गमों का मूल्यांकन नहीं किया जाता। जिन बांडों का मूल्यांकन किया जाता है उनके लिए परस्पर-प्रतियोगी सेवाएँ सामान्यतः एक बांड को एक ही श्रेणी में रखती हैं। उनके बीच कभी-कभार ही एक श्रेणी से अधिक का अंतर होता है। शोध अध्ययनों से पता चला है कि बांड की गुणवत्ता के मूल्यांकनों और वास्तविक चूकों में बहुत गहरा सहसंबंध है। कम साख मान वाली अधिकांश फर्म सामान्यता चूक करती हैं। इससे संकेत मिलता है कि साख मान संबंधी ज्ञान चूक का कारण बन सकने वाले वित्तीय जोखिमों के आकलन में सचमुच सहायता देता है।

तालिका 13.1
साख मान फ़र्मों के मूल्यांकन की श्रेणियाँ

मूडीज़	व्याख्या
Aaa	सर्वोत्त्म
Aa	उत्तम श्रेणी
A	उत्तम-मध्यम श्रेणी
Baa	मध्यम श्रेणी
Ba	सट्टे के तत्व हैं
B	सामान्यतः वांछित निवेश की विशेषताओं का अभाव है।
Caa	बुरी हालत, हो सकता है अदायगी में चूक हो रही हो।
Ca	भारी सीमा तक सट्टेबाजी, अकसर चूक होती है।
C	निकृष्टतम श्रेणी

स्टैंडर्ड एंड पुअर्स	व्याख्या
AAA	सर्वोत्तम श्रेणी
AA	उच्च श्रेणी
A	अवर-मध्यम श्रेणी
BBB	मध्यम श्रेणी
BB	निम्न मध्यम श्रेणी
B	सट्टेबाजी
CCC-CC	खुली सट्टेबाजी
C	आयकारी बांडों के लिए आरक्षित
DDD-DD	चूक हो रहे हैं, साख मान सापेक्ष गनीमत मूल्य (साल्वेज़ वैल्यू) का संकेत है

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

13.9 साख मान और आय प्राप्ति

किसी बांड निर्गम को दिया गया साख मान सीधे उसकी प्राप्ति (यील्ड) को प्रभावित करता है। कम जोखिम वाली प्रतिभूतियों के निर्गमकर्ताओं की अपेक्षा भारी जोखिम वाली प्रतिभूतियों के निर्गमकर्ताओ को अधिक दर से प्रतिफल देना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर कबाड़ा बांडों (जंक बांड्स) के साथ भारी जोखिम होती है और ये अधिक प्रतिफल देने वाले साधन हैं। ऐसे साधनों में संभव है कि निवेश सीमित हो। विभिन्न कालखंडों (1955-67, 1968-79, 1981-85) में विभिन्न श्रेणियों के बांडों की परिपक्वता पर औसत प्राप्तियों (बांड सूचकांक) का एक अध्ययन दिखाता है कि जोखिम बढ़ने पर बाजार से प्राप्तियाँ भी बढ़ जाती हैं। निवेशक जोखिम को पसंद नहीं करते। दीर्घकाल ही नहीं, अल्पकाल में भी जोखिम से बचने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। जोखिम को नापसंद करने

वाले निवेशकों को आकर्षित करने के लिए कम साख मान वाले बांडों को बाजार में अधिक प्रतिफल देना होता है। मान जितना अधिक होगा, बांड से प्राप्ति उतनी ही कम होगी। प्राप्तियों में इस अंतर को प्राप्ति-प्रसार (यील्ड स्प्रेड) कहते हैं। साख मान की दो श्रेणियों के बीच प्राप्ति का प्रसार चूक के जोखिम के प्रीमियम का माप है। चूक के जोखिम से जुड़े प्राप्ति प्रसार हालांकि कालांतर में स्थिर नहीं रहते, फिर भी उनका समुचित सापेक्ष ढर्रा बना रहता है। मतलब यह कि ए ए ए मान वाले बांड हमेशा ए ए बांडों से कम प्रतिफल देते हैं और ये भी ए मान वाले बांडों से कम प्रतिफल देते हैं, आदि। निवेशक प्रायः साख मान की सर्वोत्तम श्रेणी को प्रतिफल का न्यूनतम स्तर मानते हैं तथा कम मान वाले बांडों के लिए प्राप्ति प्रसारों की गणना करते हैं।

भारत में साख मानों और निधियों की लागत का संबंध बहुत सीमा तक कमजोर रहा है। अनेक बार ऐसा देखा गया है कि मिलते-जुलते मानों वाली कंपनियाँ ब्याज दरों में भारी अंतर के साथ धन जुटा रही हैं। इससे जाहिर है कि ऐसी कंपनियों में निवेश पर जोखिम के बारे में बाजार की समझ में भिन्नता है, भले ही साख मान निर्धारक संगठन ने उन्हें एक ही (प्रतीक की) श्रेणी में क्यों न रखा हो। इससे निष्कर्ष निकलता है कि साख मान संगठन साख मान जोखिम के बारे में बाजार की समझ को ठीक से पकड़ नहीं पाते। इन कंपनियों को दिए गए साख मानों में कहीं कुछ गड़बड़ी ज़रूर है।

अनेक अनुसंधान अध्ययनों से संकेत मिलता है कि निगम बांडों के लिए साख मान और प्राप्ति-प्रसार के निर्धारकों में निम्नलिखित कारक शामिल हैं:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) ऋण के अनुपात,
2) अर्जन के स्तर,
3) अर्जन में परिवर्तनशीलता,
4) ब्याज-सुरक्षा, और
5) पेंशन संबंधी दायित्व

चूँकि ये चर (Variables) प्राप्ति-प्रसार और मान में अंतर के लगभग 75 प्रतिशत भाग की व्याख्या करते हैं, दूसरे मनोगत कारकों की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। कारोबार चक्र के दौरान प्राप्ति-प्रसार का ढर्रा भी बदल सकता है। मंदी के कालों (समृद्धि के कालों) में प्राप्ति के प्रसार बढ़ (घट) सकते हैं। प्राप्ति-प्रसारों के फैलाव और सिमटाव की एक समुचित व्याख्या यह है कि मंदी के दौरान नकदी के प्रवाह में कमी के कारण कम गुणवत्ता श्रेणी की फ़र्मों के लिए चूक का जोखिम अनुपात से अधिक बढ़ जाता है। साथ ही, मंदी के दौरान निवेशकों की संपत्ति कम हो जाती है और इसलिए वे जोखिम से कतराने लगते हैं।

13.10 साख मानों की सीमाएँ

साख मानों की अनेक सीमाएँ हैं। एक, संगठनों को लगता है कि पर्याप्त परिवर्तन आते हैं तो साख मान भी बदल जाते हैं। मान-निर्धारक संगठन बाजार की सभी फ़र्मों पर लगातार ख़ुद निगरानी रखने में असमर्थ होते हैं। बाद की घटनाओं के कारण मान-निर्धारक

संगठनों की राय गलत भी सिद्ध हो सकती है जिससे निर्गमकर्ता की परिसंपत्ति की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

दूसरे, साख मानों का उपयोग चूक के जोखिम को असंबद्ध श्रेणियों में दिखाता है जबकि वास्तव में चूक का जोखिम एक सतत् प्रवृत्ति होता है। मूडीज़ ने अक्षर प्रणाली के साथ संख्याएँ लगाकर इस बात को बहुत पहले समझ लिया था, जिससे उनकी श्रेणियों की संख्या 9 से बढ़कर 19 हो गई थी। फिर भी यह सीमा अभी यथावत है। मान-निर्धारक संगठनों द्वारा दिए जाने वाले अक्षर मान एक सामान्य, या मोटे तौर पर ही विभेद कर पाते हैं।

तीसरे, समय और लागत संबंधी बाधाओं के कारण साख मान किसी निर्गमकर्ता और निगर्म की सभी विशेषताओं को पेश करने में असमर्थ होते हैं।

एक ऋण लेने वाली कंपनी, अगर अपने प्रस्तावित निर्गम के लिए अधिक साख मान प्राप्त कर ले तो उसकी ऋण लेने की लागत कम हो जाती है। फलस्वरूप अधिक साख मान पाने की बाजी और उसके लिए दबाव बढ़ जाते हैं। अगर कंपनी को पता चले कि उसके निर्गम को कम साख मान मिलेगा तो हो सकता है वह किसी और संगठन से संर्पक करे और फिर सभी मानों में सबसे अच्छे मान का उपयोग करे क्योंकि उसके लिए सभी साख मानों को प्रचारित करने की कोई मजबूरी नहीं होती। भारत के साख मान उद्योग में प्रचलित तौर-तरीकों के अनुसार एक कारपोरेट इकाई के सामने उसके ऋण-निर्गम को दिए गए पहले साख मान पर राज़ी न होने का विकल्प मौजूद होता है और वह चाहे तो उस संगठन से मूल्यांकन न कराने का फैसला कर सकती है। ऐसी स्थिति में साख मान निर्धारक संगठन हरेक को अपने मूल्यांकन की जानकारी नहीं देता और कंपनी किसी और संगठन के पास जाने के लिए स्वतंत्र होती है। लेकिन जब कंपनी इकाई पहले मूल्यांकन पर सहमत हो जाती है तो उसके पास साख मान संगठन द्वारा जारी किए गए साख मान को न मानने का विकल्प नहीं रह जाता। इसके चलते साख मान संगठन आरंभ में अनुकूल साख मान देकर ग्राहकों को पटाते हैं लेकिन हो सकता है संगठन अंततः इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग करे क्योंकि एक बार साख मान से सहमत होने के बाद कंपनी के पास उस संगठन से मतभेद जताने का विकल्प नहीं रह जाता। कंपनियाँ एक साख मान संगठन पर निर्भर न रहे, यह सुनिश्चित करने के लिए सभी साधनों के अनिवार्य दोहरे मूल्यांकन की व्यवस्था पर विचार किया जा सकता है। कभी-कभी साख मान संगठन अपनी ओर से अपने मानदंडों की कठोरता में कमी ला सकता है ताकि उसका कारोबार फैले और मुनाफ़ा बढ़े, खासकर अगर सवाल किसी अनुसूचित कंपनी का हो। इसलिए निवेशकों को चाहिए कि निश्चित आयदायक साधनों की सुरक्षा के बारे में विभिन्न संगठनों के साख मानों पर आँखें बंद करके विश्वास न करें। उनको मूल्यांकन के दूसरे वैकल्पिक स्रोतों की छानबीन भी करनी चाहिए ताकि वे जोखिम का ठीक-ठीक अंदाज़ा लगा सकें। साख मान संगठनों को सचेत रहकर यह सुनिश्चित करना होगा कि उनके साख मान संबंधी निर्णय शेयर के मूल्य पर अनुकूल प्रभाव सुनिश्चित करने के लिए कारोबार के निर्णय व लाभदायकता से प्रभावित न हों। यह कहा जाना चाहिए कि साख मान संगठनों को उनके समस्त कार्यकलाप के आधार पर परखना चाहिए, एक या दो भूलों पर नहीं। ऐसी मिसालें भी हैं कि दुनिया के चोटी के संगठनों ने जिन साधनों को भारी सुरक्षा वाले निवेश के संगठन करार दिया, उसमें भी निर्णय गलत साबित हुए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जब कंपनी पहले साख मान पर सहमत हो जाती है तो साख मान संगठन पर ऋण-निर्गम की परिपक्वता तक उसका मूल्यांकन करने की तथा अपनी निगरानी की व्यवस्था के अंग के रूप में उस साख मान को प्रकाशित करने की जिम्मेदारी आ जाती है। ऐसा देखा गया है कि साख मान संगठन पक रहे सकंट के पूर्वानुमान में बुरी तरह असफल रहे हैं और उन्होंने उन कंपनियों को भी अच्छे साख मान दिए हैं जो आख़िर भुगतान न कर सकीं। कहा गया है कि अगर कंपनी की स्थिति के बारे में समय पर चेता देने वाला एक बेहतर साख मान संगठन रहा होता तो सी आर बी (CRB) घोटाला नहीं होता। इस संकट के बाद साख मान संगठन अति सतर्क हो गए और उन्होंने विशेष कंपनियों के बारे में अपने साख मानों को काफी-कुछ गिरा दिया।

उदाहरण के लिए 1997 में क्रिसिल, इक्रा और केयर ने क्रमशः 140, 35 और 50 कंपनियों के साख मान कम किए। इनके द्वारा साख मानों में क्रमशः 36, 40 और 64 प्रतिशत कमी की गई जो पहले की अपेक्षा 3 अंक कम या इससे भी कम थे।

तालिका 13.2

1997 में साख मानों में कमी (प्रतिशत में)

	क्रिसिल	इक्रा	केयर
एक अंक की कमी	35.0	28.6	22.0
दो अंकों की कमी	29.0	31.4	14.0
तीन अंकों की कमी	12.9	8.6	20.0
चार अंकों की कमी	7.9	8.6	4.0
चार से अधिक अंकों की कमी	15.0	22.9	40.0
कमी से प्रभावित कंपनियों की संख्या	140	35	50

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जिन कंपनियों को रातों-रात निवेश योग्य की बजाय अ-निवेश योग्य करार दे दिया जाए उनका भाग अगर अधिक हो तो यह स्थिति साख मानों में निवेशकों का भरोसा बढ़ाने में सहायक नहीं होती।

भारत में, और उसी तरह विकसित देशों में भी, अक्सर साख मानों में परिवर्तन स्टाकों के दामों में परिवर्तन के बाद होते हैं। तीन साख मान संगठनों ने 1997 में जिन 157 कंपनियों के साख मानों में कटौती की, उनमें से 130 के शेयर मूल्यों में गिरावट के बाद साख मान कम किए गए। स्टाक मूल्यों के उतार-चढ़ाव अंततः साख मानों में परिवर्तन अवश्य लाते हैं - इन साक्ष्यों के बावजूद यह मानने का आधार है कि कंपनियों के साख मानों और उनके स्टाक मूल्यों की तुलना के संदर्भ में और अधिक परिवर्तन फ़ौरन आवश्यक है। जिन ग़ैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों को क्रिसिल और इक्रा ने निवेश योग्य करार दिया है, मगर जो सम मूल्य से कम पर कारोबार कर रहे हैं, उनके बारे में, या इसी तरह की दूसरी कंपनियों के बारे में, यह आवश्यकता और भी बढ़ जाती है।

बोध प्रश्न 2

1) क्रिसिल द्वारा दिए जाने वाले ए ए ए, ए ए और ए साख मानों में अंतर कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) बतलाइए कि निम्नलिखित साख मान की सीमा है या उसका लाभ है।

अ) साख मान किसी निर्गमकर्ता या निर्गम की सभी विशेषताएँ दिखाने में असमर्थ हैं। (सीमा/लाभ)

ब) साख मान अधिकतम वित्तीय लोच प्रदान करता है। (सीमा/लाभ)

स) साख मान संगठन बाजार में सभी प्रकार की फ़र्मों पर नज़र रखने में असमर्थ हैं। (सीमा/लाभ)

3) बतलाइए कि निम्नलिखित वक्तव्य सही (स) हैं या गलत (ग):

अ) भारी जोखिम वाली प्रतिभूतियों के निर्गमकर्ता कम दर से प्रतिफल देते हैं। (सही/गलत)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ब) एक प्रतिभूति का साख मान जितना अधिक होता है, उसमें चूक के अवसर भी उतने ही अधिक होते हैं। (सही/गलत)

ग) साख मान संगठन छोटे निर्गमों समेत सभी प्रकार के बांडों का मूल्यांकन करते हैं। (सही/गलत)

13.11 सारांश

साख मान शब्द से अभिप्राय ऋण पत्रों के मूल्यांकन से है। ऋण पत्रों में बांडों, डिबेंचरों जैसे दीर्घकालिक साधन और वाणिज्य पत्र जैसे अल्पकालिक दायित्व भी शामिल हैं। इनके अलावा स्थिर जमाराशियाँ, जमाराशि प्रमाण-पत्रों, अंतः निगम जमाराशियों, ढाँचा बंद दायित्वों आदि का मूल्यांकन भी किया जाता है। अब भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) ने सभी ऋण पत्रों का अनिवार्य मूल्यांकन लागू करने का फैसला किया है, चाहे उनकी परिपक्वता-अवधि कुछ भी हो। साख मान पूँजी बाजार के विभिन्न घटकों, जैसे निवेशकों, ऋण पत्रों के निर्गमकर्ताओं, वित्तीय मध्यस्थों, कारोबारी उद्यमों, नियामकों आदि के लिए उपयोगी होते हैं। बांडों की उत्तमता तथा वास्तविक चूक जोखिमों में उच्च स्तरीय सहसंबंध पाया जाता है। कम जोखिम वाली प्रतिभूतियों की अपेक्षा भारी जोखिम वाली प्रतिभूतियों के निर्गमकर्ताओं को अधिक दर से प्रतिफल देना पड़ता है। किसी निर्गम को दिए गए साख मान के बारे में अनेक कठिनाइयाँ पैदा होती हैं। साख मान तय करते समय मुख्यतः निर्गमकर्ता की भुगतान की क्षमता, प्रतिभूति के मालिक के दावे की ताकत,

निर्गमकर्ता के आर्थिक महत्व और आकार पर विचार किया जाता है। साख मान संगठनों द्वारा दिए गए साख मानों की अनेक सीमाएँ होती हैं। इनमें महत्वपूर्ण सीमाएँ इस प्रकार हैं : साख मान कभी-कभार ही बदलते हैं, कोई भी साख मान प्राप्ति वक्र के स्तर या आकार में होने वाले परिवर्तनों से जुड़े मूल्य संबंधी जोखिमों को प्रतिबिंबित नहीं करता बल्कि चूक के जोखिम को प्रतिबिंबित करता है, आदि।

भारत में आजकल साख मान निर्धारित करने वाले चार संगठन हैं जिनमें निम्नलिखित तीन सुज्ञात और सुस्थापित हैं:

अ) क्रेडिट रेटिंग एंड इनफ़ार्मेशन सर्विसेज़ ऑफ़ इंडिया (क्रिसिल),

ब) इनवेस्टमेंट इनफ़ार्मेशन एंड क्रेडिट रेटिंग एजेंसी ऑफ़ इंडिया लि. (इक्रा), और

ग) क्रेडिट एनालिसिस एंड रिसर्च लि. (केयर)।

13.12 शब्दावली

अनुपात विश्लेषण : इसका अर्थ एक कंपनी के तुलन पत्र तथा हानि-लाभ खाते में मौजूद विभिन्न आँकड़ों के अनुपातों की गणना करके उनकी व्याख्या करना है।

अंतःनिगम जमाराशियाँ : एक कंपनी द्वारा कंपनी में जमा की नई राशियाँ।

कारोबारी जोखिम : किसी कंपनी के कारोबार की प्रकृति में ही निहित जोखिम।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

परिवर्तनीय ऋण पत्र : वे ऋण पत्र जो संबंधित कंपनी द्वारा, ऋण पत्र धारक की सहमति से, अंशतः या पूरी तरह अंश धारकों में बदले जा सकते हैं, परिवर्तनीय ऋण पत्र कहलाते हैं।

रातभगोड़े कारोबारी : कंपनियों के वे प्रोमोटर जो किसी भी तरह जल्द-से-जल्द अमीर बनना चाहते हैं, रातभगोड़े कारोबारी (फ्लाई-बाई-नाइट आपरेटर्स) कहलाते हैं।

वित्तीय जोखिम : वह जोखिम जो किसी कारोबार की वित्त-व्यवस्था के ढर्रे से ही जुड़ा होता है, जैसे ऋण का भाग अधिक होना।

विभाजित साख मान : जब दो साख मान संगठन एक ही प्रतिभूति को अलग-अलग साख मान देते हैं तो उसे विभाजित साख मान (स्प्लिट रेटिंग) कहते हैं।

साख का जोखिम : किसी ऋण पत्र के निर्गमकर्ता द्वारा गैर-अदायगी के कारण उस ऋण पत्र से जुड़ा जोखिम।

साख पत्र : यह वह पत्र होता है जो खरीदार का बैंकर विक्रेता के पक्ष में जारी करता है। इसमें यह आश्वासन दिया जाता है कि खरीदार पर विक्रेता के दावों को, अगर खरीदार अदायगी न करे तो, बैंकर पूरा करेगा।

13.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कृष्णामूर्ति, सुरेश (1998) : *रेटिंग एजेंसीज़ : शूटिंग देमसेल्व्ज़ इन द फुट*, बिजनेस लाइन, 28 जून 1998.

क्लार्क, जे (1976) : *सम रिसेंट ट्रेंड्स इन म्यूनिसिपल एंड कारपोरेट सिक्योरिटीज़। मार्केट्स* : ऐन इंटरव्यू विद ब्रेंटन डब्ल्यू हैरिस, प्रेसिडेंट ऑफ स्टैंडर्ड एंड पुअर्स कारपोरेशन, फिनांशियल मैनेजमेंट (1976 में)।

खान, एम वाई (2000) : *फिनांशियल सर्विसेज*, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

जेफ़ी, डी (1975) : *साइक्लिकल वेरिएशंस इन द रिस्क स्ट्रक्चर ऑफ़ इंटरनेट रेट्स*, जर्नल ऑफ़ मानीटरी इकानमिक्स, जुलाई 1975।

फ्रांसिस, जे सी (1993) : *मैनेजमेंट ऑफ इनवेस्टमेंट्स*, तीसरा संस्करण, मैकग्रा-हिल्स, नई दिल्ली।

भारतीय रिजर्व बैंक : *रिपोर्ट ऑन करेंसी एंड फ़िनांस* 1996-97, मुबंई।

शेरवुड, एच (1976) : *हाउ कारपोरेट एंड म्यूनिसिपल डेट इज़ रेटेड : ऐन इनसाइड लुक ऐट स्टैंडर्ड एंड पुअर्स रेटिंग सिस्टम*, वाइली, न्यूयार्क।

13.14 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) साख मान का अर्थ किसी निर्गम को गुणवत्ता का एक मान देकर ऋण पत्रों का मूल्यांकन करना है। साख मान केवल चूक में जोखिम के विश्लेषण पर आधारित मत होते हैं। साख मान जोखिम और प्रतिफल सबंधी विशेष वरीयताओं के आधार पर निर्णय लेने में सहायक होते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) प्रमुख निर्धारक हैं:

   अ) निर्गम पर प्रतिभूति के मालिक के दावे के अनुसार भुगतान की क्षमता,

   ब) उद्योग का आर्थिक महत्व तथा निर्गमकर्ता का बाजार स्थल।

3) उद्योग की क्षमता, बाजार में उसका भाग, वितरण प्रणाली और विपणन तंत्र।

बोध प्रश्न 2

1) ए ए ए साख मान समय पर ब्याज और मूलधन की अदायगी की श्रेष्ठतम सुरक्षा का प्रतीक है। ए ए समय पर ब्याज और मूलधन की अदायगी की भारी तथा ए पर्याप्त सुरक्षा का संकेत है।

2) अ) सीमा

   ब) लाभ

   स) सीमा

3) अ) गलत
   ब) गलत
   स) गलत

परिशिष्ट

साख मान के प्रतीक और उनका स्पष्टीकरण

केयर के साख मान के प्रतीक

प्रतीक	(अ) दीर्घकालिक व मध्यकालिक साधन (स्थिर जमाराशियाँ, जमाराशि प्रमाणपत्र, ढाँचाबंद दायित्व, संचयी परिवर्तनीय वरीयता शेयर)
ए ए ए	इस साख मानवाले ऋण पत्रों को सबसे उत्तम माना जाता है और इनमें निवेश पर जोखिम नगण्य होता है। ऋण-सेवा की अदायगियों को अच्छी आरक्षित राशि वाले स्थिर नकदी प्रवाहों की सुरक्षा प्राप्त होती है। वैसे तो निहित मान्यताओं में परिवर्तन आ सकते हैं, पर जिन परिवर्तनों का पूर्वानुमान किया जा सकता है, उनसे इन पत्रों की मज़बूत स्थिति के कमजोर पड़ने की सबसे कम संभावना रहती है।
ए ए	इस साख मान वाले ऋण पत्र सभी मानदंडों पर उत्तम माने जाते हैं। इन्हें उच्च निवेश योग्य श्रेणी में भी रखा जाता है। इन्हें केयर की ए ए ए प्रतिभूतियों से थोड़ी कम सुरक्षा-राशि के कारण कम भारमान दिया जाता है। मान्यताओं में परिवर्तन के अधिक प्रभाव पड़ सकते हैं या दीर्घकालिक जोखिम कुछ अधिक हो सकते हैं। कुल मिलाकर केयर की ए ए ए मान वाली प्रतिभूतियों से इनका अंतर नगण्य ही होता है।
ए	इस साख मान वाले ऋण पत्रों को उच्च-मध्यम श्रेणी के साधन माना जाता है तथा इनमें अनेक निवेश संबंधी अनुकूल विशेषताएँ होती हैं। मूलधन व ब्याज को पर्याप्त सुरक्षित माना जाता है। इससे अधिक साख मान वाले साधनों की अपेक्षा इन पर न साकार होन वाली मान्यताओं का अधिक प्रभाव संभव है।
बी बी बी	ऐसे साधनों को निवेश योग्य की श्रेणी में रखा जाता है। यह साख मान तय किए जाने के समय ब्याज व मूलधन की समुचित सुरक्षा का प्रतीक है। लेकिन मान्यताओं में प्रतिकूल परिवर्तन अधिक साख मान वाले साधनों की अपेक्षा इनकी ऋण-सेवा की क्षमता में अधिक कमी ला सकते हैं।
बी बी	ऐसे साधनों को सट्टा माना जाता है तथा इनमें ब्याज व मूलधन की अदायगी की सुरक्षा अपर्याप्त होती है।
बी	इस साख मान वाले साधनों को सामान्यतः चूक की संभावना वाली श्रेणी में रखा जाता है। संभव है ब्याज व मूलधन की अदायगी हो रही हो, पर कारोबार की दशाओं में प्रतिकूल परिवर्तनों के कारण अदायगी में चूक संभव है।
सी	ऐसे साधनों में निवेश भारी जोखिम से भरा होता है। ब्याज और मूलधन की अदायगी में चूक की संभावना रहती है।
डी	ऐसे साधन निम्नतम श्रेणी में आते हैं। उनमें या तो अदायगी में चूक हो रही होती है या जल्द होने की संभावना रहती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रतीक	(ब) अल्पकालिक साधन
पी आर-1	अल्पकालिक वचनबद्ध दायित्वों (प्रामिसरी अब्लिगेशंस) की अदायगी के बारे में इन साधनों में उत्कृष्ट क्षमता होती है। ऐसे साधनों के निर्गमकर्ताओं की सामान्यतः ये विशेषताएँ होती हैं : बाजार में सुस्थापित उद्योग की अग्रणी स्थिति, लगाई गई राशियों पर प्रतिफल की भारी दर आदि।
पी आर-2	अल्पकालिक वचनबद्ध दायित्वों की अदायगी के बारे में इन साधनों में भारी क्षमता होती है। इनके निर्गमकर्ताओं में पी आर-1 साधनों जैसी ही विशेषताएँ होती हैं, पर कुछ कम सीमा तक।
पी आर-3	अल्पकालिक वचनबद्ध दायित्वों की अदायगी के बारे में इन साधनों में पर्याप्त क्षमता होती है। उद्योग की विशेषताओं और बाजार की संरचना के प्रभाव अधिक सुस्पष्ट हो सकते हैं। आय और लाभदायकता संबंधी परिवर्तनशील ऋण की सुरक्षा के स्तर में परिवर्तन ला सकती है।
पी आर-4	इन साधनों में अल्पकालिक वचनबद्ध दायित्वों की अदायगी के बारे में न्यूनतम सुरक्षा होती है तथा ये अल्पकालिक विपरीत परिथितियों से शीघ्र प्रभावित होते हैं।
पी आर-5	इस साधन में या तो चूक हो रही है या परिपक्वता के समय चूक की संभावना है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रतीक	(स) साख विश्लेषण मान
केयर-1	ऋण-प्रबंध की उत्कृष्ट क्षमता। ऐसी कंपनियों को सामान्यतः संबद्ध उद्योगों में अग्रणी कहा जाता है।
केयर-2	ऋण प्रबंध की बहुत अधिक क्षमता। ऐसी कंपनियों को सामान्यतः केयर-1 साख मान वाली कंपनियों के करीब माना जाता है, पर उनमें मान्यताओं में परिवर्तन झेलने की क्षमता कुछ कम होती है।
केयर-3	ऋण प्रबंध की अधिक क्षमता। ऐसी कंपनियों को मध्यम श्रेणी में रखा जाता है। साकार न होने वाली मान्यताएँ भविष्य में इनकी ऋण-प्रबंध की क्षमता को कम कर सकती है।
केयर-4	ऋण-प्रबंध की बमुश्किल संतोषजनक क्षमता। अल्पकालिक प्रतिकूल स्थिति या कम अनुकूल दशाओं से दायित्व पूरी करने की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकते हैं।
केयर-5	ऋण-प्रबंध की बुरी क्षमता। ऐसी कंपनियाँ या तो अदायगी में चूक कर रही हैं या ऋण संबंधी दायित्व पूरी करते समय चूक कर सकती हैं।

टिप्पणियाँ :

1) सी सी पी एस : क्यूमुलेटिव कनवर्टिबिल प्रिफ़ेरेंस शेयर्स (संचयी परिवर्तनीय वरीयता शेयर), एफ डी : फ़िक्स्ड डिपाज़िट्स (जमाराशियाँ), सी डी : सटिफिकेट्स ऑफ डिपाजिट (जमाराशि प्रमाण-पत्र), एस ओ : स्ट्रक्चर्ड आब्लिगेशंस (ढाँचा बंद दायित्व), सी पी : कामर्शियल पेपर (वाणिज्य पत्र), आई सी डी : इंटर-कारपोरेट डिपाज़िट्स (अंतःनिगम जमाराशियाँ)

2) एक साधन की विशेषताओं या ऋण-प्रबंध की क्षमता में संभावित तत्वों का एक बड़ा दायरा आ सकता है जबकि साख मानों को प्रतीकों की एक सीमित संख्या से ही व्यक्त किया जाता है। इसलिए केयर साख मान के किसी विशेष प्रतीक के दायरे में आने वाली पूरी श्रेणी के अंदर सापेक्ष स्थिति का संकेत देने के लिए (जहाँ भी आवश्यक हो) दिए गए साख मान के बाद ' ' या '-' चिह्न लगाता है।

प्रतीक	**क्रिसिल में स्थिर जमाराशियों के साख मान के प्रतीक**
एफ ए ए ए (एफ़-ट्रिपिल-ए) अधिकतम सुरक्षा	यह साख मान संकेत है कि समय पर ब्याज और मूलधन की अदायगी के बारे में सुरक्षा की मात्रा बहुत अधिक है।
एफ ए ए (एफ़-डबल-ए) अधिक सुरक्षा	यह साख मान संकेत है कि समय पर ब्याज और मूलधन की अदायगी के बारे में सुरक्षा की मात्रा अधिक है।
एफ ए पर्याप्त सुरक्षा	यह साख मान संकेत है कि समय पर ब्याज और मूलधन की अदायगी के बारे में सुरक्षा की मात्रा संतोषजनक है।
एफ बी अपर्याप्त सुरक्षा	यह साख मान समय पर ब्याज और मूलधन की अदायगी की अपर्याप्त सुरक्षा का प्रतीक है।
एफ़ सी भारी जोखिम	यह साख मान संकेत है कि समय पर ब्याज और मूलधन की अदायगी की सुरक्षा संदिग्ध है।
एफ़ डी (चूक)	यह साख मान संकेत है कि निर्गमकर्ता से या तो अदायगी में चूक हो रही है या परिपक्वता के समय चूक की संभावना है।

प्रतीक	**(स) क्रिसिल में अल्पकालिक साधनों के लिए साख मान**
पी 1 (अधिकतम सुरक्षा)	यह साख मान संकेत है कि साधन के समय पर ब्याज और मूलधन की अदायगी की सुरक्षा बहुत अधिक है।
पी 2 (अधिक सुरक्षा)	यह साख मान साधन में समय पर ब्याज और मूलधन की अदायगी की सुरक्षा का संकेतक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पी 3 (पर्याप्त सुरक्षा)	यह साख मान साधन में समय पर ब्याज और मूलधन की अदायगी की संतोषजनक सुरक्षा का संकेत है।
पी 4 (अपर्याप्त सुरक्षा)	यह साख मान साधन में समय पर ब्याज और मूलधन की अदायगी की न्यूनतम सुरक्षा का संकेत है।
पी 5 (चूक)	यह साख मान संकेत देता है कि निर्गमकर्ता या तो अदायगी में चूक कर रहा है या परिपक्वता पर उससे चूक होने की संभावना है।

इक्रा के साख मान के प्रतीक

प्रतीक	**(अ) दीर्घकालिक ऋण : डिबेंचर, बांड और वरीयता शेयर (अक्षर 'पी' जोड़ा जाना इसका संकेत है कि ऋण पत्र एक नई कंपनी के वास्ते संसाधन जमा करने, एक नई परियोजना के वास्ते धन जुटाने के लिए जारी किया जा रहा है तथा साख मान में परियोजना के सफलातापूर्वक पूरा होने की मान्यता निहित है।)**
एल ए ए ए (अधिकतम सुरक्षा)	मूलतः मजबूत स्थिति का सूचक। जोखिम के तत्व नगण्य हैं। सुरक्षा की मात्रा पर कुछ परिस्थितियाँ प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती हैं, पर जिन परिस्थितियों की कल्पना की जा सकती है, उनसे वचनानुसार और समय पर मूलधन व ब्याज की अदायगी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है।
एल ए ए (अधिक सुरक्षा)	जोखिम के तत्व मामूली हैं और ज़रा से घट-बढ़ सकते हैं। सुरक्षादायी तत्व अधिक हैं। कल्पनीय प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वचनानुसार और समय पर ब्याज और मूलधन की अदायगी की संभावना एल ए ए ए से ज़रा सी ही कम है।
एल ए+ एल ए एल ए- (पर्याप्त सुरक्षा)	जोखिम के तत्व आर्थिक दबाव के कालों में अधिक परिवर्तनीय होते हैं। सुरक्षा के तत्व औसत दर्जे के हैं। कल्पनीय प्रतिकूल परिस्थितियों में कोई भी प्रतिकूल परिवर्तन बुनियादी शक्ति में बदलाव ला सकता है तथा वचनानुसार, समय पर मूलधन और ब्याज की अदायगी को प्रभावित कर सकता है।
एल बी बी बी+ एल बी बी बी एल बी बी बी- (मामूली सुरक्षा)	जोखिम के तत्वों में पर्याप्त परिवर्तनशीलता। सुरक्षा के तत्व औसत से कम हैं। कारोबारी/आर्थिक परिस्थितियों में प्रतिकूल परिवर्तन वचनानुसार, समय पर मूलधन और ब्याज की अदायगी को प्रभावित कर सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @ 7428092240

एल बी+ एल बी एल बी- (जोखिम-संभावित)	जोखिम के तत्व संकेत देते हैं कि समय आने पर दायित्व हो सकता है, पूरे न हों। सुरक्षा के तत्व कम होते हैं। कारोबारी/आर्थिक दशाओं में प्रतिकूल परिवर्तन वचन के अनुसार, समय पर ऋण-सेवा में असमर्थता/अनिच्छा को जन्म दे सकते हैं।
एल सी+, एल सी, एल सी- (भारी जोखिम)	जोखिम के तत्व निहित हैं तथा ऋण/दायित्व की समय पर सेवा केवल अनुकूल परिस्थितियों के जारी रहने पर संभव है।
एल डी (चूक)	अत्यंत सट्टाबाजी। शर्तों के अनुसार ब्याज या मूलधन या दोनों की अदायगी में या तो चूक हो रही है या होने की संभावना है। निवेश की वापसी कंपनी की समाप्ति या उसके पुनर्गठन पर ही संभव है।

प्रतीक	**(ब) स्थिर जमाराशि के कार्यक्रमों समेत मध्यकालिक ऋण पत्र**
एम ए ए ए (अधिकतम सुरक्षा	शर्तों के अनुसार समाज और मूलधन की समय पर अदायगी की सबसे अधिक संभावना।
एम ए ए+, एम ए ए, एम ए ए- (अधिक सुरक्षा)	शर्तों के अनुसार ब्याज और मूलधन की समय पर अदायगी की अधिक संभावना है पर एम ए ए ए साख मान जितनी नहीं है।
एम ए+, एम ए, एम ए- (पर्याप्त सुरक्षा)	समय ब्याज और मूलधन की अदायगी की पर्याप्त संभावना है। लेकिन कारोबारी/आर्थिक दशाओं में प्रतिकूल परिवर्तनों से ऋण-सेवा प्रभावित हो सकती है।
एम बी+, एम बी, एम बी- (अपर्याप्त सुरक्षा)	समय पर ब्याज और मूलधन की अदायगी के भावी अनिश्चितताओं से प्रभावित होने की संभावना अधिक है।
एम सी+, एम सी, एम सी- (जोखिम संभावित)	चूक की संभावना अधिक है। कारोबारी/आर्थिक दशाओं में प्रतिकूल परिवर्तन समय पर और शर्तों के अनुसार ऋण-सेवा में असमर्थता/ अनिच्छा को जन्म दे सकते हैं।
एम डी (चूक)	या तो चूक हो रही है या इसकी संभावना है।
A1+, A1 (अधिकतम सुरक्षा	ऋण/दायित्व की समय पर सेवा की संभावना सबसे अधिक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

A2+, A2 (अधिक सुरक्षा)	A1 साख मान की अपेक्षा इसमें सुरक्षा ज़रा सी कम है।
A3+, A3 (पर्याप्त सुरक्षा)	समय पर ब्याज और क़िस्त की अदायगी की पर्याप्त संभावना है लेकिन कारोबारी/ आर्थिक दशाओं में कोई भी प्रतिकूल परिवर्तन बुनियादी शक्ति को प्रभावित कर सकता है।
A4+, A4 (जोखिम संभावित)	सुरक्षा की मात्रा कम है। कारोबारी/आर्थिक दशाओं में प्रतिकूल परिवर्तन आने पर अदायगी में चूक की संभावना है।
ए5 (चूक)	या तो चूक हो रही है या इसकी संभावना है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 14 भारत तथा विश्व वित्त व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएँ
  14.2.1 अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई एम एफ)
  14.2.2 विश्व बैंक (आई बी आर डी)
  14.2.3 अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम (आई एफ सी)
  14.2.4 अंतर्राष्ट्रीय विकास संगठन (आई डी ए)
  14.2.5 एशियाई विकास बैंक (ए डी बी)
14.3 यूरोपीय मुद्रा प्रणाली
14.4 यूरो बाज़ार
14.5 भारत और विदेशी मुद्रा-वित्त
  14.5.1 विदेशी व्यापारिक ऋण
  14.5.2 यूरो निर्गम - जी डी आर एस
  14.5.3 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश
  14.5.4 पत्राधार निवेश
  14.5.5 अनिवासी भारतीयों की जमा राशियाँ
14.6 सारांश
14.7 शब्दावली
14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के आद आपः

- अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय निगम तथा अंतर्राष्ट्रीय विकास निगम जैसी अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के उद्देश्यों, सांगठनिक ढाँचों, प्रकार्यों और उनकी वित्तीय योजनाओं के आधार पर उनके कार्यकलापों का संक्षेप में वर्णन कर सकेंगे,
- यूरो बाजार और इसके खंडों को स्पष्ट कर सकेंगे,
- भारतीय कंपनियों के लिए विदेशी मुद्रा में दीर्घकालिक/मध्यकालिक वित्त के स्रोत बता सकेंगे, और
- यूरोपीय मुद्रा प्रणाली का वर्णन कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

वैश्वीकरण (ग्लोबलाइज़ेशन) के इस दौर में कोई देश अलग-थलग नहीं रह सकता। यही बात किसी देश की वित्त व्यवस्था को लेकर है। भारत जैसे विकासशील देश में वित्त के विदेशी स्रोतों से विदेशी निवेश की तो और भी अधिक आवश्यकता है। हमारे पास इसे पाने के अनेक स्रोत हैं। अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएँ हैं जो सुपात्र मामलों में विशेष उद्देश्यों के लिए ऋण देती हैं। फिर अंशपूँजी और ऋण, दोनों ही रूपों में भारतीय कंपनियों के पास विदेशी मुद्रा संसाधन जुटाने के बहुत से रास्ते हैं। हाल के वर्षों में इन स्रोतों से भारत में धन का प्रवाह बढ़ा है। इस इकाई में हम भारत के लिए उपलब्ध वित्त के इन बाह्य स्रोतों का अध्ययन करेंगे।

14.2 अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएँ

14.2.1 अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (इंटरनेशनल मोनेटरी फंड— आई. एम. एफ)

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का जन्म जुलाई 1944 के ब्रेटनबुड्स सम्मेलन में हुआ। तब 94 देश इसके सदस्य थे। आज क्यूबा को छोड़ अधिकांश देश इसके सदस्य हैं। आई एम एफ अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा व्यवस्था की केंद्रीय संस्था है। भुगतान-संतुलन ठीक करने में सदस्य देशों को सहायता देना इसका प्रमुख उद्देश्य है। भुगतान संतुलन में सुधार समष्टिगत (मैक्रो) आर्थिक नीतियों में परिवर्तन करके लाया जाता है। मुद्रा कोष, मुद्रा, सीमा शुल्क और विनिमय दर की नीतियों के क्षेत्रों में अध्ययन कराता है और परिवर्तनों की सिफ़ारिश करता है। गत वर्षों में कोष ने तीसरी दुनिया की ऋण समस्या को हल करने के अधिक दीर्घकालिक प्रयासों में सक्रिय भूमिका निभाई है।

DIKSHANT IAS
call us @7428092240

उद्देश्य : कोष के अनुबंध की धाराओं के अनुसार मुद्रा कोष के उद्देश्य इस प्रकार हैं:

अ) एक ऐसी स्थायी संस्था द्वारा अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को बढ़ावा देना जो अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक समस्याओं पर परामर्श और सहयोग का एक तंत्र प्रदान करे।

ब) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रसार और संतुलित संवृद्धि को बढ़ावा देना तथा आर्थिक नीति के प्रमुख उद्देश्यों के रूप में सभी सदस्य देशों में रोज़गार और वास्तविक आय के ऊँचे स्तर पाने और बनाए रखने में उत्पादक शक्तियों का विकास करने में योगदान देना।

स) सदस्यों के बीच सुव्यवस्थित विनिमय के बंदोबस्त बनाए रखने तथा विनिमय में प्रतियोगिता के कारण ह्रास से बचने के उद्देश्य से विनिमय संबंधी स्थायित्व को बढ़ावा देना।

द) सदस्यों के बीच चालू लेन-देन के लिए भुगतान की अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना में तथा विश्व-व्यापार की संवृद्धि में बाधक विदेशी मुद्रा संबंधी बाधाओं को समाप्त करना।

य) सदस्यों को कोष के सामान्य संसाधन अस्थायी रूप से उपलब्ध कराके उनके बीच आपसी विश्वास पैदा करना। इससे उन्हें राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय समृद्धि को ठेस पहुँचाने वाले उपायों का सहारा लिए बिना अपने भुगतान संतुलन संबंधी गड़बड़ियों को ठीक करने का अवसर मिलता है।

र) उपरोक्त उद्देश्यों के अनुरूप सदस्य देशों के भुगतान-संतुलन में प्रतिकूलता की अवधि को कम करना तथा इस असंतुलन के परिमाण को कम करना।

इस तरह अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा व्यवस्था के समुचित संचालन पर निगरानी रखने के अलावा कोष सदस्य देशों को भुगतान संतुलन संबंधी अस्थायी संकट का सामना करने में सहायता भी देता है।

सांगठनिक ढाँचा : आई एम एफ़ एक स्वायत्त संगठन है जिसके 181 सदस्य देश हैं। उसका सर्वोच्च नीति निर्माता प्रशासक मंडल है जिसमें हर सदस्य देश का एक प्रतिनिधि गवर्नर होता है तथा साथ में एक वैकल्पिक गवर्नर भी होता है। प्रशासन का दायित्व कार्यकारी निर्देशकों के बोर्ड के ऊपर है।

विनिमय दरें : जैसा कि कहा गया, आई एम एफ़ का एक उद्देश्य विनिमय दरों में स्थायित्व को प्रोत्साहन देना है। इसके लिए प्रत्येक सदस्य देश से आरंभ में आशा की गई कि वह सोने या अमरिकी डालर के सापेक्ष अपनी मुद्रा का सममूल्य (पार वैल्यू) घोषित करेगा और उस घोषित सममूल्य को एक प्रतिशत के अंदर उतार-चढ़ाव तक सीमित रखने का आश्वासन देगा। सममूल्य में परिवर्तन सिर्फ़ कोष की पूर्वानुमति से संभव था। ऐसे परिवर्तन की अनुमति तभी दी जाती थी जब सदस्य देश भुगतान के बुनियादी असंतुलन से ग्रस्त हो। इस व्यवस्था को 'समायोजनीय कील व्यवस्था' (एडजस्टिबुल पेग सिस्टम) कहा गया क्योंकि इसमें विनिमय दरों के समायोजन का प्रावधान था।

DIKSHANT IAS
Call Us @7428092240

उपरोक्त व्यवस्था पिछली सदी के सत्तरवें दशक तक जारी रही। अमरीकी डालर के अवमूल्यनों की एक श्रंखला के बाद ब्रेटन वुड्स सिस्टम नामक यह व्यवस्था मार्च 1973 में धराशायी हो गई और 14 प्रमुख राष्ट्रों ने अपनी मुद्राओं को परिवर्तनीय बनाने का निश्चय किया। इस समय कोष के लगभग एक तिहाई सदस्य देशों की मुद्रा परिवर्तनीय है। कुछ ने अपनी मुद्रा का अमरीकी डालर, कुछ ने फ्रांसीसी फ्रांक और कुछ ने एस डी आर के साथ सममूल्य स्थापित कर रखा है।

संसाधन : अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की पूँजी का मुख्य स्रोत उसके सदस्य देशों द्वारा दिया गया योगदान (Contribution) है। हर सदस्य देश के चन्दा (योगदान) को कोटा कहते हैं जो उस देश की राष्ट्रीय आय, विदेशी मुद्रा भंडार, निर्यात की परिवर्तनीयता और राष्ट्रीय आय से उसके निर्यातों के अनुपात आदि अनेक तलों पर आधारित होता है। आंरभ में सदस्य देशों से अपेक्षा की गई थी कि वे अपने कोटे का 25 प्रतिशत सोने या अमरीकी डालरों के रूप में और बाकी अपनी खुद की मुद्रा में दें। लेकिन इस समय सोने की जगह एस डी आर या अन्य विदेशी मुद्राओं में योगदान दिए जा सकते हैं। समय-समय पर इन कोटों की समीक्षा की जाती है और इनके बीच का अंतराल 5 वर्षों से अधिक का नहीं होता। 1994 में कोष की पूँजी 144.6 अरब एस डी आर थी।

सदस्य देशों से कोटा के रूप में अनुदान पाने के अलावा मुद्रा कोष को 'सामान्य ऋण व्यवस्था' (जनरल अरेंजमेंट टू बारो) के अंतर्गत भी ऋण लेने का अधिकार है। इस व्यवस्था में दस औद्योगिक देश अपनी-अपनी मुद्राओं में एक सहमत सीमा तक कोष को ऋण देने को तैयार होते हैं। मुद्रा कोष इस व्यवस्था में मूलतः तभी ऋण ले सकता था जब भागीदार देशों को धन की आवश्यकता होती थी। पर आज दूसरे देशों के आहरण की व्यवस्था के लिए भी कोष इन निधियों का प्रयोग कर सकता है; बशर्ते ऋण लेने वाले देश, कोष द्वारा अनुमोदित आर्थिक समायोजन कार्यक्रम लागू करने पर सहमत हों।

विशेष आहरण अधिकार (एस डी आर)

ब्रेटनवुड्स में क़ायम मौद्रिक व्यवस्था ने विश्व-व्यापार के तीव्र प्रसार में एक सकारात्मक भूमिका निभाई। मगर इसके प्रमुख दोषों में एक दोष यह था कि प्रसार मान व्यापार को सहारा देने के लिए आवश्यक अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा भंडार की आपूर्ति बढ़ाने का इसमें कोई प्रावधान नहीं था। इससे अंततः राष्ट्रीय मुद्राओं के भंडार बढ़े, खासकर अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा के रूप में अमरीकी डालर की स्थिति मज़बूत हुई। अमरीकी डालर नई मुद्रा व्यवस्था की आरक्षित परिसंपत्ति बन गए। लेकिन विश्व-व्यापार के प्रसार के साथ अंतर्राष्ट्रीय तरलता की आवश्यकता भी बढ़ी। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा की यह आवश्कयता पूरी करने के लिए इस व्यवस्था में डालरों की आपूर्ति के लिए अमरीका के भुगतान-संतुलन में घाटे का जारी रहना आवश्यक था। सन साठ के दशक के अंतिम वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय तरलता की यह कमी अपने चरम पर पहुँच गयी। 1969 में विशेष आहरण अधिकार (स्पेशल ड्राइंग राइट्स SDRs) नाम से एक नई अंतर्राष्ट्रीय आरक्षित परिसंपत्ति जारी करके मुद्रा कोष ने इस समस्या का सामना किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एस डी आर मूलतः डालरों की एक निश्चित संख्या के बराबर था। आज यह अमरीकी डालर, जर्मन मार्क, जापान के येन, फ्रांस के फ्रांक और ब्रिटेन के पाउंड स्टर्लिंग जैसी विभिन्न मुद्राओं की 'टोकरी' है। 1969 में सदस्य देशों को ये एस डी आर वैसे ही आवंटित किए गए जैसे एक कंपनी के शेयर धारकों को बोनस शेयर जारी किए जाते हैं।

वित्त व्यवस्था की योजनाएँ : भुगतान संतुलन में घाटा झेल रहे सदस्य देशों को वित्तीय सहायता देना मुद्रा कोष के उद्देश्यों में एक है। आई एम एफ से निकासी (आहरण, ड्राइंग) इस वित्त-व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण उपाय है। इस योजना में जब भी सदस्य एक देश को अपने भुगतान-संतुलन संबंधी अल्पकालिक घाटे पर काबू पाने के लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होती है, वह मुद्रा कोष से अपनी मुद्रा देकर आवश्यक विदेशी मुद्रा ले लेता है। इसे कोष से 'आहरण' कहते हैं। आहरणकर्ता देश की भुगतान संतुलन की स्थिति जब सुधर जाती है तो वह अपनी मुद्रा की 'पुनर्खरीद' कर विदेशी मुद्रा लौटा देता है। सामान्यतः एक देश 12 माह की अवधि में अपने कोटा के 25 प्रतिशत से अधिक नहीं निकाल सकता। एक सदस्य का समग्र आहरण उस स्तर तक पहुँच सकता है जहाँ आई एम एफ में उस देश की मुद्रा का भंडार उसके कोटा का 200 प्रतिशत हो जाए। उदाहरण के लिए मान लें कि देश 'अ' का कोटा 100 एस डी आर है जिसमें वह 75 प्रतिशत अपनी ही मुद्रा में देता है, अर्थात् देश 'अ' ने अपनी मुद्रा में 75 एस डी आर के बराबर योगदान दिया है। देश 'अ' अधिकतम 125 एस डी आर का ऋण ले सकता है जिससे उसकी कुल मुद्रा 200 एस डी आर हो जाती है जो उसके कोटे का 200 प्रतिशत है। लेकिन विशेष दशाओं में यह शर्त समाप्त भी की जा सकती है।

एक सदस्य देश द्वारा कोष से आहरण की प्रक्रिया चरणों या किस्तों (ट्रैंचेज़) में विभाजित होती है। जिस आहरण के बाद कोष में संबद्ध देश का भंडार उसके कोटा का 100 प्रतिशत हो जाए, 'आरक्षित किस्त' कहलाता है। इस आरक्षित किस्त से आगे कोई भी निकासी चार बराबर किस्तों में विभाजित की जाती है जिन्हें 'ऋण की किस्तें' कहते हैं। कोई देश अपनी आरक्षित किस्त से मुक्त-भाव से निकासी कर सकता है, पर ऋण की किस्तों से निकासी आई एम एफ द्वारा अधिकाधिक छानबीन के बाद ही संभव है।

मुद्रा कोष की वित्तीय सहायता की कुछ और योजनाएँ भी हैं। कुछेक योजनाएँ इस प्रकार हैं :

अ) **कामचलाऊ (स्टैंडबाई) व्यवस्थाएँ :** इस व्यवस्था में एक सदस्य को एक निश्चित सीमा तक और निश्चित कालखंड में मुद्रा कोष से आहरण की अनुमति है। यह सुविधा कोष और सदस्य देश के बीच आपसी वार्ता से मिलती है। यह व्यापारिक बैंकों द्वारा दी जाने वाली ओवर ड्राफ्ट की सुविधा जैसी है।

ब) **ढाँचागत समायोजन सुविधा :** इस योजना का उद्देश्य लंबे समय से भुगतान संतुलन की समस्या झेल रहे सदस्य देशों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है। इसमें उनका मध्यकालिक समष्टिगत आर्थिक ढाँचागत समायोजित किया जाता है जिनका उद्देश्य संवृद्धि को बढ़ावा देना तथा भुगतान-संतुलन की स्थिति को मज़बूत बनाना होता है। ये ऋण सदस्य देश के कोटे के अनुपात में होते हैं। सामान्यतः ये ऋण तीन वर्ष की अवधि में वितरित किए जाते हैं और इस बीच ऋण लेने वाले देश को ढाँचागत समायोजन (स्ट्रक्चरल एडजस्टमैंट) सुनिश्चित करने के लिए तीन वर्षीय व्यापक रणनीति तैयार करनी होती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स) **परिवर्धित (एनहांस्ड) ढाँचागत समायोजन सुविधा :** यह योजना ढाँचागत समायोजन सुविधा से मिलती-जुलती है पर विशेष रूप से निर्धनतम सदस्य देशों के लिए है जो एक ज़ोरदार तीन वर्षीय समष्टिगत आर्थिक और ढाँचागत कार्यक्रम चला रहे हैं।

द) **विस्तरित निधि सुविधा :** विस्तारित निधि (एक्सटेंडेड फंड) की सुविधा का उद्देश्य सामान्य आहरण कार्यक्रम के अंतर्गत उपलब्ध धन से अधिक मात्रा में और अधिक लंबे समय से भुगतान संतुलन के घाटे झेल रहे सदस्य देशों की सहायता करना है। यह सुविधा उत्पादन, व्यापार और मूल्यों में ढाँचागत असंतुलन के कारण भुगतान संतुलन की गंभीर समस्याएँ झेल रहे देशों के लिए है।

14.2.2 अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (आई बी आर डी)

अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (इंटरनेशनल बैंक फ़ार रिकंस्ट्रक्शन एंड डवलपमेंट बैंक), जिसे विश्व बैंक नाम से भी जाना जाता है, की स्थापना भी 1944 के ब्रेटन वुड्स सम्मेलन में की गई। सदस्य देशों के पुनर्निर्माण और विकास के लिए उन्हें दीर्घकालिक सहायता देना विश्व बैंक का प्रमुख कार्य है। आरंभ में विश्व बैंक के प्रयास यूरोप की युद्ध से त्रस्त अर्थव्यवस्थाओं पर केंद्रित थे पर बाद में पिछड़े देशों का विकास इनका महत्वपूर्ण मुद्दा हो गया।

विश्व बैंक के कार्य : विश्व बैंक के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं:

अ) उत्पादक कार्यों के लिए पूँजी के निवेश को बढ़ावा देकर सदस्य देशों के पुनर्निर्माण और विकास में सहायता देना।

ब) उत्पादक कार्यों के लिए ऋणों की गारंटी द्वारा या दूसरे पूँजी निवेशों की ज़मानत देकर विदेशी निजी निवेश को बढ़ावा देना।

स) जहाँ मुनासिब शर्तों पर निजी पूँजी उपलब्ध हो, वहाँ अपने संसाधनों में से या ऋण लिए गए धन में से उत्पादक कार्यों के लिए धन देना।

द) सदस्य देशों के उत्पादक संसाधनों के विकास के लिए अंतर्राष्ट्रीय निवेश को प्रोत्साहन देकर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की दीर्घकालिक संवृद्धि तथा सदस्यों के भुगतान संतुलन की क्षमता को बढ़ावा देना।

इस तरह विश्व बैंक उन उत्पादक परियोजनाओं के लिए धन देता है जो उसके सदस्य देशों को आर्थिक विकास की ओर ले जाएँ।

संगठनात्मक ढाँचा : विश्व बैंक के प्रबंध में प्रशासक मंडल, कार्यकारी निर्देशक मण्डल और एक अध्यक्ष शामिल होते हैं। 22 कार्यकारी निदेशकों में पाँच निदेशक सबसे बड़े शेयर धारकों - अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी, जापान और फ्रांस द्वारा नामित किए जाते हैं। अध्यक्ष कार्यकारी निदेशकों के बोर्ड का प्रमुख होता है। गवर्नरों और कार्यकारी निर्देशकों के मतदान के अधिकार वे जिन सदस्य देशों का प्रतिनिधित्व करते हैं, उनकी शेयर पूँजी के अनुपात में होता है। इसीलिए विश्व बैंक की नीतियाँ बड़े शेयर धारक देशों से प्रभावित होती रहती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संसाधन : विश्व बैंक के संसाधनों में अंतर्राष्ट्रीय पूँजी बाज़ारों से प्राप्त ऋणों के अलावा सदस्य देशों के पूँजीगत योगदान शामिल हैं। आरंभ में विश्व बैंक की पूँजी 1000 करोड़ अमरीकी डालर थी जिसमें सोना या अमरीकी डालर (2 प्रतिशत) तथा सदस्यों की अपनी मुद्राएँ (18 प्रतिशत) शामिल थीं। शेष 80 प्रतिशत को आरक्षित रखा गया था जिसका योगदान आवश्यकतानुसार किया जाता था। इस प्रकार पूँजी में हर सदस्य देश का केवल 20 प्रतिशत योगदान ही ऋण देने के उद्देश्य से बैंक को उपलब्ध था जबकि शेष 80 प्रतिशत अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों से बैंक द्वारा ऋण लिए जाने पर ज़मानत का काम करता था। समय-समय पर इस पूँजी में वृद्धि की जाती रही और आज यह 170 अरब डालर है।

वित्तीय योजनाएँ : विश्व बैंक अधिकतर प्रत्यक्ष ऋणों या ज़मानतों के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करता है। सहायता कृषि और ग्रामीण विकास, ऊर्जा, उद्योग और यातायात की परियोजनाओं जैसे उत्पादक कार्यों के लिए दी जाती है। विश्व बैंक 10 से 35 वर्ष में वापसी भुगतान की अवधि वाले ऋण देता है। ये ऋण सदस्य देशों की सरकारों को दिए जाते हैं या उन सरकारों से ज़मानत पर प्राप्त होते हैं। बैंक ब्याज की जो दर वसूल करता है, वह बाज़ार से समतुल्य अवधि के लिए बैंक अगर ऋण ले तो उसकी अनुमानित लागत के बराबर होती है। इसके अलावा, हानि से सुरक्षा के लिए एक विशेष भंडार बनाने के लिए बैंक एक प्रतिशत तथा प्रशासनिक खर्चों के लिए 0.5 प्रतिशत की दर से कमीशन भी वसूल करता है।

ऋण देने के अलावा बैंक सदस्य देश की विकास-क्षमता के एक भरे-पूरे आर्थिक सर्वेक्षण में तकनीकी सहायता भी देता है तथा सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए तकनीकी सलाह प्रदान करता है। भारत विश्व बैंक से सबसे अधिक ऋण लेने वाला देश रहा है।

14.2.3 अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम (आई एफ़ सी - इंटरनेशनल फ़िनांस कारपोरेशन)

यह निगम विश्व बैंक से संबद्ध एक संगठन है। केवल विश्व बैंक के सदस्य ही इसके सदस्य हो सकते हैं। विश्व बैंक केंवल ऋण ही देता है। किसी परियोजना की अंश पूँजी में भागीदारी की उसे अनुमति नहीं है। इसी कारण निजी उद्यमों को भी अंश पूँजी निधि प्रदान करने के लिए 1956 में इस निगम की स्थापना की गई।

कार्य : यह निगम सदस्य देशों में निजी क्षेत्र को बढ़ावा देता है। इसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं:

अ) जहाँ उचित शर्तों पर पर्याप्त निजी पूँजी उपलब्ध न हो, वहाँ निजी निवेशकों के सहयोग से और सरकारी ज़मानत के बिना सदस्य देशों के निजी क्षेत्र में निवेश करना,

ब) विदेशी व घरेलू, दोनों प्रकार के निवेश के अवसर तथा अनुभवी प्रबंध-क्षमता प्रदान करना,

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स) सदस्य देशों में उत्पादक निवेश के लिए घरेलू और विदेशी, दोनों प्रकार की निजी पूँजी के प्रवाह में सहायक दशाओं को बढ़ावा देना।

सांगठनिक ढाँचा : विश्व बैंक का संबद्ध संगठन होने के नाते उसी का बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम का बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स भी होता है। इसके अलावा विश्व बैंक का कार्यकारी निदेशक मण्डल ही इस निगम का प्रबंध मण्डल होता है। यह प्रबंध मण्डल निगम के काम काज के लिए जिम्मेदार होता है। रोज़मर्रा के कामकाज कार्यकारी उपाध्यक्ष की निगरानी में चलाए जाते हैं।

संसाधन : पूँजी में सदस्यों के योगदान और संचित भंडार निगम के संसाधन होते हैं। वह विश्व बैंक से अपनी निवल संपदा (नेटवर्थ) के चार गुना तक ऋण ले सकता है।

वित्तीय योजनाएँ : निगम विकासशील देशों में अनेकानेक प्रकार के निजी उत्पादक उद्यमों को दीर्घकालिक ऋण देता या उनकी अंश पूँजी में निवेश करता है। सहायता प्राप्त परियोजना आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक तथा सदस्य देश की अर्थव्यवस्था के लिए लाभकारी होनी चाहिए। निगम द्वारा न्यूनतम 10 लाख और अधिकतम 10 करोड़ अमरीकी डालर की वित्तीय सहायता दी जाती है। इसके अलावा निगम की वित्तीय सहायता आम तौर पर परियोजना के कुल निवेश के 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होती।

सीधे ऋण देने और अंश पूँजी निवेश के अलावा निगम विकास-सेवाएँ भी प्रदान करता है। जैसे परियोजनाओं की पहचान और प्रोत्साहन, निजी स्वामित्व वाली विकास-वित्त कंपनियों को प्रोत्साहन और उनकी स्थापना, पूँजी बाज़ारों की संवृद्धि को बढ़ावा देना तथा

निजी क्षेत्र के विकास के लिए अनुकूल माहौल बनाने वाले क़दमों के लिए सलाह/ तकनीकी परामर्श देना।

14.2.4 अंतर्राष्ट्रीय विकास संगठन (इंटरनेशनल डवलपमेंट एसोसिएशन, आई डी ए)

अंतर्राष्ट्रीय विकास संगठन विश्व बैंक का एक और संबद्ध संगठन है। इसे विश्व बैंक की 'सस्ते ऋण वाली खिड़की' भी कहा जाता है। यह सदस्य देशों में सामाजिक महत्व वाली, आर्थिक रूप से ठोस परियोजनाओं के लिए 'सस्ते ऋण' देता है। संगठन से सहायता प्राप्त परियोजनाओं में सड़कों, पुलों, झुग्गीवालों के लिए बस्तियों का निर्माण आदि परियोजनाएँ शामिल होती हैं। संबद्ध क्षेत्र के विकास पर अपने लाभकारी प्रभाव के कारण ऐसी परियोजनाएँ 'विकास की उच्च प्राथमिकता' की श्रेणी में आती हैं, पर इन परियोजनाओं के प्रतिफल इतने अधिक नहीं होते कि ऋण पर ब्याज की भारी रकमें अदा हो सकें। यह संगठन ऐसी परियोजनाओं के लिए ब्याज मुक्त ऋण देता है। इन ऋणों की परिपक्वता की अवधियाँ भी लंबी होती हैं।

कार्य और वित्तीय सहायता : अंतर्राष्ट्रीय विकास संगठन सदस्य देशों में भारी प्राथमिकता वाली परियोजनाओं को वित्तीय सहायता देता है। यह वित्त सदस्य सरकारों या निजी उद्यमों को उपलब्ध कराया जाता है। निजी उद्यमों को अग्रिम राशियाँ सरकारी ज़मानत के बिना भी दी जा सकती हैं। संगठन कम विकसित देशों को वित्तीय और तकनीकी सहायता देने के लिए दूसरी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं और सदस्य देशों से सहयोग भी करता है। संगठन की वित्तीय सहायता की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अ) संगठन की वित्तीय सहायतायें ब्याज मुक्त होती हैं। संगठन प्रशासनिक ख़र्चे पूरे करने के लिए दी जाने वाली राशि पर 0.75 प्रतिशत की दर से मामूली सेवा शुल्क वसूल करता है।

ब) अदायगी की अवधि प्रायः 50 वर्ष होती है जिस पर आरंभ में 10 वर्ष का स्थगन होता है।

स) संगठन विदेशी मुद्रा का घटक ही नहीं, घरेलू लागत के लिए भी धन देता है।

द) इस सहायता की वापसी ऋण लेने वाले देश की अपनी मुद्रा में भी की जा सकती है।

सांगठनिक ढाँचा : विश्व बैंक के सभी सदस्य देश अंतर्राष्ट्रीय विकास संगठन के सदस्य बनने के अधिकारी हैं। विश्व बैंक के ही बोर्ड ऑफ गवर्नर्स और कार्यकारी निर्देशक अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम की तरह अंतर्राष्ट्रीय विकास संगठन के भी बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स और कार्यकारी निर्देशक होते हैं।

14.2.5 एशियाई विकास बैंक (ए डी बी)

संयुक्त राष्ट्र के एशिया एवं सुदूर पूर्व के लिए आर्थिक आयोग (Economic Commission for Asia and Far East)– "इकैफ़े") के तत्वाधान में एशियाई विकास बैंक का

आरंभ 1966 में हुआ। एशिया क्षेत्र के तथा दूसरे क्षेत्रों के भी देश इसके सदस्य हैं। इस समय इसके 47 सदस्य देश हैं जिनमें 32 एशिया प्रशांत क्षेत्र के हैं तथा 15 यूरोप और उत्तरी अमरीका के हैं।

कार्य : एशियाई विकास बैंक के प्रमुख उद्देश्य और कार्य इस प्रकार हैं :

अ) विकास कार्यों के लिए इकैफ़े क्षेत्र में सार्वजनिक व निजी पूँजी के निवेश को बढ़ावा देना।

ब) विकास-वित्त के लिए उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करना। इसमें उन क्षेत्रीय, उपक्षेत्रीय व राष्ट्रीय परियोजनाओं और कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जाती है जो पूरे क्षेत्र में सामंजस्यपूर्ण आर्थिक संवृद्धि में अत्यंत कारगर योगदान दें तथा जिनमें क्षेत्र के छोटे या कम विकसित सदस्य देशों की आवश्यकता का विशेष ध्यान रखा गया हो।

स) क्षेत्र के सदस्य देशों के ऐसे अनुरोधों को पूरे करना जिन्हें अपने विकास की नीतियों व योजनाओं के समन्वय में सहायता दी जाए ताकि उनके संसाधनों का बेहतर उपयोग हो, उनकी अर्थव्यवस्थाएँ परस्पर पूरक बनें, तथा उनके विदेश व्यापार और ख़ासकर अंतः-क्षेत्रीय (इंट्रा-रीजनल) व्यापार के सुव्यवस्थित प्रसार को बढ़ावा मिले।

द) विशेष प्रस्तावों के निरूपण समेत विकास की योजनाओं व कार्यक्रमों की तैयारी, वित्त-व्यवस्था और कार्यान्वयन में तकनीकी सहायता प्रदान करना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

य) संयुक्त राष्ट्र, उसके अंगों व अधीनस्थ निकायों, खासकर इकैफ़े, के साथ तथा सार्वजनिक अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं तथा, सार्वजनिक या निजी राष्ट्रीय संगठनों के साथ सहयोग करना, तथा निवेश और सहायता के अवसरों पर इन संस्थाओं व संगठनों की दिलचस्पी जगाना।

र) ऐसे अन्य कार्यकलाप करना व ऐसी दूसरी सेवाएँ प्रदान करना जिनसे इसके उद्देश्य पूरे होते हों।

सांगठनिक ढाँचा : बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स एशियाई विकास बैंक का सर्वोच्च नीति-निर्माता निकाय है। इसमें 12 निदेशक होते हैं जिनमें 8 इस क्षेत्र के और 4 क्षेत्रेतर देशों के प्रतिनिधि होते हैं। बैंक का अध्यक्ष बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स द्वारा चुना जाता है और वही उस बोर्ड का प्रमुख भी होता है।

संसाधन और वित्तीय सहायता : अंश पूँजी बैंक का वित्तीय संसाधन है। इसमें पूँजी में योगदान और आरक्षित भंडार शामिल हैं। अंश पूँजी निधियों के अलावा बैंक ऋण लेकर भी धन जुटाता है। उसके पास एक विशेष निधि भी है जो सदस्य देशों के योगदानों तथा पहले प्रदत्त पूँजी (पेड-अप कैपिटल) से अलग करके रखी गई राशियों पर आधारित है।

बैंक सामान्यतः उन सदस्य देशों को अंश पूँजी निधि से ऋण देता है जो आर्थिक विकास का थोड़ा ऊँचा स्तर प्राप्त कर चुके हैं। विशेष निधि से ऋण ब्याज की अत्यंत रिआयती दरों पर सबसे गरीब देशों को दिए जाते हैं।

1) एस डी आर (विशेष आहरण अधिकार) क्या हैं? ये किस तरह सृजित किए जाते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित कथनों में सही (स) या गलत (ग) की पहचान कीजिएः

अ) ए डी बी केवल एशिया क्षेत्र की परियोजनाओं के लिए धन देता है। (सही/गलत)

ब) आई डी ए को 'सस्ते ऋण की खिड़की' भी कहते हैं। (सही/गलत)

स) आई एफ़ सी सरकारी क्षेत्र की परियोजनाओं को वित्तीय सहायता देता है। (सही/गलत)

द) आई एम एफ़ ऋण देने के बारे में पूरी तरह अपनी अंश पूँजी पर निर्भर है। (सही/गलत)

य) आई एम एफ अपने सदस्यों को भुगतान-संतुलन की समस्याओं से निपटने में सहायता देता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम द्वारा दी जाने वाली वित्तीय सहायता के प्रकार बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

14.3 यूरोपीय मुद्रा प्रणाली (ई एम एस)

यूरोप के आर्थिक एकीकरण की ओर पहले कदम के रूप में 1951 में एक संधि पर हस्ताक्षर किए गए जिसके अंतर्गत एक यूरोपियन कोल एंड स्टील कम्युनिटी (ई सी एस सी) का गठन हुआ। 1957 में रोम की संधि के बाद यूरोपीय आर्थिक समुदाय (यूरोपियन इकॉनमिक कम्युनिटी, ई ई सी) अस्तित्व में आया। वस्तुओं, पूँजी और श्रमशक्ति के अबाध आवागमन को प्रोत्साहित करना ई ई सी का प्रमुख उद्देश्य था। जब इसमें और भी देश शामिल हुए तो एक यूरोपीय मुद्रा प्रणाली (यूरोपियन मानीटरी सिस्टम) बनाने का फ़ैसला किया गया। अंत में 1992 की मासट्रिक्ट संधि के बाद ई ई सी का नाम बदलकर

यूरोपियन यूनियन (ई यू, यूरोपीय संघ) कर दिया गया तथा यूरोपीय मौद्रिक संघ (यूरोपियन मानीटरी यूनियन) की स्थापना की ओर ले जाने वाली संस्थाओं के निर्माण का रास्ता तैयार हुआ।

यूरोपीय मुद्रा प्रणाली (EMS) के उद्देश्य : यूरोपीय समुदाय में मौद्रिक स्थिरता लाना और उसे बल पहुँचाना ई एम एस का प्रमुख उद्देश्य है। संवृद्धि, पूर्ण रोज़गार, जीवन स्तर और क्षेत्रीय विषमताओं में कमी के दृष्टिकोणों से यूरोपीय संघ के देशों की सामान्य और आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए प्रयास करना इसके उद्देश्यों में शामिल है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक-मौद्रिक संबंधों में स्थिरता लाना भी इसका उद्देश्य है। ई एम एस का केंद्रीय तत्व विनिमयदर प्रक्रिया (एक्सचेंज रेट मेकैनिज्म) है जो देशों की मुद्राओं को आपस में जोड़ता है। ई एम एस का दीर्घकालिक लक्ष्य ऐसा मौद्रिक एकीकरण है जो यूरोपीय मुद्रा इकाई (ई सी यू, यूरोपियन करेंसी यूनिट) नाम से एक ही मुद्रा को अपनाए। ई एम एस यूरोप के आर्थिक एकीकरण के आयामों में एक है। इस लक्ष्य के लिए अनेक कदम उठाए गए हैं। **पहले चरण** में वे सीमा संबंधी नियंत्रण समाप्त किए गए हैं जो शेष दुनिया से आयातों पर रोक लगाने वाले राष्ट्रीय परिमाणात्मक प्रतिबंध लागू करते थे। इरादा इन प्रतिबंधों को समुदाय व्यापी प्रतिबंधों में बदलना है। आपस में अधिकांश बाधाओं को मान्यता देकर तथा स्वास्थ्य, सुरक्षा व पर्यावरण संबंधी नियमों के रूप में दूसरी बाधाओं को समंजित करके व्यापार की तकनीकी बाधाओं को समाप्त करना **दूसरा चरण** है। आपसी मान्यता का अर्थ यह है कि एक सदस्य देश में कानूनी तौर पर बेचे जा रहे उत्पादों का पूरे यूरोपीय समुदाय में मुक्त परिचालन संभव है। **तीसरा चरण** ऐसे चार क्षेत्रों में सार्वजनिक व्यवस्था को मुक्त करना है जो मौजूदा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार समझौतों के दायरे में नहीं आते। ये क्षेत्र हैं - दूरसंचार, यातायात, ऊर्जा और जल-आपूर्ति।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यूरोपीय मुद्रा इकाई : यह इकाई ई एम एस का केंद्रीय तत्व है। यह यूरोपीय संघ की विभिन्न मुद्राओं की टोकरी है और इसमें हर मुद्रा को उसकी आर्थिक शक्ति के अनुसार भारमान दिया गया है। ई सी यू की हर मुद्रा के परिमाण यथावत रहते हैं जबकि विनिमय दरें बदलती रहती हैं तथा इन बदलावों के फलस्वरूप विभिन्न मुद्राओं के मूल्यों और इस नाते उनके भारमानों में भी परिवर्तन संभव है। लेकिन मुद्राओं की इस टोकरी का पुनर्गठन या संशोधन प्रायः पाँच-पाँच साल बाद ही किया जाता है।

ई सी यू की संरचना आगे तालिका 14.1 में दिखाई गई है।

तालिका 14.1
जून 1991 में ई सी यू की संरचना

मुद्रा	ई सी यू में मुद्रा का सुनिश्चित परिमाण	भारमान (%)
जर्मन (ड्यूश) मार्क	0.6242	30.2
फ्रांसीसी फ्रांक	1.332	19.0
पाउंड स्टर्लिंग	0.08784	12.5
डच गिल्डर	0.2198	9.5

मुद्रा	ई सी यू में मुद्रा का सुनिश्चित परिमाण	भारमान (%)
बेल्जियन फ्रांक	3.301	7.8
स्पेनी पेसेता	6.885	5.3
डेनिश क्रोनर	0.1976	2.5
आयरिश पाउंड	0.008552	1.1
यूनानी ड्राचमा	1.440	1.1
पुर्तगाली एस्क्यूदो	1.393	0.8
इतालवी लीरा	151.8	9.9
लुक्ज़ेमबर्ग का फ्रांक	0.13	0.3

14.4 यूरो बाज़ार

1950 के दशक में भूतपूर्व सोवियत संघ सोना और दूसरे माल बेचकर डालर कमा रहा था जिनका उपयोग पश्चिम से अनाज व दूसरी वस्तुएँ खरीदने के लिए किया जाता था। सोवियत संघ बिक्री से प्राप्त ये रकमें अमरीकी बैंकों में नहीं रखना चाहता था क्योंकि उसे डर था कि अगर शीत युद्ध में तेजी आई तो अमरीकी सरकार उसके खाते जाम कर देगी। इसलिए उसने ब्रिटिश व फ्रांसीसी बैंकों से संपर्क किया जिन्होंने ये डालर राशियाँ स्वीकार कीं तथा अंशतः उनका अमरीका में निवेश किया। 'यूरो डालर' की धारणा इसी तरह पैदा हुई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428002240

यूरो डालर जमा किसी मुद्रा के अपने देश से बाहर के किसी बैंक में उस मुद्रा में जमा की गई राशि है। मिसाल के लिए पेरिस के किसी बैंक में अमरीकी डालर जमा हों तो वह यूरो डालर जमा राशि होगी। इसी तरह अगर एक अमरीकी कंपनी एक अमरीकी बैंक की जेनेवा स्थित शाखा में जर्मन मार्क जमा करे तो वह भी यूरो डालर जमा राशि होगी। वास्तव में यूरो डालर बाजार के विकास को फेडरल रिजर्व एक्ट के रेगुलेशन क्यू के रूप में कुछ अमरीका से बल मिला। इस कानून में बैंकों में देय ब्याज दरों पर हदबंदी लागू की गई थी। इसमें 30 दिन से कम की बैंक जमाराशियों पर कोई ब्याज देय नहीं था जबकि इससे अधिक अवधि के लिए ब्याज दरों पर सख्त हदबंदी थी। इस तरह एक ओर अमरीका में जमा डालरों पर देय ब्याज दरों की एक सीमा थी। दूसरी ओर अमरीका से बाहर के खातों पर ऐसी कोई रोक नहीं थी। अमरीका से बाहर के बैंकों ने अमरीका की अपेक्षा अधिक ब्याज दरों की पेशकश करके अच्छी-खासी डालर राशियाँ खींच लीं। और तो और फ़ेडरल रिजर्व एक्ट का नियमन अमरीका से डालरों के बहिर्गमन को बढ़ावा देता था। इस नियम के अनुसार बैंकों को डालर खातों का एक निश्चित प्रतिशत भाग आरक्षित रखना पड़ता था। अमरीकी बैंकों की यूरोपीय शाखाओं में जमा राशियों पर ऐसा कोई नियम लागू नहीं होता था। इससे अमरीकी शाखाओं की निधियों की लागत बाहरी शाखाओं की तुलना में बढ़ गई और बाहरी शाखाएँ कम लागत के कारण होने वाली बचतों

के लाभ अपने ग्राहकों को स्थानांतरित करने लगे। इन सभी कारणों से अमरीका से धन का बाहर स्थित शाखाओं में स्थानांतरण और बढ़ गया।

यूरो-बैंकों का बाजार बेहद प्रतियोगितापूर्ण बाजार है तथा नई संस्थाएँ जब चाहें, इस बाजार में आ सकती हैं। फलस्वरूप खातों की और पेशगी की ब्याज दरों का अंतर बहुत कुछ कम हो गया है। इस बाजार में लेन देन के लिए भारी रकमें चाहिए जिसके कारण ऋणदायी सिंडिकेट बन गए हैं और एक ऋणदायी कार्यक्रम में अनेक बैंक भाग लेते हैं। यूरो-करेंसी बाजार की एक खास विशेषता 'अस्थिर ब्याज दर' है जिसमें दरों का संबंध लंदन इंटर-बैंक ऑफ रेट (LIBOR) जैसी किसी आधार-दर (बेस रेट) से होता है। जमा राशियों या पेशगियों पर ब्याज दरों की समय-समय पर LIBOR के अनुसार समीक्षा की जाती है। यूरो-करेंसी बाजार को मोटे तौर पर निम्नलिखित चार घटकों में बाँटा जा सकता है :

- यूरो-साख (यूरो-क्रेडिट) बाजार जिसमें अंतर्राष्ट्रीय बैंक दीर्घकालिक से मध्यकालिक आधार पर ऋण देते हैं,
- यूरो-बांड बाजार जिसमें बैंक अंतर्राष्ट्रीय ऋण प्रार्थियों की खातिर धन प्राप्त करते हैं,
- यूरो-करेंसी खाता/बाजार जिसमें बैंक प्रायः अल्पकालिक आधार पर जमा राशियाँ स्वीकार करते हैं, तथा
- यूरो-नोट बाजार जिसमें बड़ी कंपनियाँ ऋण लेती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.5 भारत और विदेशी मुद्रा-वित्त

भारतीय कम्पनियाँ नियमित रूप से पूँजीगत उपकरणों और अत्यावश्यक कच्चे मालों का आयात करती हैं। इनके भुगतान के लिए उन्हें विदेशी मुद्राओं की आवश्यकता होती है। अपनी विदेशी मुद्रा की ज़रूरतों के लिए भारतीय उद्योग अधिकतर अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं पर निर्भर रहे हैं। ये वित्तीय संस्थाएँ संयंत्रों और मशीनों की लागत ही नहीं, विदेशी तकनीकी जानकारी के शुल्क की अदायगी के लिए भी विदेशी मुद्रा में ऋण प्रदान करती हैं।

फिर ये वित्तीय संस्थाएँ अपनी बारी में अंतर्राष्ट्रीय वित्त-बाज़ारों और बहुपक्षीय संस्थाओं से संसाधन जुटाती हैं। उपरोक्त के अलावा भारतीय कंपनियों के लिए विदेशी मुद्रा की दीर्घकालिक/मध्यकालिक व्यवस्था के दूसरे स्रोत भी हैं। इनकी विवेचना नीचे दी जा रही है।

14.5.1 विदेशी व्यापारिक ऋण

अब भारत सरकार ने भारतीय कंपनियों की मौजूदा क्षमता के प्रसार तथा नए निवेशों के लिए विदेशी व्यापारिक ऋणों (एक्सटर्नल कामर्शियल बरोइंग्स) के रूप में वित्त जुटाने की इजाज़त दे दी है। भारत सरकार द्वारा जारी दिशा-निर्देशों के अनुसार कंपनियाँ, बैंकों, निर्यात-साख संगठनों, साज-सामान बेचने वालों, विदेशी सहयोगियों व अंतर्राष्ट्रीय पूँजी-बाज़ारों जैसे किसी अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त स्रोत से ये ऋण लेने के लिए स्वतंत्र हैं। इन दिशा-निर्देशों के प्रमुख तत्व, जिनमें समय-समय पर संशोधन होते रहते हैं, इस प्रकार हैं:

अ) **औसत परिपक्वता अवधि :** दो करोड़ अमरीकी डालर से कम के व्यापारिक ऋण के लिए परिपक्वता की न्यूनतम औसत अवधि तीन वर्ष है। इससे अधिक के ऋणों के लिए यह अवधि पाँच वर्ष है। लेकिन 100 प्रतिशत निर्यातमुखी इकाइयों को किसी भी राशि के लिए तीन साल की न्यूनतम औसत अवधि के साथ विदेशी व्यापारिक ऋण लेने की इजाजत दी गई है।

ब) **ऋण की मात्रा :** बुनियादी ढाँचे और हरित पर्यावरण की सभी परियोजनाओं के लिए कुल परियोजना-लागत के 35 प्रतिशत तक ऋण लेने की अनुमति है। बिजली की परियोजनाओं के लिए हर मामले के गुण-दोष के आधार पर अधिक लोच की संभावना रखी गई है।

स) **ब्याज दर :** ऋण प्रार्थी अपनी साख के अनुसार LIBOR से एक से दो प्रतिशत-बिंदु से अधिक के ब्याज दर पर विदेशी व्यापारिक ऋण के लिए जा सकते हैं।

द) **ऋणों का अंतोपयोग (End-Use) :** इन ऋणों का उपयोग विदेशी मुद्रा में पूँजीगत वस्तुओं और सेवाओं की लागत के वहन के लिए किया जाता है। बिजली, दूरसंचार, सड़क, बंदरगाह, उद्योग पार्क और नगरीय सुविधाओं जैसी बुनियादी ढाँचे की परियोजनाओं के लिए ऋण-राशि का उपयोग रुपयों में परियोजना-व्यय पूरा करने के लिए भी किया जा सकता है। निगम ऋण प्रार्थी भारतीय गोदियों से जहाज़/नौकाएँ खरीदने के लिए इन ऋणों का उपयोग कर सकते हैं। लेकिन किसी भी दशा में इन ऋण-राशियों का उपयोग अचल संपत्ति में निवेश या स्टॉक बाज़ार में सट्टेबाजी के लिए नहीं किया जा सकता।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

य) **सुरक्षा :** ऋणदाता को कैसी प्रतिभूति दी जाए, इसका निश्चय ऋण प्रार्थी कंपनी करेगी। लेकिन अगर प्रतिभूति किसी भारतीय वित्तीय संस्था या बैंक की ज़मानत के रूप में हो तो किसी विदेशी बैंक/वित्तीय संस्था की किसी जवाबी ज़मानत (काउंटर गारंटी) की या ज़मानत की पुष्टि की अनुमति नहीं होगी।

विदेशी व्यापारिक ऋणों के बारे में सरकार की नीति का उद्देश्य भारतीय कंपनियों या सावर्जनिक क्षेत्र के उपक्रमों के ऋण लेने में लोच का समावेश करना है। साथ ही भविष्य ऋण प्रबंध (प्राविडेंट डेट मैनेजमेंट) के अनुरूप कुल विदेशी ऋणों को एक सुरक्षित सीमा में बनाए रखना भी आवश्यक है। इन ऋणों संबधी नीतियों के मार्गदर्शक सिद्धांत इस प्रकार हैं:

अ) परिपक्वता की अवधि लंबी रखना,
ब) कम लागत, और
स) बुनियादी ढाँचे और निर्यात क्षेत्र के लिए वित्त की व्यवस्था को प्रोत्साहन देना।

हर साल विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकताओं तथा भुगतान-संतुलन के मध्यकालिक प्रक्षेपों (प्रोजेक्शंस) को ध्यान में रखकर विदेशी व्यापारिक ऋण की एक ऊपरी सीमा तय की जाती है। ऋण-सेवा का अनुपात इसी सीमा में रखा जाता है।

पिछले तीन वर्षों में विदेशी व्यापारिक ऋण के लिए किए गए अनुमोदन इस प्रकार रहे हैं:

1998-99	5,200 अरब अमरीकी डालर
1999-00	3,398 अरब अमरीकी डालर
2000-01	2,837 अरब अमरीकी डालर

वर्ष 2000-01 में विदेशी व्यापारिक ऋणों का सकल संवितरण (ग्रॉस डिसबर्समेंट) 3.81 अरब अमरीकी डालर रहा। इसमें भारत सहस्राब्दी जमा राशियों के रूप में जुटाए गए 5.51 करोड़ अमरीकी डालर शामिल नही हैं। पिछले साल की तुलना में इस वृद्धि का मुख्य कारण अपेक्षाकृत आसानतर शर्तों पर ऋण लेकर पुराने अधिक महँगे ऋणों के भुगतान का पुनर्वित्तीकरण (रि-फिनांसिंग) था।

14.5.2 यूरो-निर्गम—जी डी आर एस

भारतीय कंपनियाँ 1990 के बाद आरंभ किए गए आर्थिक उदारीकरण कार्यक्रम के बाद से बांड और यूरो-अंश पूँजी जारी करके अक्सर अंतर्राष्ट्रीय पूँजी बाज़ारों में प्रवेश करने लगी हैं। इन्हें मिलाकर 'यूरो-निर्गम' (यूरो-इशूज़) कहते हैं। इसके दो प्रमुख उपाय हैं : जमाराशि प्राप्तियाँ (डिपाज़िटरी रिसीट्स), जो अप्रत्यक्ष अंश पूँजी निवेश के सूचक हैं, तथा यूरो-परिवतर्नीय बांड (यूरो-कनवर्टिबिल बांड्स) अर्थात् अंश पूँजी में परिवर्तनशील बांड हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जमा राशि प्राप्तियों की व्यवस्था में कंपनी के जारी किए हुए शेयर एक निक्षेपागार के हाथों में होते हैं जो फिर इन शेयरों के आधार पर दावे जारी करता है। इन दावों को जमा राशि प्राप्तियाँ कहते हैं। हर प्राप्ति शेयरों की एक विशेष संख्या पर एक दावा होती है। इसमें अंतर्निहित शेयरों को जमाराशि कहते हैं। जमा राशि प्राप्तियाँ किसी मुद्रा, प्रायः डालर में व्यक्त की जाती हैं और सामान्य प्रमुख स्टॉक एक्सचेंजों में उन्हें दर्ज किया व खरीदा बेचा जाता है। निर्गमकर्ता कंपनी घरेलू मुद्रा में खातेदार को लाभांश देती है जिसे निक्षेपागार डालरों में बदलकर जमा राशि प्राप्तियों के धारकों में वितरित कर देता है। जमा राशि प्राप्तियों की व्यवस्था द्वारा निर्गमकर्ता कंपनी लिस्टिंग की फ़ीस देने से तथा अंतर्राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंजों में गोपनीय जानकारियाँ और ख़बरें देने से भी बच जाती है। ऐसी जमा राशि प्राप्तियाँ जब अमरीकी निवेशकों को जारी की जाती हैं, अमरीकी जमा राशि प्राप्तियाँ (ए डी आर) कहलाती हैं। मगर अब तो यूरोपीय जमा राशि प्राप्तियाँ (इ डी आर) और भूमंडलीय (ग्लोबल) जमा राशि प्राप्तियाँ (जी डी आर) भी सामने आ रही हैं।

भारत सरकार ने भारतीय कंपनियों को 1992 में जी डी आर जारी करने की अनुमति दी। उसके दिशा-निर्देश इस प्रकार थे :

1) जी डी आर के ज़रिए धन जमा करने की योजना बना रही किसी भारतीय कंपनी को पहले विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड (एफ आई पी बी), आर्थिक मामला विभाग, भारत सरकार से इसकी अनुमति लेनी होगी।

2) अंतोपयोग (end use) संबंधी प्रतिबंध : निर्गम की तिथि से एक साल के अंदर निम्नलिखित अंतोपयोग (एंड-यूज़) के लिए ही जी डी आर के निर्गमों की अनुमति होगी:

अ) पूँजीगत मालों के आयात की वित्त-व्यवस्था,

ब) संयंत्र, साज़-सामान और इमारत की घरेलू ख़रीद/स्थापना के लिए वित्त की व्यवस्था,

स) पहले के विदेशी ऋणों पर अग्रिम या समयानुसार अदायगी,

द) विदेशों में वहाँ पर निवेश जहाँ सक्षम अधिकारी इसके लिए अनुमोदन करें,

य) भारत में स्थित संयुक्त उद्यमों की तथा पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनियों की अंश पूँजी में निवेश,

र) निर्गम से प्राप्त राशि के अधिकतम 25 प्रतिशत भाग से निगमात्मक पुनर्रचना।

3) **अर्हता (Eligibility):** केवल कम से कम तीन साल तक अच्छी (वित्तीय व अन्य) कारगुजारी वाली कंपनियों को ही जी डी आर जारी करने की अनुमति है। पर बुनियादी ढाँचे की परियोजनाओं के लिए इस शर्त में ढील दे दी जाती है।

4) बैंकों, वित्तीय संस्थाओं तथा रिजर्व बैंक में पंजीकृत गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों को अंतोपयोग संबंधी प्रतिबंधों से मुक्त रखा गया है, बशर्ते वे अचल संपत्ति और स्टाक बाज़ारों में निर्गम की प्राप्तियों का निवेश न करें।

5) इन प्रतिबंधों से अखिल-भारतीय वित्तीय संस्थाओं को भी मुक्त रखा गया है, क्योंकि इनका गुणक प्रभाव (मल्टिप्लायर इफेक्ट) होता है और उन छोटे व मझोले उद्योगों पर लाभकारी प्रभाव पड़ता है जो अपने बल पर इन बाजारों में प्रवेश नहीं कर सकते।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6) किसी वित्त वर्ष में किसी कंपनी या कंपनियों के समूह द्वारा जारी निर्गमों की संख्या पर कोई प्रतिबंध नहीं है।

7) प्रार्थना पत्र देते समय एक कंपनी को स्पष्ट करना होता है कि उसके निर्गम की प्राप्तियों के क्या अंतोपयोग होंगे। उससे अनुमोदित अंतोपयोग के लिए धन के उपयोग का, उसके लेखा परीक्षकों द्वारा सुप्रमाणित, त्रैमासिक वक्तव्य भी जारी करने की अपेक्षा की जाती है।

ध प्रश्न 2

1) विदेशी व्यापारिक ऋण से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) यूरो-करेंसी बाजार के विभिन्न घटकों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) किस तरह की कंपनियों को जी डी आर जारी करने की अनुमति है।

.....

.....

.....

.....

.....

14.5.3 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (फ़ारेन डायरेक्ट इनवेस्टमेंट्स, एफ़ डी आई)

अब भारत से बाहर (बंगलादेश, पाकिस्तान या श्रीलंका छोड़) कहीं रह रहा एक व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से भारतीय कंपनियों की अंश पूँजी में निवेश कर सकता है। यह निवेश निर्धारित सीमाओं के अंदर एक भारतीय कंपनी द्वारा जारी अंश पूँजी, वरीयता/परिवर्तनीय वरीयता शेयरों या फिर परिवर्तनीय ऋण पत्रों के रूप में हो सकता है। सरकार की नीति कुछ विशेष क्षेत्रों में स्वतः प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की छूट देती है अर्थात इसके लिए कोई अनुमति नहीं लेनी पड़ती। कुछ अन्य क्षेत्रों के लिए क्षेत्रवार सीमाएँ निर्धारित हैं। बाकी मामलों में भारत सरकार के औद्योगिक सहायता सचिवालय (सेक्रेटारियट फ़ार इंडस्ट्रियल एसिस्टेंस, एस आई ए) या विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड (एफ़ आई पी बी) का पूर्व अनुमोदन आवश्यक है। इन निकायों द्वारा जारी शर्तों का पालन आवश्यक है। कुछ सुपात्र क्षेत्रों, जैसे कि निर्यात में 100 प्रतिशत विदेशी निवेश तक की अनुमति है। जैसा कि नीचे दी गई तालिका 14.2 से स्पष्ट है, 2000-01 में कुल विदेशी निवेश में उपरोक्त बोर्ड/सचिवालय के रास्ते होने वाले निवेश का भाग ही सबसे अधिक था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका 14.2
भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (मिलियन अमरीकी डालरों में)

	1991-92	2000-01
अ) प्रत्यक्ष निवेश	129	2339
(1) रिजर्व बैंक का स्वतः मार्ग	-	454
(2) सचिवालय/बोर्ड का रास्ता	66	1456
(3) अनिवासी भारतीय (40 और 100%)	63	67
(4) शेयरों का अधिग्रहण	-	362

	1991-92	2000-01
ब) पत्राधार निवेश	4	2760
(1) विदेशी अंतर्राष्ट्रीय निवेशक	04	1847
(2) जी डी आर/ए डी आर	-	831
(3) विदेशी निधियाँ/अन्य	04	82
योग (अ+ब)	133	5099

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 2000-01

* विदेशी मुद्रा प्रबंध अधिनियम (फ़ेमा) के अनुच्छेद 5 के अंतर्गत अनिवासी भारतीयों द्वारा भारतीय कंपनियों के शेयरों के अधिग्रहण से संबंधित।

14.5.4 पत्राधार निवेश

पत्राधार निवेश की योजना के अंतर्गत भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) में पंजीकृत विदेशी संस्थागत निवेशकों को भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा भारत के मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंजों में पंजीकृत दलालों के ज़रिए भारतीय कंपनियों के शेयर और परिवर्तनीय ऋणपत्र खरीदने की अनुमति दी गई है। इन संस्थाओं को कुछ सीमाओं के अंदर ही भारत में निवेश की अनुमति है। ऐसी हर संस्था भारतीय कंपनी की कुल प्रदत्त पूँजी के 10 प्रतिशत या एक भारतीय कंपनी द्वारा जारी प्रत्येक परिवर्तनीय ऋण पत्र निर्गम के प्रदत्त मूल्य के 10 प्रतिशत के बराबर ही निवेश कर सकती है। सभी विदेशी संस्थागत निवेशकों का कुल मिलाकर प्रदत्त अंश पूँजी के या परिवर्तनीय ऋण पत्रों की प्रत्येक श्रंखला के प्रदत्त मूल्य के 24 प्रतिशत से अधिक पर नियंत्रण नहीं हो सकता। ऐसी सभी संस्थाओं के लिए समग्र सीमा को शेयर धारकों की आम सभा के अनुमोदन से ही 49 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। वैयक्तिक विनियोजन (प्राइवेट प्लेसमेंट) द्वारा भी उपरोक्त सीमाओं के अंदर ही खरीद की अनुमति है। हाल में विदेशी संस्थागत निवेशकों को, कंपनी द्वारा जारी और प्रदत्त पूँजी के लिए क्षेत्रवार निर्धारित स्तरों तक, द्वितीयक बाज़ार के जरिए भी पत्राधार निवेश की अनुमति दी गई है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अनिवाशी भारतीयों और विदेशी पत्राधार निकायों को भी भारत के किसी मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज में एक पंजीकृत दलाल के माध्यम, प्रत्यावर्तन (रिपैट्रिएशन) या अप्रत्यावर्तन के आधार पर, पत्राधार निवेश की अनुमति दी गई है। लेकिन हर अनिवासी भारतीय को भारतीय कंपनी द्वारा जारी शेयरों के प्रदत्त मूल्य या परिवर्तनीय ऋण पत्रों की प्रत्येक श्रंखला के प्रदत्त मूल्य का 5 प्रतिशत ही खरीदने की अनुमति है। सभी अनिवासी भारतीयों/विदेशी निगमित निकायों के शेयरों का प्रदत्त मूल्य कुल मिलाकर भी अंश पूँजी/ऋण पत्रों की हर श्रंखला के प्रदत्त मूल्य के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। आम सभा की बैठक एक विशेष प्रस्ताव पारित करके इस सीमा को बढ़ाकर 24 प्रतिशत तक कर सकती है।

14.5.5 अनिवासी भारतीयों की जमा राशियाँ

विदेशी मुद्रा-वित्त का एक और स्रोत अनिवासी भारतीयों द्वारा भारतीय बैंकों में जमा कराई गई रकमें हैं। भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंकों को अनिवासी भारतीयों के नाम से मुख्यतः तीन तरह के जमा-खाते खोलने की अनुमति दी है। ये खाते भारतीय रूपयों में भी हो सकते हैं और चारों प्रमुख विदेशी मुद्राओं में भी। विदेशी मुद्रा अनिवासी (Foreign currency Non-resident 'Banks' - FCNR 'B') योजना के अंतर्गत डालर, पाउंड, येन और यूरो में जमा राशियाँ स्वीकार की जा सकती हैं तथा विदेशी मुद्रा में ही पैसा निकालने की छूट है। अनिवासी बाह्य रुपया खाता (नान-रेजिडेंट एक्सटर्नल रूपी एकाउंट्स - एन आर ई आर ए) के अंतर्गत, जमा राशियाँ रुपयों में स्वीकार की जाती हैं और विदेशी मुद्रा में पैसा निकाला जा सकता है पर चालू विनिमय दर पर। अनिवासी अप्रत्यावर्तनीय रुपया जमा (नान-रेजिडेंट नान-रिपैट्रिएबिल रूपी डिपाजिट्स -एन आर एन आर आर डी) योजना के अंतर्गत रुपयों में जमा राशियों के बदले कोई राशि बाहर नहीं भेजी जा सकती। तालिका 14.3 हाल के वर्षों में इन योजनाओं के अंतर्गत जमा राशियाँ दर्शाती है।

तालिका 14.3

एन आर आई (Non Resident Indian) जमा राशि योजनाओं के अंतर्गत मौजूद बकाये (करोड़ अरीमकी डालरों में)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

योजना	मार्च 1999	मार्च 2000	मार्च 2001
एफ़ सी एन आर (बी)	783.5	817.2	907.6
एन आर ई आर ए	604.5	675.8	714.7
एन आर एन आर आर डी	661.8	675.4	684.9
योग	2049.8	2168.4	2307.2

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 2000-01

उपरोक्त आँकड़ों में देय ब्याज भी शामिल हैं। इन खातों में जमा बकायों में वृद्धि की प्रवृत्ति भारतीय अर्थव्यवस्था में कुल मिलाकर अनिवेशी भारतीयों के विश्वास को दर्शाती है।

बोध प्रश्न 3

1) खाली जगहों को भरिए :

   अ) विदेशी निवेश को ..... श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

   ब) निर्यात क्षेत्र में ..... तक विदेशी निवेश की अनुमति है।

   स) विदेशी संस्थागत निवेशकों को भारत में एक भारतीय कंपनी की कुल प्रदत्त पूँजी के ..... तक ही निवेश करने की अनुमति है।

   द) रिजर्व बैंक ने बैंकों को अनिवासी भारतीयों के नाम से ..... प्रकार के खाते खोलने की अनुमति दी है।

14.6 सारांश

विश्व स्तर पर वित्तीय व्यवस्था देशों के बीच संसाधनों के स्थानांतरण में सहायता देती है। एक से दूसरे देश को संसाधनों का ऐसा स्थानांतरण वस्तुओं व सेवाओं के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण आवश्यक हो जाता है। 1914 से ठीक पहले तक कार्यरत अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली 'स्वर्णमान प्रणाली' (गोल्ड स्टैंडर्ड सिस्टम) कहलाती थी। उस प्रणाली में दो परिसंपत्तियाँ थीं : सोना और स्टर्लिंग। अंतर्राष्ट्रीय ऋणों के निपटारे के लिए ये ही स्वीकार की जाती थीं और ये आरक्षित परिसंपत्तियाँ कहलाती थीं। युद्धोत्तर मुद्रा प्रणाली का जन्म ब्रेटन-वुड्स, न्यू हैंपशायर, अमरीका में 1944 में हुआ जहाँ मित्र राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने एक सम्मेलन का आयोजन किया था। इसका उद्देश्य एक अच्छी मुद्रा प्रणाली कायम करके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के सुचारु संचालन का रास्ता निकालना था। अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक समस्याओं पर परामर्श व सहयोग को बढ़ावा देने के लिए तथा भुगतान-संतुलन में लगातार घाटे से जूझ रहे सदस्य देशों को ऋण देने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मद्रा कोष (आई एम एफ़) नाम से एक नई संस्था स्थापित की गई।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली की केंद्रीय संस्था है, क्योंकि यह भुगतान-असंतुलन के समायोजन में सहायता देती है। अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण विकास बैंक (आई बी आर डी) अर्थात् विश्व बैंक अपने सदस्य देशों को पुनर्निर्माण और विकास के लिए दीर्घकालिक ऋण देता है। अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम (आई एफ़ सी) विश्व बैंक से संबद्ध एक संगठन है जो निजी उद्यमों को अंश पूँजी देता है। अंतर्राष्ट्रीय विकास संगठन (आई डी ए) विश्व बैंक से संबद्ध एक और संगठन है जो विश्व बैंक की 'सस्ते ऋण वाली खिड़की' भी कहा जाता है क्योंकि वह सदस्य देशों में सामाजिक महत्व वाली, आर्थिक दृष्टि से ठोस परियोजनाओं के लिए 'सस्ते ऋण' देता है। एशियाई विकास बैंक (ए डी बी) विकास कार्यों के लिए इकैफ़े क्षेत्र में सार्वजनिक व निजी पूँजी के निवेश को बढ़ावा देता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यूरोपीय आर्थिक समुदाय का मुख्य उद्देश्य वस्तुओं, पूँजी और श्रम शक्ति का अबाध आवागमन संभव बनाना है। जब इसमें और देश शामिल हुए तो यूरोपीय मुद्रा प्रणाली कायम करने का फ़ैसला किया गया। अंत में 1992 में मासट्रिक्ट संधि के संपन्न होने के बाद समुदाय का नाम बदलकर यूरोपीय संघ (ई यू) कर दिया गया तथा ऐसी संस्थाओं के निर्माण का रास्ता तैयार हुआ जो यूरोपीय मौद्रिक संघ (ई एन यू) की स्थापना की ओर ले जा सकें। यूरोपीय समुदाय में मौद्रिक स्थिरता लाना और उसे पुष्ट करना ई एम यू का प्रमुख उद्देश्य है। यूरोपीय मुद्रा इकाई (ई सी) यूरोपीय संघ की उन विभिन्न मुद्राओं की एक टोकरी है जिन्हें हरेक की आर्थिक स्थिति के अनुसार एक भारमान दिया गया है। एक यूरो डालर खाता किसी मुद्रा के अपने देश से बाहर के एक बैंक में खाताधारी के देश की मुद्रा में खोला गया खाता है।

भारतीय कारपोरेट अपनी विदेशी मुद्रा की ज़रूरतों के लिए अधिकतर अखिल-भारतीय वित्तीय संस्थाओं पर निर्भर रहे हैं। विदेशी व्यापारिक ऋण व यूरो-निर्गम भारतीय कंपनियों के लिए विदेशी मुद्रा की दीर्घकालिक/मध्यकालिक व्यवस्था के दूसरे प्रमुख स्रोत हैं।

14.7 शब्दावली

किस्तें (ट्रैंचेज़) : यह आई एम एफ़ से एक सदस्य देश द्वारा एस डी आर के आहरण की प्रक्रिया है।

कोटा : यह आई एम एफ की अंश पूँजी कैपिटल में सदस्य देशों का योगदान है। आरंभ में यह योगदान सोने में तथा एक देश की अपनी मुद्रा में होता था। हर सदस्य के कोटे का परिमाण विश्व-अर्थव्यवस्था में उसके अंश पर निर्भर होता है।

यूरो डालर जमा राशि : यह किसी मुद्रा के अपने देश से बाहर के किसी बैंक में जमा की गई राशि है।

विशेष आहरण अधिकार (एस डी आर) : यह अंतर्राष्ट्रीय आरक्षित परिसंपत्ति है जो मूलतः डालरों की एक निश्चित संख्या के समतुल्य होती थी। अब यह अमरीकी डालर, जर्मन मार्क, जापानी येन, फ्रांसीसी फ्रांक और ब्रिटिश पाउंड स्टर्लिंग आदि विभिन्न मुद्राओं की एक टोकरी है।

14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आप्टे, पी.जे. (1988) : *इंटरनेशनल फ़िनांस*, प्रेंटिस हाल ऑफ इंडिया प्रा.लि., नई दिल्ली। (तीसरा संस्करण)

गिडी, इयान एच (1997) : *ग्लोबल फ़िनांशियल मार्केट्स*, ए आई टी बी एस पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नई दिल्ली।

बकली, एड्रियन (1998) : *मल्टीनेशनल फ़िनांस*, प्रेंटिस-हाल ऑफ इंडिया प्रा.लि., नई दिल्ली। (तीसरा संस्करण)

14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) विशेष आहरण अधिकार कई मुद्राओं (अमरीकी डालर, जर्मन मार्क, जापानी येन, फ्रांसीसी फ्रांक और ब्रिटिश पाउंड स्टर्लिंग) की एक टोकरी है। यह डालरों की एक निश्चित संख्या के समतुल्य है। यह एक नई अंतर्राष्ट्रीय आरक्षित परिसंपत्ति के सृजन के लिए आई एम एफ़ द्वारा बनाया गया एक साधन है।

2) अ) गलत
   ब) सही
   स) गलत
   द) गलत
   य) सही

3) प्रत्यक्ष ऋण देना, अंश पूँजी निवेश करना, विकास-सेवाएँ प्रदान करना।

बोध प्रश्न 2

1) विदेशी व्यापारिक ऋण से तात्पर्य किसी अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त स्रोत, जैसे बैंकों, निर्यात-साख संगठनों, विदेशी सहयोगियों आदि, से दीर्घकालिक/ मध्यकालिक विदेशी मुद्रा जुटाना है।

2) यूरो साख बाजार, यूरो बांड बाजार, यूरो करेंसी खाता/ बाजार, यूरो नोट बाजार।

3) कम से कम तीन साल तक सुसंगत ढंग से अच्छी कारगुजारी दिखाने वाली कंपनियों को।

बोध प्रश्न 3

1) अ) दो

   ब) 100 प्रतिशत

   स) 3-10 प्रतिशत

   द) तीन।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240